WHITE BOOK

COACH UP IAS
YOUR SELECTION Is OUR BUSINESS

भारतीय समाज

सिविल सेवा परीक्षा के लिए

IAS COACH ASHUTOSH SRIVASTAVA

IAS COACH MANISH SHUKLA

8009803231 / 9236569979

Saarthi

THE COACH

1 : 1 MENTORSHIP BEYOND THE CLASSES

- **Diagnosis** of candidates based on background, level of preparation and task completed.
- **Customized solution** based on Diagnosis.
- One to One **Mentorship.**
- Personalized schedule **planning.**
- Regular **Progress tracking.**
- **One to One classes** for Needed subjects along with online access of all the subjects.
- Topic wise **Notes Making sessions**.
- One Pager **(1 Topic 1 page)** Notes session.
- **PYQ** (Previous year questions) Drafting session.
- **Thematic charts** Making session.
- **Answer-writing** Guidance Program.
- **MOCK Test** with comprehensive & swift assessment & feedback.

Ashutosh Srivastava
(B.E., MBA, Gold Medalist)
Mentored 250+ Successful Aspirants over a period of 12+ years for Civil Services & Judicial Services Exams at both the Centre and state levels.

Manish Shukla
Mentored 100+ Successful Aspirants over a period of 9+ years for Civil Services Exams at both the Centre and state levels.

भारतीय समाज

भारतीय समाज की प्रमुख विशेषताएँ

- **भारतीय समाज अपनी सहिष्णुता और स्वीकार्यता के साथ-साथ सामाजिक एकजुटता के लिए भी विशिष्ट है, जो इसे अपनी संस्कृति को संरक्षित करने की असाधारण क्षमता प्रदान करता है।** संविधान की प्रस्तावना **भाईचारे के महत्व पर ज़ोर देती है** , जिससे यह प्रत्येक नागरिक की ज़िम्मेदारी बन जाती है।
- भारतीय समाज **सांस्कृतिक और क्षेत्रीय पहलुओं में व्यापक रूप से विविधतापूर्ण** है और यह उचित है कि प्रत्येक व्यक्ति में अन्य सभी व्यक्तियों से संबंधित विचारों और उद्देश्यों की पूर्ति की बात कही गई है।
- **प्राचीन काल से ही भारत एक ऐसी राष्ट्रीयता का निर्माण करने में सफल रहा है जो न तो सार्वभौमिकता से संचालित होती है और न ही अपने हित समूहों के लिए विशिष्टता से।** बहु-सांस्कृतिक दुविधा भारतीय समाज की एक प्रमुख विशेषता है जो देश के इतिहास में वरदान और अभिशाप दोनों रही है।
- **भारत की सदियों से चली आ रही लंबी और सतत सभ्यताएँ इसे एक अद्वितीय समाज बनाती हैं।** भूगोल, धर्म, भाषा, जाति, रीति-रिवाज, खान-पान, जातीयता आदि सभी पहलुओं में इसकी विविधता इसे वास्तव में जीवंत और जीवंत बनाती है।
- विविधताओं का ऐसा विशाल दायरा चुनौतियों और अवसरों दोनों को जन्म देता है। फिर भी, भारतीयता का मूल चरित्र, जैसे बहुलवाद और बहुसंस्कृतिवाद के प्रति सहिष्णुता, इसे अन्य सभ्यताओं से वास्तव में विशिष्ट बनाता है।
- **भारत दुनिया भर से आए प्रवासियों और आक्रमणकारियों की भूमि रहा है, जिसके परिणामस्वरूप इस भूमि पर विविध संस्कृतियों का समावेश हुआ और परिणामस्वरूप भारत एक एकीकृत समाज बना। इसे पश्चिमी समाज के "मेल्टिंग पॉट" के विपरीत "सलाद बाउल मॉडल" के रूप में दर्शाया जा सकता है।**
- **"वसुधैव कुटुम्बकम", "सर्वधर्म समभाव" और सभी व्यवहारों में "सुनहरे अर्थ"** का आह्वान, ऐसे समय में भारतीय समाज को सर्वाधिक स्वागतयोग्य बनाता है जब दुनिया भर में "सभ्यता संघर्ष" के मामले बढ़ रहे हैं।
- अपने गौरवशाली अतीत के बावजूद, भारत अब एक **"प्रिज्मीय समाज" (पारंपरिक और आधुनिक के बीच फंसा हुआ) बन गया है।** यहाँ गरीबी और ऐश्वर्य, तपस्वी अध्यात्मवाद और कुत्सित भौतिकवाद एक साथ विद्यमान हैं। भारतीय समाज, संक्रमण की प्रक्रिया में होने के कारण, वैश्वीकरण जैसी बाहरी शक्तियों के प्रभाव को अलग-अलग रूप से झेल रहा है।
- भारतीय समाज में ग्रामीण, शहरी, आदिवासी परिवेश में रहने वाले लोग और भारतीयता के मूल्यों को धारण करने वाले सभी वर्ग शामिल हैं। **चूँकि भारत स्वयं विविध पहचानों, विविध रीति-रिवाजों, वेशभूषा, खान-पान, रंग, पंथ, जाति आदि का एक बहुरंगी कैनवास है, जो सर्वसम्मति नामक एक और "सी" से बंधा है, इसलिए इसकी सामाजिक विशेषताएँ विशिष्टताओं से भरी होंगी।**
- **भारतीय समाज की प्रमुख विशेषताएँ**
- भारतीय समाज की विशेषताओं के बारे में संकेत देना कठिन है, क्योंकि भारतीय समाज का सार **विविध और विशिष्ट पहचानों, जातीयताओं, भाषाओं, धर्मों और पाक-कला संबंधी प्राथमिकताओं में निहित है।**
- **भारतीय समाज अपनी गोद में बसे सभी सूक्ष्म समाजों का एक योग है, जो अंडमान निकोबार के आदिम इलाकों में रहने वाली एक द्वीपीय जनजाति से लेकर महानगरीय मुंबई के अति-आधुनिक समूह तक, विविध**

हो सकते हैं। पहाड़ी इलाकों में रहने वाले लोगों की सामाजिक संरचना ग्रामीण परिवेश के पितृसत्तात्मक बड़े हिस्से से बिल्कुल अलग हो सकती है। ऐसी विशिष्टताएँ भारतीय समाज को अत्यंत जटिल बनाती हैं। फिर भी, **सामाजिक स्पेक्ट्रम में प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित रूप में रेखांकित किया जा सकता है:**

- जाति प्रथा
- धार्मिक विविधता
- भाषिक विभिन्नता
- जातीय और नस्लीय विविधता
- रूढ़िवाद/अंधविश्वास
- संक्रमणकालीन समाज
- परिवार और नातेदारी व्यवस्था
- आदिवासी समाज
- कला और संस्कृति
- विविधता की इकाई के रूप में भूगोल
- दार्शनिक/धार्मिक विविधता
- सहिष्णुता, प्रेम और करुणा
- परस्पर निर्भरता
- अनेकता में एकता
- अध्यात्मवाद और भौतिकवाद के बीच संतुलन
- व्यक्तिवाद और सामूहिकता के बीच संतुलन
- परंपरावाद और आधुनिकता का सह-अस्तित्व

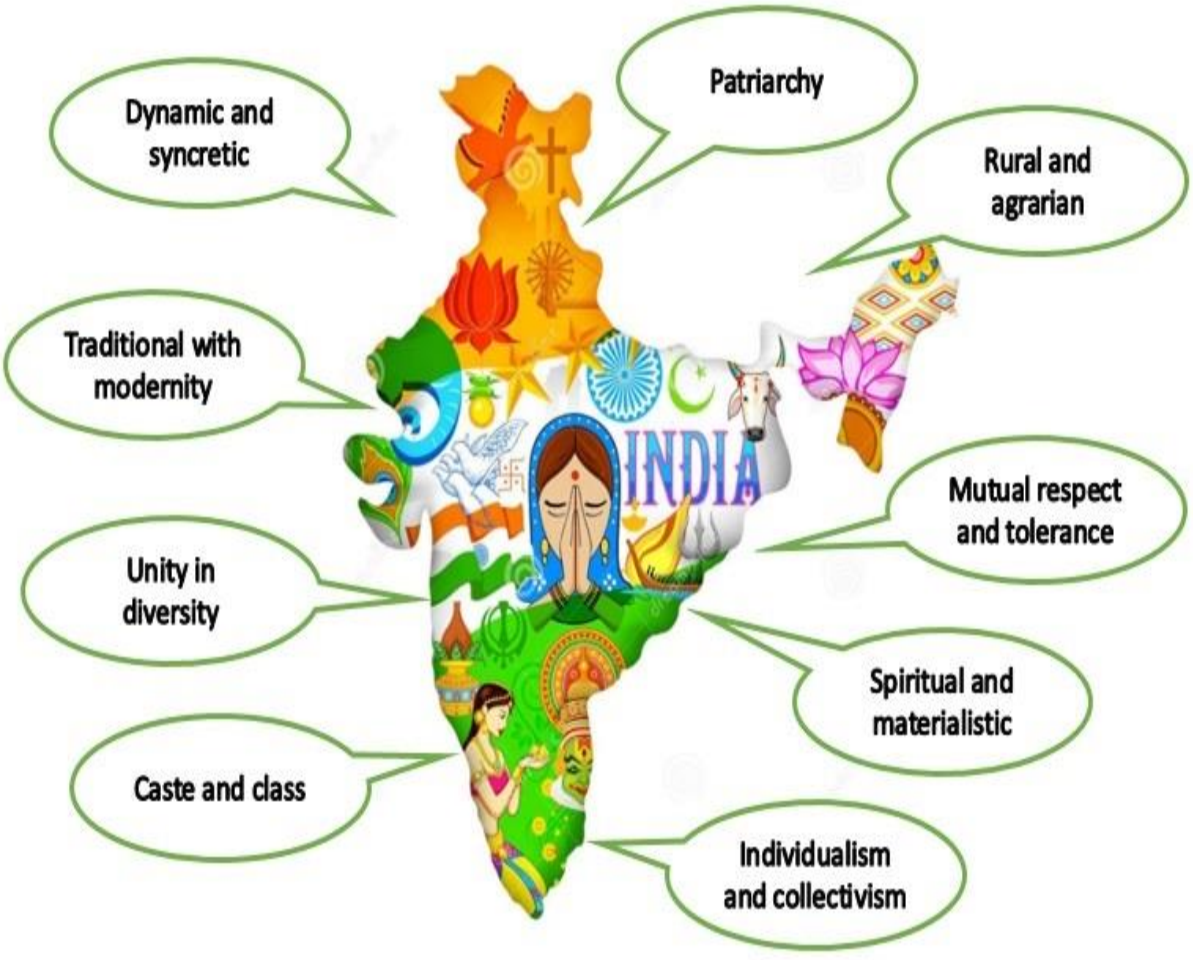

जाति प्रथा

- भारतीय समाज में सामाजिक स्तरीकरण के दो प्रमुख रूपों - **जाति और वर्ग** - में से , **जाति सामाजिक गतिशीलता का प्रमुख साधन थी** ।
- यह समाज में व्यक्ति की स्थिति को काफी हद तक निर्धारित करती है।
- यह **भारतीय मानस में इस कदर समाया हुआ है कि यह व्यक्ति की सामाजिक-राजनीतिक और आर्थिक गतिविधियों** के प्रमुख निर्धारकों में से एक है ।
- विडंबना यह है कि 'जाति' शब्द **स्वयं भारतीय नहीं है, बल्कि पुर्तगाली शब्द 'कास्टा' से आया है जिसका अर्थ है 'नस्ल' या 'शुद्ध वंश'।**

- ❖ भारतीयों के पास भी जाति व्यवस्था को समग्र रूप से वर्णित करने के लिए कोई एक शब्द नहीं है, बल्कि वे इसके विभिन्न पहलुओं के लिए कई शब्दों का प्रयोग करते हैं, जिनमें से दो मुख्य शब्द हैं वर्ण और जाति।
- ❖ जाति एक **अंतर्विवाही समूह, या अंतर्विवाही समूहों का समूह है** , जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसकी सदस्यता वंशानुगत होती है; यह अपने सदस्यों पर सामाजिक मेलजोल के मामलों में कुछ प्रतिबंध लगाती है; या तो वे एक समान पारंपरिक व्यवसाय का पालन करते हैं या एक समान उत्पत्ति का दावा करते हैं और आमतौर पर एक सजातीय समुदाय के रूप में माने जाते हैं।
- ❖ हालाँकि इसकी शुरुआत व्यावसायिक समूहों के स्वाभाविक विभाजन के रूप में हुई थी, लेकिन अंततः धार्मिक स्वीकृति मिलने पर यह मौजूदा जाति व्यवस्था में समाहित हो गई।
- ❖ यह पुनर्जन्म में हिंदू विश्वास से गहराई से जुड़ा हुआ है; ऐसा माना जाता है कि जो व्यक्ति अपनी जाति के रीति-रिवाजों और कर्तव्यों का पालन नहीं करते, उनका अगले जन्म में निम्न स्थिति में पुनर्जन्म होगा।

विशेषताएँ

इस प्रणाली के कुछ विशिष्ट तत्व थे, जो इस प्रकार हैं:

- **कठोरता:** इसकी पहली विशिष्ट विशेषता इसकी पूर्ण कठोरता और गतिहीनता है। जाति व्यवस्था का पालन करने वाले लोग मानते हैं कि व्यक्ति उसी जाति में मरता है जिसमें वह पैदा होता है और यही जाति जीवन में उसकी स्थिति निर्धारित करती है, उदाहरण के लिए, अछूत लोग मैला ढोने में व्यस्त रहते हैं।
- **सहभोज पर प्रतिबंध:** जाति व्यवस्था सहस्राब्दियों तक विभिन्न जातियों के लोगों के बीच सहभोज (खाने-पीने) पर प्रतिबंध के कारण जीवित रही। इस प्रतिबंध को धार्मिक ग्रंथों द्वारा भी मान्य किया गया था। उदाहरण के लिए, ब्राह्मण अछूतों से भोजन नहीं ले सकते।
- **सजातीय विवाह:** एक ही जाति में विवाह करने की प्रथा, एक और महत्वपूर्ण तत्व है जिसने वर्षों से इसे कायम रखने में मदद की है। यह प्रथा भारत में लोगों की मानसिकता में इतनी गहराई तक समा गई है कि आज भी अंतर्जातीय विवाह दुर्लभ हैं। उदाहरण के लिए, वैवाहिक विज्ञापनों का प्रचलन। सजातीय विवाह के नियम का उल्लंघन अक्सर बहिष्कार, जाति-ह्रास और सम्मान-हत्या का कारण बनता है।
- **पदानुक्रमिक:** भारतीय समाज की जाति संरचना पदानुक्रमिक या अधीनता की व्यवस्था है जो श्रेष्ठता और हीनता के संबंधों से बंधी है। इसके शीर्ष पर ब्राह्मण और सबसे निचले पायदान पर शूद्र हैं।
- **अस्पृश्यता:** जाति व्यवस्था की सबसे घृणित विशेषता अस्पृश्यता की प्रथा थी: शूद्र/अतिशूद्र समूहों के लोगों को उच्च जातियों के लोगों से दूरी बनाए रखने के लिए मजबूर किया जाता था, उदाहरण के लिए शूद्रों को गांव में एक ही कुएं से पानी लेने की अनुमति नहीं थी।

जाति का ऐतिहासिक प्रक्षेप पथ

प्राचीन काल:

- चार **वर्णों का वर्गीकरण लगभग तीन हज़ार साल पुराना है** । हालाँकि, 'जाति व्यवस्था' अलग-अलग समय अवधि में अलग-अलग चीज़ों के लिए थी, इसलिए यह सोचना भ्रामक है कि एक ही व्यवस्था तीन हज़ार वर्षों तक जारी रही।
- **अपने प्रारंभिक चरण में, उत्तर वैदिक काल में लगभग 900-500 ईसा पूर्व के बीच, जाति व्यवस्था वास्तव में एक वर्ण व्यवस्था थी** और इसमें केवल चार प्रमुख विभाजन शामिल थे।
- ये विभाजन बहुत विस्तृत या बहुत कठोर नहीं थे, और ये जन्म से निर्धारित नहीं होते थे। ऐसा लगता है कि श्रेणियों के बीच आवागमन न केवल संभव था बल्कि काफी सामान्य भी था। के
- वल उत्तर वैदिक काल में ही जाति एक कठोर संस्था बन गई जिससे हम सुप्रसिद्ध परिभाषाओं से परिचित हैं।

औपनिवेशिक काल:

- **एक सामाजिक संस्था के रूप में जाति का वर्तमान स्वरूप औपनिवेशिक काल के साथ-साथ स्वतंत्र भारत में आए तेज़ी से बदलावों से भी बहुत प्रभावित हुआ है।** शुरुआत में, **ब्रिटिश प्रशासकों ने देश पर कुशलतापूर्वक शासन करने**

के तरीके सीखने के लिए जाति की जटिलताओं को समझने की कोशिश की । इनमें से कुछ प्रयासों ने देश भर में विभिन्न जनजातियों और जातियों के 'रीति-रिवाजों' पर बहुत ही व्यवस्थित और गहन सर्वेक्षणों और रिपोर्टों का रूप ले लिया।

- **1860 के दशक में शुरू हुई जनगणना 1881 से ब्रिटिश भारत सरकार द्वारा आयोजित एक नियमित दस-वर्षीय अभ्यास बन गई।**
- **हर्बर्ट रिस्ले के निर्देशन में 1901 की जनगणना विशेष रूप से महत्वपूर्ण थी क्योंकि इसका उद्देश्य जाति के सामाजिक पदानुक्रम** - यानी, विशेष क्षेत्रों में वरीयता का सामाजिक क्रम, और श्रेणी क्रम में प्रत्येक जाति की स्थिति के बारे में जानकारी एकत्र करना था।
- इस प्रयास का जाति की सामाजिक धारणाओं पर व्यापक प्रभाव पड़ा और विभिन्न जातियों के प्रतिनिधियों द्वारा जनगणना आयुक्त को सैकड़ों याचिकाएँ संबोधित की गईं, जिनमें सामाजिक स्तर पर उच्च स्थान का दावा किया गया और उनके दावों के लिए ऐतिहासिक और शास्त्रीय प्रमाण प्रस्तुत किए गए।
- जाति की गणना करने और जाति की स्थिति को आधिकारिक रूप से दर्ज करने के इस प्रकार के प्रत्यक्ष प्रयास ने संस्था को ही बदल दिया। इस प्रकार के हस्तक्षेप से पहले, जाति की पहचान बहुत अधिक तरल और कम कठोर थी;
- **दूसरे, भू-राजस्व बंदोबस्त और उससे जुड़ी व्यवस्थाओं और कानूनों ने ऊँची जातियों के प्रथागत (जाति-आधारित) अधिकारों को कानूनी मान्यता प्रदान की।**
- ये जातियाँ अब आधुनिक अर्थों में भूस्वामी बन गईं, न कि ज़मीन की उपज पर दावा करने वाले सामंती वर्ग, या विभिन्न प्रकार के राजस्व या नज़राने के दावे।
- पंजाब जैसी बड़े पैमाने की सिंचाई योजनाओं के साथ-साथ वहाँ आबादी बसाने के प्रयास भी किए गए, और इनका एक जातिगत आयाम भी था।
- **इसके अलावा, दलित जातियों के कल्याण के लिए, 1935 का भारत सरकार अधिनियम पारित किया गया, जिसने राज्य द्वारा विशेष व्यवहार के लिए चिन्हित जातियों और जनजातियों की सूचियों या 'अनुसूचियों' को कानूनी मान्यता प्रदान की। इस प्रकार 'अनुसूचित जनजातियाँ' और 'अनुसूचित जातियाँ' शब्द अस्तित्व में आए** ।
- पदानुक्रम में सबसे नीचे की वे जातियाँ, जिन्हें गंभीर भेदभाव का सामना करना पड़ा, जिनमें सभी तथाकथित 'अछूत' जातियाँ शामिल थीं, अनुसूचित जातियों में शामिल कर ली गईं।

स्वतंत्रता के बाद:

- 1947 में भारत की स्वतंत्रता ने औपनिवेशिक अतीत के साथ एक बड़ा, लेकिन अंततः आंशिक रूप से ही विराम लिया।
- **स्वतंत्रता-पूर्व काल में जातिगत विचारों ने अनिवार्य रूप से राष्ट्रवादी आंदोलन की व्यापक लामबंदी में भूमिका निभाई थी।**
- जाति के दोनों छोरों से " **दलित वर्गों" को** संगठित करने के प्रयास किए गए - उच्च जाति के प्रगतिशील सुधारकों द्वारा और साथ ही निम्न जातियों के सदस्यों द्वारा जैसे कि पश्चिमी भारत में **महात्मा जोतिबा फुले और बाबासाहेब अम्बेडकर** , दक्षिण में **अय्यनकली, श्री नारायण गुरु, ल्योथीदास और पेरियार (ई.वी. रामास्वामी नायकर) ।**
- **महात्मा गांधी और बाबासाहेब अम्बेडकर दोनों ने 1920 के दशक से अस्पृश्यता के खिलाफ विरोध प्रदर्शन आयोजित करना शुरू कर दिया था।**
- अस्पृश्यता विरोधी कार्यक्रम कांग्रेस के एजेंडे का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गए, ताकि जब तक स्वतंत्रता क्षितिज पर हो, तब तक राष्ट्रवादी आंदोलन के सभी क्षेत्रों में जाति भेद को समाप्त करने के लिए एक व्यापक सहमति बन चुकी थी।

- राष्ट्रवादी आंदोलन में जाति को एक सामाजिक बुराई और भारतीयों को विभाजित करने की एक औपनिवेशिक चाल मानने का प्रमुख विचार था। लेकिन राष्ट्रवादी नेता, विशेषकर महात्मा गांधी, एक साथ निचली जातियों के उत्थान के लिए काम करने, अस्पृश्यता और अन्य जातिगत प्रतिबंधों के उन्मूलन की वकालत करने और साथ ही, भूस्वामी उच्च जातियों को यह विश्वास दिलाने में सक्षम थे कि उनके हितों का भी ध्यान रखा जाएगा।
- स्वतंत्रता-पश्चात भारतीय राज्य ने इन विरोधाभासों को विरासत में प्राप्त किया और उन्हें प्रतिबिम्बित किया। एक ओर, राज्य जाति उन्मूलन के लिए प्रतिबद्ध था और उसने इसे संविधान में स्पष्ट रूप से अंकित किया था। दूसरी ओर, राज्य ऐसे आमूल-चूल सुधारों को लागू करने में असमर्थ और अनिच्छुक था जो जातिगत असमानता के आर्थिक आधार को कमज़ोर कर देते।
- एक अन्य स्तर पर, राज्य ने यह मान लिया कि यदि वह जाति-अंधी पद्धति से कार्य करता है, तो इससे जाति-आधारित विशेषाधिकार स्वतः ही कमज़ोर हो जाएँगे और अंततः यह संस्था समाप्त हो जाएगी। उदाहरण के लिए, सरकारी नौकरियों में नियुक्तियों में जाति का कोई ध्यान नहीं रखा गया, जिससे सुशिक्षित उच्च जातियों और अल्पशिक्षित या प्रायः निरक्षर निम्न जातियों को "समान" स्तर पर प्रतिस्पर्धा करने के लिए छोड़ दिया गया। इसका एकमात्र अपवाद अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण के रूप में था।
- दूसरे शब्दों में, स्वतंत्रता के तुरंत बाद के दशकों में, राज्य ने इस तथ्य से निपटने के लिए पर्याप्त प्रयास नहीं किए कि उच्च जातियाँ और निम्न जातियाँ आर्थिक और शैक्षिक दृष्टि से बिल्कुल समान नहीं थीं।
- राज्य की विकास गतिविधियों और निजी उद्योगों के विकास ने भी आर्थिक परिवर्तन की गति और तीव्रता के माध्यम से जाति को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया।
- आधुनिक उद्योग ने सभी प्रकार के नए रोज़गार सृजित किए जिनके लिए कोई जातिगत नियम नहीं थे। शहरीकरण और शहरों में सामूहिक जीवन की स्थितियों ने सामाजिक संपर्क के जाति-विभाजित स्वरूपों को जीवित रखना कठिन बना दिया।
- एक अलग स्तर पर, व्यक्तिवाद और योग्यतावाद के उदार विचारों से आकर्षित आधुनिक शिक्षित भारतीयों ने अधिक कट्टर जातिवादी प्रथाओं को त्यागना शुरू कर दिया। दूसरी ओर, यह उल्लेखनीय था कि जाति कितनी लचीली साबित हुई।
- औद्योगिक नौकरियों में भर्ती, चाहे वह मुंबई (तत्कालीन बॉम्बे) की कपड़ा मिलों में हो, कोलकाता (तत्कालीन कलकत्ता) की जूट मिलों में हो, या कहीं और, जाति और नातेदारी के आधार पर संगठित होती रही। आश्चर्य की बात नहीं कि सांस्कृतिक और घरेलू क्षेत्रों में ही जाति सबसे प्रबल साबित हुई।
- सजातीय विवाह, या जाति के भीतर विवाह करने की प्रथा, आधुनिकीकरण और परिवर्तन से काफी हद तक अप्रभावित रही। शायद, परिवर्तन का सबसे महत्वपूर्ण और महत्वपूर्ण क्षेत्र राजनीति रहा है।
- स्वतंत्र भारत में अपनी शुरुआत से ही, लोकतांत्रिक राजनीति जाति से गहराई से प्रभावित रही है। 1980 के दशक से हमने स्पष्ट रूप से जाति-आधारित राजनीतिक दलों का उदय भी देखा है। शुरुआती आम चुनावों में, ऐसा लगता था कि जातिगत एकजुटता चुनाव जीतने में निर्णायक भूमिका निभाती है।

जजमानी प्रणाली

- भारत में परस्पर निर्भरता की एक उल्लेखनीय परंपरा रही है जिसने इसे सदियों से एकजुट रखा है। और यह इस तथ्य के बावजूद है कि हमारा समाज जाति-प्रधान है जहाँ सामाजिक स्तरीकरण की प्रथाएँ मौजूद हैं। इसका एक उदाहरण **जजमानी व्यवस्था या विभिन्न जातियों की कार्यात्मक परस्पर निर्भरता है।**
- **जजमान या यजमान कुछ सेवाओं का प्राप्तकर्ता होता है। जजमानी व्यवस्था एक सामाजिक-आर्थिक और अनुष्ठानिक व्यवस्था है जिसमें एक जाति दूसरी जाति की सेवाएँ प्राप्त करती है** ।
- यह व्यवस्था शुरू में गाँवों में खाद्यान्न उत्पादक परिवारों और उन्हें अन्य वस्तुओं और सेवाओं से सहायता प्रदान करने वाले परिवारों के बीच विकसित हुई।

- सामाजिक व्यवस्था का संपूर्ण **दायरा जजमानी से जुड़ा था, जिसमें अनेक प्रकार के भुगतान और दायित्व शामिल थे।** कोई भी जाति आत्मनिर्भर नहीं थी और कई मामलों में दूसरी जातियों पर निर्भर थी। इस प्रकार, प्रत्येक जाति एक कार्यात्मक समूह के रूप में कार्य करती थी और जजमानी व्यवस्था के माध्यम से दूसरी जातियों से जुड़ी हुई थी।
- यद्यपि जजमानी व्यवस्था हिंदू जातियों के आपसी जुड़ाव का प्रतिनिधित्व करती थी, फिर भी व्यवहार में यह व्यवस्था धर्म की सीमा को पार कर विभिन्न धर्मों के बीच संबंध भी स्थापित करती थी।
- उदाहरण के लिए, हिंदू की मुस्लिम बुनकर या धोबी पर निर्भरता या मुस्लिम की हिंदू व्यापारी/दर्जी/स्वर्णकार पर निर्भरता, आदि, इसी व्यवस्था का एक उदाहरण है, हालाँकि इसे ऐसा नहीं कहा जाता।
- हालाँकि, पश्चिमीकरण, वैश्वीकरण, जाति व्यवस्था का कमजोर होना, शिक्षा का विस्तार और इसके परिणामस्वरूप रोजगार जैसे विभिन्न विकासों ने जजमानी प्रणाली को रूपांतरित कर दिया है, जो परस्पर निर्भरता के पारंपरिक आधार से आगे निकल गई है।

जजमानी प्रणाली के कार्य

- **आर्थिक लेन-देन** : इस प्रणाली में सेवा प्रदाता (कमीन) और संरक्षक (जजमान) के बीच लेन-देन होता है। सेवा प्रदाता एक निश्चित शुल्क के बदले सेवा प्रदान करता है, जो धन, माल या कृषि उपज के रूप में हो सकता है।
- इस प्रकार, यह प्रणाली व्यापार करने का एक अनौपचारिक तरीका है।

उदाहरण: एक सुनार संरक्षक के परिवार के लिए एक निश्चित मूल्य पर सोने के आभूषण बनाता है। एक ब्राह्मण संरक्षक के परिवार को अनुष्ठानिक सेवा प्रदान करता है।

- **सामाजिक संबंध** : जजमानी व्यवस्था एक व्यवस्था की विभिन्न जातियों के बीच संबंध स्थापित करने और सद्भावनापूर्वक रहने की एक पद्धति के रूप में कार्य करती है।
- यह व्यवस्था परस्पर निर्भरता के आधार पर विकसित हुई जिसने एक सामाजिक व्यवस्था बनाने की दिशा में काम किया। लेकिन यह समतावादी नहीं है।

उदाहरण: एक जमींदार किसी कुम्हार के साथ बुरा व्यवहार नहीं कर सकता क्योंकि उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समूह की सेवा की आवश्यकता होगी।

- **राजनीतिक समर्थन** : एक जजमान और उसका कमीन एक विशिष्ट ग्रामीण समाज में एक एकीकृत शासक समूह के रूप में कार्य करते हैं।
- जजमान को किसी विशेष गाँव में सत्ता का प्रयोग करने और अपने शासन की वैधता प्रदर्शित करने के लिए अपने कमीन के समर्थन की आवश्यकता होगी।

उदाहरण: ज़मींदारी व्यवस्था जजमानी व्यवस्था के आधार पर विकसित हुई।

जजमानी प्रणाली की कमियाँ

- **शोषण** : जजमानी प्रथा अपनी प्रतिबंधात्मक प्रकृति के कारण कुछ समाजों में शोषण का साधन रही है। कमीन को जमींदारों के परिवार में काम करने वाले के रूप में इस्तेमाल किया जाता है और उनसे अपमानजनक काम करवाए जाते हैं। इस प्रथा ने बंधुआ मजदूरी जैसी समस्याओं को जन्म दिया है।
- **सामाजिक बंधन** : जजमानी व्यवस्था किसी विशेष जाति के लोगों पर अन्य व्यवसाय करने पर प्रतिबंध लगाती है। इसके अतिरिक्त, किसी जाति के वंशज को परिस्थिति की परवाह किए बिना वही कार्य करने के लिए बाध्य किया जाता है। इसके अतिरिक्त, कमीन जजमान के अलावा अन्य लोगों को सेवाएँ प्रदान नहीं कर सकता।

प्रमुख जाति

- **'प्रमुख जाति' शब्द का प्रयोग उन जातियों के लिए किया जाता है जिनकी जनसंख्या अधिक थी और जिन्हें स्वतंत्रता के बाद लागू किए गए आंशिक भूमि सुधारों के तहत भूमि अधिकार प्रदान किए गए थे।**

- भूमि सुधारों ने पूर्व दावेदारों, यानी उच्च जातियों, जो 'अनुपस्थित ज़मींदार' थे, से उनके अधिकार छीन लिए क्योंकि वे लगान वसूलने के अलावा कृषि अर्थव्यवस्था में कोई भूमिका नहीं निभाते थे। वे अक्सर गाँवों में भी नहीं रहते थे, बल्कि कस्बों और शहरों में रहते थे।
- ये भूमि अधिकार अब दावेदारों की अगली श्रेणी के पास आ गए, जो कृषि प्रबंधन में शामिल थे, लेकिन स्वयं कृषक नहीं थे। ये मध्यवर्ती जातियाँ भूमि की जुताई और देखभाल के लिए निचली जातियों, विशेष रूप से 'अछूत' जातियों, के श्रम पर निर्भर थीं।
- हालाँकि, भूमि अधिकार प्राप्त करने के बाद, उन्होंने पर्याप्त आर्थिक शक्ति प्राप्त कर ली। उनकी बड़ी संख्या ने उन्हें सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार पर आधारित चुनावी लोकतंत्र के युग में राजनीतिक शक्ति भी प्रदान की।
- इस प्रकार, **ये मध्यवर्ती जातियाँ ग्रामीण इलाकों में 'प्रमुख' जातियाँ बन गईं और क्षेत्रीय राजनीति और कृषि अर्थव्यवस्था में निर्णायक भूमिका निभाई** । ऐसी प्रमुख जातियों के उदाहरणों में बिहार और उत्तर प्रदेश के यादव, कर्नाटक के वोक्कालिगा, आंध्र प्रदेश के रेड्डी और खम्मा, महाराष्ट्र के मराठा, पंजाब और हरियाणा के जाट शामिल हैं।

समकालीन रुझान

- वर्तमान समय में, **जीवन की बदलती परिस्थितियों के साथ खुद को समायोजित करने के प्रयासों में, जाति व्यवस्था ने** नई भूमिकाएँ **ग्रहण** कर ली **हैं।**
- **औद्योगीकरण और शहरीकरण के अलावा, पश्चिमीकरण, संस्कृतिकरण, भारतीय राज्यों का पुनर्गठन, शिक्षा का प्रसार, सामाजिक-धार्मिक सुधार, स्थानिक और व्यावसायिक गतिशीलता तथा बाजार अर्थव्यवस्था के विकास जैसे अन्य कारकों ने भी जाति व्यवस्था को अत्यधिक प्रभावित किया है।**
- **जाति चेतना:** जाति समूहों के सदस्यों की जाति-चेतना बढ़ रही है। प्रत्येक जाति अपने हितों की रक्षा करना चाहती है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, जातियों ने आरक्षण की मांग के लिए **श्रमिक संघों या जाट महासभा जैसे जाति संघों के मॉडल पर खुद को संगठित करना शुरू कर दिया है।**
- **राजनीतिक प्रभाव: जाति और राजनीति एक-दूसरे को प्रभावित करने लगे हैं।** जाति हमारी राजनीति का एक अभिन्न अंग बन गई है। वास्तव में, यह राजनीति पर अपनी पकड़ मज़बूत कर रही है।
- चुनाव अब जाति के आधार पर लड़े जा रहे हैं। उम्मीदवारों का चयन, मतदान विश्लेषण, विधायक दल के नेताओं का चयन, मंत्रिपरिषद का बंटवारा आदि, बहुत हद तक जाति पर आधारित हैं।
- भारत में प्रत्येक राज्य की राजनीति वस्तुतः अपनी 'प्रमुख जातियों' के टकराव की राजनीति है। उदाहरण के लिए, चुनाव में सामाजिक इंजीनियरिंग।
- **संवैधानिक सुरक्षा उपाय:** अनुसूचित जातियों और अन्य पिछड़े वर्गों (ओबीसी) के लिए संवैधानिक **सुरक्षा उपायों ने जाति व्यवस्था को नया जीवन दिया है** । इन प्रावधानों ने कुछ वर्गों को आरक्षण का स्थायी लाभ उठाने के लिए निहित स्वार्थ विकसित करने का अवसर दिया है।
- विभिन्न जातियों द्वारा आरक्षण की माँग में आई तेज़ी का कारण इन प्रावधानों और उनकी प्रभावशीलता को माना जा सकता है, जैसे सरकारी सेवाओं में पदोन्नति में आरक्षण की माँग।
- **संस्कृतिकरण और पश्चिमीकरण:** जाति व्यवस्था में दो महत्वपूर्ण प्रवृत्तियाँ देखी गईं - संस्कृतिकरण और पश्चिमीकरण की प्रक्रिया।
- पूर्व एक ऐसी प्रक्रिया को संदर्भित करता है जिसके द्वारा निचली जातियाँ कुछ प्रमुख उच्च जातियों के मूल्यों, प्रथाओं और जीवन-शैली का अनुकरण करती हैं, जैसे, मांसाहार, शराब पीना और अपने देवताओं को पशु बलि देना, इस विश्वास के साथ कि इससे उन्हें उच्च जाति का दर्जा प्राप्त होगा।
- जबकि उत्तरार्द्ध एक ऐसी प्रक्रिया को दर्शाता है जिसमें उच्च जाति के लोग पश्चिमी लोगों के मॉडल पर अपनी जीवन शैली को ढालते हैं।

- एमएन श्रीनिवास के अनुसार, "पश्चिमीकरण" का अर्थ "ब्रिटिश शासन के 150 से अधिक वर्षों के परिणामस्वरूप भारतीय समाज और संस्कृति में आए परिवर्तन" हैं और यह शब्द विभिन्न स्तरों पर होने वाले परिवर्तनों को समाहित करता है - प्रौद्योगिकी, संस्थान, विचारधारा और मूल्य।

जाति व्यवस्था में परिवर्तन के कारण

आधुनिक समय में जाति व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुए हैं। यहाँ जाति व्यवस्था में परिवर्तन लाने वाले कारकों का संक्षेप में परीक्षण किया गया है।

- **समान न्याय व्यवस्था:** ब्रिटिश सरकार ने एक समान न्याय व्यवस्था लागू की, जिसे स्वतंत्रता के बाद लोकतांत्रिक सरकारों ने जारी रखा। भारत का संविधान सभी को समानता का आश्वासन देता है और जाति व्यवस्था के एक अभिन्न अंग, अस्पृश्यता की प्रथा को गैरकानूनी घोषित करता है।
- विधि के शासन पर आधारित एक समान न्याय व्यवस्था देश में जाति व्यवस्था की प्रथा को बदलने में सहायक रही है। उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता निवारण की बात करता है।
- **आधुनिक शिक्षा:** अंग्रेजों ने पूरे भारत में एक समान तरीके से आधुनिक धर्मनिरपेक्ष शिक्षा लागू की। आज़ादी के बाद, सभी नागरिकों को, चाहे उनकी जाति कुछ भी हो, शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान की गईं, जिससे जाति व्यवस्था की वैधता कम हो गई। उदाहरण के लिए, हमारे वर्तमान राष्ट्रपति एक दलित वकील हैं।
- **औद्योगीकरण और शहरीकरण:** औद्योगीकरण के कारण गैर-कृषि रोज़गार के अनेक अवसर सृजित हुए हैं, जिससे भूमि-धारक उच्च जातियों की पकड़ कमज़ोर हुई है। विभिन्न जातियों, वर्गों और धर्मों के लोग कारखानों, कार्यालयों, कार्यशालाओं आदि में एक साथ काम करते हैं, जो दो शताब्दियों पहले अकल्पनीय था।
- शहरों के विकास ने सभी जातियों के लोगों को एक साथ खींचा है और उन्हें अपनी कई जातिगत सीमाओं को दरकिनार करते हुए एक साथ रहने के लिए मजबूर किया है। उदाहरण के लिए, मिलिंद कांबले द्वारा डिक्की का गठन और दलित पूंजीवाद का उदय।
- **आधुनिक परिवहन और संचार व्यवस्था:** रेलगाड़ी, बस, जहाज, हवाई जहाज, ट्रक आदि जैसे आधुनिक परिवहन साधन लोगों और वस्तुओं के आवागमन में बहुत मददगार रहे हैं।
- समाचार पत्र, डाक, तार, टेलीफोन, रेडियो, टेलीविजन आदि जैसे आधुनिक संचार साधनों ने लोगों को जाति की संकीर्ण दुनिया से बाहर निकलने में मदद की है।
- **स्वतंत्रता संग्राम और लोकतंत्र:** अंग्रेजों के खिलाफ छेड़े गए स्वतंत्रता संग्राम ने सभी जातियों के लोगों को एक साझा उद्देश्य के लिए एकजुट किया।
- इसके अलावा, स्वतंत्रता के तुरंत बाद लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था की स्थापना ने बिना किसी भेदभाव के सभी को समान सामाजिक-आर्थिक अवसर प्रदान करके जातिवाद को एक और झटका दिया। उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 15 सार्वजनिक रोजगार में समानता की बात करता है।
- **गैर-ब्राह्मण आंदोलन:** ज्योतिराव फुले जैसे नेताओं ने 1873 में ब्राह्मण वर्चस्व के विरुद्ध एक आंदोलन चलाया। इसी प्रकार, ई. वी. रामासामी का आत्म-सम्मान आंदोलन भी समय के साथ, विशेष रूप से दक्षिण में, लोकप्रिय हुआ। इसने निचली जातियों में जागरूकता पैदा की और उनमें "आत्म-सम्मान" की भावना का संचार किया।

जाति व्यवस्था की समस्याएँ

- **लोकतांत्रिक मूल्यों के विरुद्ध:** बेशक, जाति व्यवस्था एक सामाजिक कुप्रथा है। यह विडंबना ही है कि देश को आज़ाद हुए सात दशक से भी ज़्यादा समय हो गया है, फिर भी हम जाति व्यवस्था के चंगुल से मुक्त नहीं हो पाए हैं। यहाँ तक कि लोकतांत्रिक चुनावों में भी जाति एक प्रमुख कारक के रूप में मौजूद है।
- **राष्ट्रीय एकता के लिए समस्या:** जाति व्यवस्था न केवल हमारे बीच वैमनस्य बढ़ाती है, बल्कि हमारी एकता में भी भारी खाई पैदा करने का काम करती है।

- जाति व्यवस्था बचपन से ही प्रत्येक मानव मन में ऊँच-नीच, हीनता के बीज बोती है। यही अंततः क्षेत्रवाद का कारक बन जाती है।
- जाति व्यवस्था से ग्रस्त समाज की दुर्बलता व्यापक क्षेत्र में राजनीतिक एकता स्थापित नहीं कर पाती और देश पर किसी भी बाहरी आक्रमण के समय एक बड़े वर्ग को हतोत्साहित करती है। स्वार्थी राजनेताओं के कारण जातिवाद पहले से भी अधिक विकराल रूप ले चुका है, जिससे सामाजिक कटुता बढ़ी है।
- **विकास की प्रगति में बाधा:** राजनीतिक दलों द्वारा जातिगत घृणा या जातिगत तुष्टिकरण से उत्पन्न तनाव राष्ट्र की प्रगति में बाधा डालता है।
- **विवाह** : अधिकांश भारतीय विवाह माता-पिता द्वारा तय किए जाते हैं। आदर्श जीवनसाथी चुनने के लिए वे कई कारकों पर विचार करते हैं। इनमें से, जाति एक महत्वपूर्ण कारक है।
- लोग नहीं चाहते कि उनके बेटे या बेटी का विवाह किसी अन्य जाति के व्यक्ति से हो। जैसा कि "अछूत" शब्द से पता चलता है, एक ब्राह्मण कभी भी अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के व्यक्ति से विवाह नहीं करेगा।
- **शिक्षा** : सरकारी विश्वविद्यालयों में वंचित पृष्ठभूमि से आने वाले छात्रों के लिए जाति-आधारित आरक्षण है। इस पृष्ठभूमि का कोई भी व्यक्ति आरक्षण के आधार पर समान या कम शैक्षणिक अंकों के साथ किसी उच्च-स्तरीय कॉलेज में प्रवेश पा सकता है। हालाँकि, गरीब ब्राह्मण इस आरक्षण प्रणाली से वंचित हैं।
- उदाहरण के लिए, एक ब्राह्मण को उच्च-स्तरीय विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के लिए कुछ परीक्षाओं में 100% अंक प्राप्त करने होते हैं। जबकि निम्न-जाति के आवेदक विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के लिए परीक्षा को छोड़ भी सकते हैं।
- **नौकरियाँ:** सार्वजनिक क्षेत्र की नौकरियों का एक बड़ा हिस्सा जातिगत आरक्षण के आधार पर आवंटित किया जाता है। इस आरक्षण से ब्राह्मण पृष्ठभूमि के गरीब समुदाय काफी प्रभावित होते हैं।

धार्मिक विविधता

- ❖ सामान्य अर्थ में, धर्म विश्वासों, भावनाओं, सिद्धांतों और प्रथाओं का एक समूह है जो मनुष्य और पवित्रता या ईश्वर के बीच संबंधों को परिभाषित करता है।
- ❖ सदियों से, भारत कई धार्मिक सिद्धांतों के विकास का साक्षी रहा है और दुनिया भर के विभिन्न धर्मों के लोगों ने इसे अपनी मातृभूमि बनाया है। इस प्रकार, यह धार्मिक विविधता का एक सर्वोत्कृष्ट देश है जहाँ दुनिया के लगभग सभी प्रमुख धर्मों का उनके संबंधित अनुयायी पालन करते हैं।
- ❖ भारत में प्रमुख धर्मों में हिंदू धर्म, इस्लाम, ईसाई धर्म, सिख धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म शामिल हैं। पारसी धर्म, यहूदी धर्म और बहाई धर्म कम अनुयायी वाले धर्म हैं। साथ ही, यह देश कई स्वदेशी धर्मों का घर है जो सदियों से प्रमुख धर्मों के प्रभाव से बचे हुए हैं और अपनी ज़मीन मज़बूती से जमाए हुए हैं।
- ❖ देश में विविध धार्मिक समूहों का क्षेत्रीय सह-अस्तित्व इसे वास्तव में अद्वितीय बनाता है।
- ❖ भारत का संविधान भारत की धार्मिक विविधता को मान्यता देता है और इस प्रकार इसे एक धर्मनिरपेक्ष गणराज्य घोषित करता है, जो बिना किसी भेदभाव के अपने सभी नागरिकों को धर्म के पालन और प्रचार की स्वतंत्रता की गारंटी देता है।
- ❖ हालाँकि, इस धार्मिक विविधता ने सांप्रदायिकता और सांप्रदायिक हिंसा के रूप में देश के सामने लगातार चुनौतियाँ खड़ी की हैं।
- ❖ ब्रिटिश काल से शुरू होकर, सांप्रदायिकता देश की एकता के लिए सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक रही है।

भाषिक विभिन्नता

- ❖ भारत एक बहुभाषी देश है। भारत में लगभग 1000 से ज़्यादा ऐसी भाषाएँ हैं जो मातृभाषा के रूप में बोली जाती हैं। इनमें से कई जनजातीय बोलियाँ हैं जो कुल जनसंख्या के एक प्रतिशत से भी कम लोगों द्वारा बोली जाती हैं।
- ❖ जनगणना निदेशालय की एक रिपोर्ट के अनुसार, देश में 22 अनुसूचित भाषाएँ और 100 गैर-अनुसूचित भाषाएँ हैं, जिन्हें एक लाख या उससे अधिक लोगों द्वारा बोला जाता है।
- ❖ संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त भाषाएँ दो भाषाई परिवारों से संबंधित हैं: इंडो-आर्यन और द्रविड़ियन। मलयालम, कन्नड़, तमिल और तेलुगु चार प्रमुख द्रविड़ भाषाएँ हैं।
- ❖ इंडो-आर्यन परिवार की भाषाएँ भारत की कुल जनसंख्या के 75 प्रतिशत लोगों द्वारा बोली जाती हैं, जबकि द्रविड़ परिवार की भाषाएँ 20 प्रतिशत लोगों द्वारा बोली जाती हैं। इस भाषाई विविधता के बावजूद, हमारे पास हमेशा से संपर्क भाषाएँ रही हैं, हालाँकि यह युगों-युगों में बदलती रही हैं।
- ❖ प्राचीन काल में यह संस्कृत थी, मध्यकाल में यह अरबी या फ़ारसी थी और वर्तमान समय में हमारे पास हिंदी और अंग्रेजी हैं।
- ❖ भाषा भारत में पहचान के प्रमुख शक्तिशाली प्रतीकों में से एक है। भारतीय संघ के राज्यों का सीमांकन मुख्यतः बोली जाने वाली भाषा के आधार पर किया जाता है। लोगों की पहचान उनकी मातृभाषा के माध्यम से ही किसी विशिष्ट भाषाई, जातीय, धार्मिक या सांस्कृतिक समूह से होती है।
- ❖ इसके अलावा, भाषा देश में कई जातीय आंदोलनों का आधार रही है।
- ❖ हालाँकि, यह भाषाई विविधता कई चुनौतियाँ पेश करती है जो भाषा, क्षेत्रवाद, भाषाई अंधराष्ट्रवाद के आधार पर नए राज्यों की मांग के रूप में सामने आती रहती हैं और स्वतंत्रता के बाद से हिंदी को प्रमुखता से तूफ़ान का केंद्र पाया गया है।

जातीय और नस्लीय विविधता

- ❖ जातीयता को नस्ल, वंश और संस्कृति के संदर्भ में विशिष्ट प्रकृति वाले लोगों के समूह के रूप में परिभाषित किया जाता है। इस प्रकार, एक जातीय समूह एक सामाजिक समूह है जिसकी कुछ साझा ऐतिहासिकता और सामान्य विशेषताएँ होती हैं, जैसे नस्ल, जनजाति, भाषा, धर्म, वेशभूषा, आहार आदि।
- ❖ जातीयता कोई स्थिर या पूर्वनिर्धारित श्रेणी नहीं है; यह साझा आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक हितों की अभिव्यक्ति है और एक बहुलवादी समाज में कुछ सदस्यों द्वारा उनकी सुरक्षा है।
- ❖ इस प्रकार, जातीयता का उपयोग कभी-कभी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए लामबंदी के एक साधन के रूप में किया जाता है।
- ❖ जातीयता एक सांस्कृतिक घटना है, और इसलिए कोई भी संस्कृति श्रेष्ठ या निम्न नहीं होती। संस्कृति लोगों की होती है, और वे इसे अन्य लोगों की तरह ही प्रिय मानते हैं।

जातीय संघर्ष

- कभी-कभी, जातीय समूह अपने वास्तविक या कथित हितों के टकराव के कारण एक-दूसरे के बिल्कुल विपरीत समूहों के रूप में कार्य करते हैं। हितों का ऐसा टकराव सांप्रदायिकता का रूप भी ले सकता है। कुछ समूह अपनी बड़ी संख्या या श्रेष्ठ सामाजिक पृष्ठभूमि का अनुचित लाभ उठाकर राष्ट्रीय संसाधनों का एक बड़ा हिस्सा हड़प सकते हैं।
- कम आबादी वाले अन्य समुदाय अपने 'वैध दावों' से वंचित महसूस कर सकते हैं। विभिन्न जातीय समूहों के बीच आपसी अविश्वास, असंतोष और दूरी की स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं।

- एक दृष्टिकोण यह है कि 'सापेक्ष वंचना' सभी जातीय संघर्षों का मूल कारण है। वितरणात्मक न्याय का अभाव, संसाधनों तक अलग-अलग पहुँच और सांस्कृतिक भिन्नताओं को जातीय समस्याओं के मुख्य कारण माना गया है।
- कभी-कभी जातीय संघर्ष 'बाहरी' और 'अंदरूनी' के बीच किए गए भेद के कारण होता है। 'हम' (अंदरूनी) बनाम 'वे' (बाहरी) का रवैया सभी समाजों में पाया जाता है।
- अप्रवासियों के साथ 'विदेशी' जैसा व्यवहार किया जाता है। ऐसी समस्या तब उत्पन्न होती है जब असमिया, बंगाली, गुजराती, उड़िया, हिंदी, कश्मीरी, पंजाबी, उर्दू, मराठी और सिंधी बोलने वाले लोग राष्ट्रीय संदर्भ में एक-दूसरे को अलग मानते हैं।
- ऐसे जातीय समूहों को 'आदिम समुदाय' कहा जा सकता है। एक राज्य के सदस्य अक्सर दूसरे राज्यों के सदस्यों को बाहरी मानते हैं। वे नहीं चाहेंगे कि वे उनके राज्य में रोज़गार करें।
- उप-क्षेत्रों, शहरों, कस्बों और यहाँ तक कि गाँवों का इस्तेमाल अक्सर अंदरूनी और बाहरी लोगों के बीच की रेखा खींचने के लिए किया जाता है।

नस्लीय विविधता

नस्ल लोगों का एक समूह है जिसमें विशिष्ट शारीरिक विशेषताएं होती हैं जैसे त्वचा का रंग, नाक का प्रकार, बालों का रूप आदि। भारत में प्रमुख नस्लीय प्रकार हैं:

- **नेग्रिटो:** नेग्रिटो वे लोग हैं जो अफ्रीका में पाए जाने वाले अश्वेत नस्ल के हैं। भारत में दक्षिण भारत की कुछ जनजातियाँ, जैसे कादर और पनियान, भी हैं।
- **प्रोटो-ऑस्ट्रेलॉइड्स:** एक जातीय समूह जिसमें ऑस्ट्रेलियाई आदिवासी और दक्षिणी एशिया तथा प्रशांत द्वीप समूह के अन्य लोग शामिल हैं। इनमें से कुछ जनजातियाँ हैं झारखंड के सिंहभूम की हो और मध्य प्रदेश के विंध्य पर्वतमाला की भील।
- **मंगोलॉयड:** एशिया के मूल निवासी एक प्रमुख जातीय समूह हैं, जिनमें उत्तरी और पूर्वी एशिया के लोग शामिल हैं। भारत के उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों में मंगोलॉयड प्रजाति की जनजातियाँ पाई जाती हैं।
- **नॉर्डिक:** ये लंबे कद, लंबे सिर, गोरी त्वचा और बालों, और नीली आँखों वाले शारीरिक प्रकार के होते हैं। भारत में, ये देश के उत्तरी भाग के विभिन्न भागों में, विशेष रूप से पंजाब और राजपूताना में पाए जाते हैं।
- ऐसे सभी नस्लीय भेदभाव सामूहिक पहचान के संदर्भ में निहितार्थ रखते हैं, जिसके बारे में कहा जाता है कि वह "राजनीतिक पाई" पर कब्ज़ा जमाए हुए है।
- इससे संघर्ष तो पैदा होता है, लेकिन नस्ल आधारित संघर्ष इतना स्पष्ट नहीं होता। फिर भी, अरुणाचल प्रदेश के निवासी नीडो तानिया की दिल्ली में नस्लीय आक्रोश के कारण पीट-पीटकर हत्या की घटना भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 की छवि धूमिल करती है।
- इसके बाद पूर्वोत्तर के लोगों की समस्याओं और ऐसे नस्लीय भेदभाव का आकलन करने के लिए गठित बेजबरुआ समिति एक सकारात्मक कदम है।

रूढ़िवाद/अंधविश्वास

- भारत में जीवन विभिन्न प्रकार के अंधविश्वासों से भरा पड़ा है, जिनमें सबसे विचित्र से लेकर अहानिकर तक शामिल हैं। विविधताओं से भरपूर देश होने के कारण, भारत में कई मूल्य हैं जो आदिम भी हैं और आधुनिक भी।
- कुछ आदिम मूल्य इतने गहरे तक जड़ जमा चुके हैं कि आज भी वे सामाजिक मानदंडों को निर्धारित करते प्रतीत होते हैं।
- ये मूल्य अंधविश्वासों में परिलक्षित होते हैं, जिनका लोगों के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

- इस तरह की रूढ़िवादिता या अंधविश्वास का दूसरा पहलू महिलाओं, विकलांगों, कुछ जानवरों के साथ भेदभाव, समाज में संघर्ष, धर्म का टकराव और यहां तक कि पुराने रीति-रिवाजों के कारण व्यक्तिगत नुकसान भी है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं पर डायन, अपशकुन होने का आरोप लगाया जाता है, जिसके कारण कई मामलों में उन्हें गांव से बहिष्कृत कर दिया जाता है, यहां तक कि उनके साथ दुर्व्यवहार, नग्न परेड और हिंसा भी की जाती है।
- इसके अलावा, पुत्र संतान की चाहत, जिसे अपने माता-पिता के लिए संस्कार करने वाला माना जाता है, ने भी बालिकाओं को हाशिये पर डाल दिया, जिसके कारण कन्या भ्रूण हत्या, कन्या भ्रूण हत्या और महिलाओं के प्रति भेदभाव और अधीनता की प्रथा कायम रही, जो उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के प्रति उपेक्षा के रूप में परिलक्षित होती है।

संक्रमणकालीन समाज

- भारत को एक "प्रिज्मीय समाज" या परिवर्तनशील समाज कहा जाता है जो निरंतर परिवर्तन के दौर से गुज़र रहा है। यहाँ आधुनिकता के साथ-साथ आदिम मूल्यों का भी संगम है।
- यह एक विकासशील समाज है जहाँ धर्मनिरपेक्षता, मूल्य बहुलवाद आदि जैसे आधुनिक मूल्यों के साथ-साथ जाति, भाषा, क्षेत्र और धर्म पर आधारित पारंपरिक मूल्य भी सह-अस्तित्व में हैं।
- यहाँ, जनता के संप्रभु लोकाचार वाले लोकप्रिय चुनाव पर आधारित लोकतंत्र के साथ-साथ "खाप पंचायत" जैसी संस्थाएँ भी एक साथ विद्यमान हैं।
- ऐसी विविधता भारतीय जीवन में विविधता लाती है। फिर भी, भारत आधुनिक मूल्यों के साथ तेज़ी से आगे बढ़ रहा है जिनमें मानवाधिकार, महिलाओं के प्रति सम्मान, समानता, सामाजिक-आर्थिक न्याय आदि शामिल हैं।
- देश के औद्योगिक हिस्से में पश्चिम से प्राप्त तत्व और मूल्य हैं, और इसलिए वैश्वीकरण और सभ्यतागत मूल्यों के आदान-प्रदान की सराहना की जाती है, जबकि कृषि प्रधान समाज विखंडित और अंतर्मुखी होने के कारण बाहरी मूल्यों की कद्र नहीं करता। हालाँकि, दोनों समाजों का अस्तित्व अविभाज्य है।

परिवार और रिश्तेदारी

भारतीय समाज में परिवार

- परिवार समाज की आधारभूत इकाई है। यह पहला और सबसे तात्कालिक सामाजिक परिवेश है जिससे बच्चा परिचित होता है।
- परिवार में ही बच्चा बचपन में भाषा, व्यवहार और सामाजिक मानदंड सीखता है। किसी न किसी रूप में परिवार एक सार्वभौमिक समूह है।
- यह आदिवासी, ग्रामीण और शहरी समुदायों में और सभी धर्मों और संस्कृतियों के अनुयायियों के बीच विद्यमान है।
- यह किसी न किसी रूप में सबसे स्थायी संबंध प्रदान करता है। परिवार की सार्वभौमिक और स्थायी प्रकृति के बावजूद, विभिन्न समाजों में इसकी संरचना में व्यापक अंतर देखा जा सकता है।
- आदिवासी और कृषि प्रधान समाजों में कई पीढ़ियों के लोग एक साथ रहते हैं। इन समाजों में बड़े और 'संयुक्त परिवार' होते हैं।
- औद्योगिक समाज में परिवार पति, पत्नी और उनके बच्चों तक सीमित होता है जिसे "एकल परिवार" कहा जाता है।

परिवार की विशेषताएँ

परिवार की निम्नलिखित विशेषताएं हैं:

- सार्वभौमिकता
- सामाजिक वातावरण जो व्यक्ति के प्रारंभिक जीवन को प्रभावित करता है।

- भावात्मक आधार, भावुकता
- सीमित आकार
- सामाजिक संरचना में केंद्रीय स्थान
- सदस्यों में जिम्मेदारी की भावना।
- व्यवहार का सामाजिक विनियमन.

परिवार के विविध रूप

- निवास के नियम के संदर्भ में, कुछ समाज अपने विवाह और पारिवारिक रीति-रिवाजों में मातृस्थानीय होते हैं, जबकि अन्य पितृस्थानीय होते हैं।
- पहले मामले में, नवविवाहित जोड़ा महिला के माता-पिता के साथ रहता है, जबकि दूसरे मामले में जोड़ा पुरुष के माता-पिता के साथ रहता है।
- उत्तराधिकार के नियमों के संबंध में, मातृसत्तात्मक समाज में संपत्ति माता से पुत्री को हस्तांतरित होती है, जबकि पितृसत्तात्मक समाज में संपत्ति पिता से पुत्र को हस्तांतरित होती है।
- अधिकार और प्रभुत्व के संदर्भ में: एक पितृसत्तात्मक पारिवारिक संरचना विद्यमान है जहाँ पुरुष अधिकार और प्रभुत्व का प्रयोग करते हैं, और एक मातृसत्तात्मक संरचना विद्यमान है जहाँ महिलाएँ भी समान रूप से प्रमुख भूमिका निभाती हैं।
- हालाँकि, पितृसत्तात्मकता के विपरीत, मातृसत्तात्मकता एक सैद्धांतिक अवधारणा रही है, न कि एक अनुभवजन्य अवधारणा।
- मातृसत्तात्मकता का कोई ऐतिहासिक या मानवशास्त्रीय प्रमाण नहीं है - अर्थात, ऐसे समाज जहाँ महिलाएँ प्रभुत्व रखती हैं।
- हालाँकि, मातृसत्तात्मक समाज भी विद्यमान हैं, अर्थात् ऐसे समाज जहाँ महिलाएँ अपनी माताओं से संपत्ति विरासत में प्राप्त करती हैं, लेकिन उस पर नियंत्रण नहीं रखतीं, न ही वे सार्वजनिक मामलों में निर्णय लेने वाली होती हैं।

संयुक्त परिवार बनाम एकल परिवार

संयुक्त परिवार की विशेषताएँ

- अधिनायकवादी संरचना - निर्णय लेने का अधिकार कुलपति के हाथों में
- पारिवारिक संगठन - व्यक्तिगत हित समग्र रूप से परिवार के हितों के अधीन होते हैं
- सदस्यों की स्थिति उनकी आयु और रिश्ते से निर्धारित होती है
- वैवाहिक संबंधों की तुलना में संतान और भ्रातृ संबंधों को प्राथमिकता दी जाती है
- परिवार संयुक्त जिम्मेदारी के आदर्श पर चलता है - बेटा पिता का ऋण चुकाता है
- सभी सदस्यों को समान ध्यान मिलता है - अमीर बेटे और गरीब बेटे के साथ समान व्यवहार किया जाता है
- परिवार में अधिकार वरिष्ठता के सिद्धांत पर निर्धारित होता है

एकल परिवार की विशेषताएँ

- लोकतांत्रिक निर्णय लेना
- छोटे आकार का
- उच्च भौगोलिक गतिशीलता
- वैवाहिक संबंध प्रमुख है

परिवार के एकलीकरण को बढ़ावा देने वाले कारक

- **तकनीकी क्रांति:** बिजली, पाइपयुक्त जल जैसी सुविधाओं तक पहुंच ने आम आदमी के जीवन स्तर को बढ़ा दिया है, जिससे अंततः उसके उत्पादक कार्य प्रभावित हुए हैं, पारिवारिक अर्थव्यवस्था में आत्मनिर्भरता का परित्याग, व्यावसायिक और जनसंख्या गतिशीलता, रिश्तेदारी संबंधों का कमजोर होना आदि।

- **जनसंख्या क्रांति:** कृषि से विनिर्माण और सेवा की ओर बदलाव, ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन, जन्म और मृत्यु दर में कमी, जीवन की औसत प्रत्याशा में वृद्धि और परिवार में वृद्ध व्यक्तियों की उपलब्धता आदि।
- **लोकतांत्रिक क्रांति:** परिवार स्तर पर लोकतंत्र के आदर्शों में महिलाओं द्वारा अधिकारों की मांग, बच्चों को पितृसत्ता के अधिकार से मुक्ति, लोकतांत्रिक प्रक्रिया के माध्यम से निर्णय लेने की इच्छा आदि शामिल हैं।
- **धर्मनिरपेक्ष क्रांति:** धार्मिक मूल्यों से हटकर तार्किक मूल्यों की ओर रुझान। पति के प्रति पत्नी के रवैये में बदलाव, असंतुलन पर तलाक की मांग, बुढ़ापे में माता-पिता का साथ देने में बच्चों की अनिच्छा आदि।

संयुक्त परिवार को मजबूत करने वाले कारक

- **काम का स्त्रीकरण:** आजकल बैंकिंग और बीमा जैसे सेवा क्षेत्रों में काम करने वाले कई दंपत्ति बच्चों की देखभाल के लिए बहुत कम समय निकाल पाते हैं। ऐसे में वृद्ध माता-पिता बच्चों की देखभाल करते हैं।
- **शहरी क्षेत्रों में रहने की बढ़ती लागत** : शहरों में रहने के लिए आवास और सीमित स्थान की समस्या के साथ, शहरी क्षेत्रों में विशेष रूप से मलिन बस्तियों में रहने की बढ़ती लागत लोगों को परिवार के अन्य सदस्यों के साथ आवास साझा करने के लिए मजबूर करती है।
- **संयुक्त परिवार की विचारधारा में लचीलापन:** शहरों में प्रवास करने वाले परिवार अभी भी गाँव और कस्बे में संयुक्त परिवार के बंधन को बनाए रखते हैं। यह जन्म, विवाह, मृत्यु, बीमारी जैसे अवसरों पर रिश्तेदारों की भौतिक उपस्थिति से स्पष्ट होता है।
- कभी-कभी शहरों में रहने वाले परिवारों के सदस्य इन अवसरों पर गाँव जाते हैं। संयुक्त परिवार की नैतिकता कुछ भूमिका-दायित्वों के निर्वहन में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।
- शहर में रहने वाले परिवार का कर्तव्य है कि वह ग्रामीण परिवार से आए सभी प्रवासियों (शिक्षा या नौकरी की तलाश में युवा, या चिकित्सा उपचार के लिए आने वाले रिश्तेदार) को आश्रय प्रदान करे।
- **औद्योगीकरण:** औद्योगीकरण संयुक्त परिवार को मज़बूत बनाता है क्योंकि इससे परिवार को सहारा देने के लिए एक आर्थिक आधार मिलता है क्योंकि नए सिरे से शुरू हुए पारिवारिक उद्यम में ज़्यादा लोगों की ज़रूरत होती है या क्योंकि रिश्तेदार एक-दूसरे की मदद करके आगे बढ़ सकते हैं।
- इसी तरह, औद्योगिक उद्यमियों के बीच संयुक्त परिवार आज भी आदर्श बने हुए हैं।

भारत में नातेदारी व्यवस्था

- मनुष्य समाज में अकेला नहीं रहता। जन्म से लेकर मृत्यु तक वह अनेक लोगों से घिरा रहता है। वह उन सभी लोगों से बंधा होता है जो उससे रक्त या विवाह के आधार पर संबंधित होते हैं।
- रक्त या विवाह का वह बंधन जो लोगों को समूहों में बाँधता है, नातेदारी कहलाता है।
- इसके अतिरिक्त, रक्त संबंधों (वास्तविक और काल्पनिक) और विवाह से उत्पन्न सामाजिक संबंधों को सामूहिक रूप से नातेदारी कहा जाता है। नातेदारी व्यवस्था मूलभूत सामाजिक संस्थाओं में से एक है।
- नातेदारी सार्वभौमिक होती है और अधिकांश समाजों में व्यक्तियों के समाजीकरण और समूह एकजुटता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
- आदिम समाजों में इसका अत्यधिक महत्व था और यह लगभग सभी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि गतिविधियों पर अपना प्रभाव डालती थी।

दक्षिण भारत	उत्तर भारत
जन्म के परिवार (अर्थात् अभिविन्यास के परिवार) और विवाह के परिवार (अर्थात् प्रजनन के परिवार) के बीच कोई स्पष्ट अंतर नहीं है।	अहंकार के उन्मुखीकरण परिवार (अर्थात पिता, माता, भाई और बहन) का कोई भी सदस्य उसके विवाह के परिवार का सदस्य नहीं बन सकता; लेकिन दक्षिण में यह संभव है

दक्षिण भारत	उत्तर भारत
विवाह का अर्थ किसी महिला का अपने पिता के घर से अलग होना नहीं है।	एक महिला अपने माता-पिता के परिवार में एक आकस्मिक आगंतुक बन जाती है
दुल्हन देने वाला - दुल्हन लेने वालों से निम्नतर	दुल्हन देने वाला दुल्हन लेने वाले के समान स्तर पर होता है

नोट: अहंकार का अर्थ है अध्ययनाधीन व्यक्ति

आदिवासी समाज

- इस विविध जनसंख्या में एक महत्वपूर्ण हिस्सा आदिवासियों का है, जो इस भूमि के मूल निवासी हैं। भारत की आदिवासी संस्कृति और उनकी परंपराएँ एवं प्रथाएँ भारतीय संस्कृति और सभ्यता के लगभग सभी पहलुओं में व्याप्त हैं।
- भारत में आदिवासियों को आदिवासी कहा जाता है। आदिवासी, भारत की "आदिवासी" आबादी माने जाने वाले जातीय और जनजातीय समूहों के एक विषम समूह के लिए एक व्यापक शब्द है।
- हालाँकि भारत की जनजातियों के लिए वनवासी ("वनवासी") या गिरिजन ("पहाड़ी लोग") जैसे शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है, आदिवासी का विशिष्ट अर्थ मूल निवासी होना है।

जनजातीय समाज की विशेषताएँ

- निश्चित साझा स्थलाकृति: आदिवासी लोग एक निश्चित स्थलाकृति में रहते हैं और यह उस क्षेत्र में रहने वाली किसी विशेष जनजाति के सभी सदस्यों के लिए एक साझा स्थान होता है।
- एक साझा लेकिन निश्चित निवास स्थान के अभाव में, आदिवासी जनजातीय जीवन की अन्य विशेषताएँ, जैसे साझा भाषा, रहन-सहन और सामुदायिक भावनाएँ आदि खो देंगे।
- एकता की भावना: एक सच्चे आदिवासी जीवन के लिए एकता की भावना एक अनिवार्य आवश्यकता है। यह शांति और युद्ध के समय आदिवासियों की एकता की भावना पर निर्भर करती है।
- अंतर्विवाही समूह: जनजातीय लोग आमतौर पर अपने जनजाति के बाहर विवाह नहीं करते हैं और जनजाति के भीतर विवाह को अत्यधिक सराहा जाता है।
- सामान्य बोली: एक जनजाति के सदस्य एक सामान्य बोली में अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। यह तत्व उनकी एकता की भावना को और मज़बूत करता है।
- रक्त-संबंध: रक्त-संबंध सबसे बड़ा बंधन है और आदिवासियों के बीच एकता की भावना पैदा करने वाली सबसे शक्तिशाली शक्ति है।
- संरक्षण जागरूकता: जनजातीय लोगों को हमेशा घुसपैठ और घुसपैठ से सुरक्षा की आवश्यकता होती है और इसके लिए एक एकल राजनीतिक प्राधिकरण स्थापित किया जाता है और सभी शक्तियां इस प्राधिकरण में निहित होती हैं।
- सामान्य संस्कृति: किसी जनजाति की सामान्य संस्कृति एकता, सामान्य भाषा, सामान्य धर्म, सामान्य राजनीतिक संगठन की भावना से उत्पन्न होती है।
- नातेदारी का महत्व: नातेदारी जनजातीय सामाजिक संगठन का आधार बनती है। अधिकांश जनजातियाँ बहिर्विवाही कुलों और वंशों में विभाजित हैं। आदिवासियों में विवाह, जनजातीय अंतर्विवाह के नियम पर आधारित है। विवाह को एक अनुबंध माना जाता है और तलाक व पुनर्विवाह पर कोई प्रतिबंध नहीं है।
- समतावादी मूल्य: जाति व्यवस्था या लिंग आधारित असमानताओं जैसी कोई संस्थागत असमानताएँ नहीं हैं। इस प्रकार पुरुषों और महिलाओं को समान दर्जा और स्वतंत्रता प्राप्त थी। हालाँकि, आदिवासी मुखियाओं या राजाओं के

मामले में, जिनका सामाजिक स्तर ऊँचा होता है, राजनीतिक शक्ति होती है और जिनके पास धन होता है, कुछ हद तक सामाजिक असमानता पाई जा सकती है।

- अल्पविकसित धर्म: जनजातियाँ कुछ मिथकों और अल्पविकसित प्रकार के धर्म में विश्वास करती हैं

कला और संस्कृति

- भारत की विविधता में सांस्कृतिक एकता को आमतौर पर "गंगा-जमुनी तहजीब" या भारत की साझी संस्कृति के नाम से जाना जाता है।
- विविधता के बावजूद, ऐसे कई सांस्कृतिक तत्व और कारक हैं जिन्होंने भारत की साझी संस्कृति को आकार दिया है और भारत को सांस्कृतिक रूप से विशिष्ट बनाया है।

भारतीय संगीत

- भारत की सामासिक संस्कृति का सर्वोत्तम उदाहरण हमारा संगीत है, विशेषकर हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत। इसकी उत्पत्ति प्राचीन है, फिर भी उत्तर भारत में एक अत्यंत विकसित और समृद्ध संगीत का उदय मुस्लिम योगदान और उनके संरक्षण के बिना संभव नहीं हो सकता था।
- ध्रुपद से ख़याल और पखावज/मृदंगम से तबला का उद्भव इसके कुछ प्रमुख उदाहरण हैं।
- भारतीय वीणा और फ़ारसी तंबूरा का विलय सितार के रूप में हुआ। इसी प्रकार, ग़ज़ल और कव्वालियों ने भारतीय उपमहाद्वीप के लोगों को एक सूत्र में पिरोने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

चित्रकारी

- कोने-कोने से आकर, दरबार से लेकर आदिवासी और स्थानीय लोककथाओं तक, लोगों के जीवन को चित्रित करते हुए, ये कलाकृतियाँ भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन की समृद्धि, विविधता और विशिष्टताओं को दर्शाती हैं।
- बिहार की मधुबनी, मंजूषा चित्रकला से लेकर राजस्थान की राजपूत चित्रकला और चोल साम्राज्य की तंजावुर चित्रकला आदि, संबंधित क्षेत्रों की जीवन शैली, प्रसिद्ध कार्य, प्रथाओं आदि को चित्रित करती हैं।
- इसी प्रकार, देश के विभिन्न भागों में किए जाने वाले कठपुतली, रंगमंच, नुक्कड़-नाटक, सर्कस आदि भी भारतीय जीवन की विविधता को दर्शाते हुए अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

साहित्य: लिंगुआ विरासत

- भारत के विभिन्न क्षेत्रों ने भारत की समग्र संस्कृति में साहित्य और उच्च शिक्षा के प्रचार-प्रसार में योगदान दिया। उदाहरण के लिए, वेदों का विकास उत्तर-पश्चिम में, यजुर्वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों का विकास कुरु-पांचाल क्षेत्र में हुआ;
- कश्मीर में राजतरंगिणी; मगध में उपनिषद; बंगाल में गीत गोविंद, ओडिशा, पश्चिम बंगाल और असम में चर्यापद; उज्जैनी में कालिदास के महाकाव्य और नाटक; विदर्भ में भवभूत की रचनाएँ; दक्कन में दंडिन की दशकुमारचरित; दक्षिण में संगम साहित्य इत्यादि।
- ये सभी ग्रंथ विविध सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक व्यवस्था को अपनी भौगोलिक और ऐतिहासिक व्यवस्था के अनुसार चित्रित करते हैं।
- इसी प्रकार, तक्षशिला, नालंदा, वाराणसी, वल्लभी, अमरावती, नागार्जुनकोंडा, कांची, मदुरै और ओदांतपुरी, भारत में उच्च शिक्षा के प्रमुख उदाहरण हैं। ये संस्थान समाज में बौद्धिक मंथन का माध्यम रहे हैं।

विविधता की इकाई के रूप में भूगोल

- भारत का भूगोल विविध है। व्यापक स्तर पर, देश को कई क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है, जैसे हिमालय, उत्तरी मैदान, मध्य भारत और दक्कन का पठार, पश्चिमी और पूर्वी घाट, थार रेगिस्तान आदि।
- इनमें से प्रत्येक की जलवायु, तापमान, वनस्पति, जीव-जंतु, लोग आदि अलग-अलग हैं।
- यह विविधता, बदले में, प्रत्येक भौगोलिक स्थान द्वारा प्रदान की जाने वाली कृषि उपज के कारण कार्यात्मक आर्थिक निर्भरता की भावना पैदा करती है।

- इस विविधता के बावजूद, भारत को सदियों से एक विशिष्ट भौगोलिक इकाई के रूप में परिभाषित किया गया है।
- विष्णु पुराण के एक श्लोक में भारत को बर्फीले पहाड़ों के दक्षिण और समुद्र के उत्तर में स्थित भूमि के रूप में परिभाषित किया गया है।
- विभिन्न साम्राज्यवादी ताकतों ने अपनी भौगोलिक विशिष्टता को ध्यान में रखते हुए इस देश का बार-बार एकीकरण किया।

दार्शनिक/वैचारिक विविधता

- भारतीय दर्शन, भारतीय उपमहाद्वीप की सभ्यताओं द्वारा विकसित चिंतन और चिंतन की प्रणालियाँ हैं।
- इनमें रूढ़िवादी (आस्तिक) दर्शन प्रणालियाँ, अर्थात् न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व-मीमांसा (या मीमांसा), और वेदांत दर्शन प्रणालियाँ, और अपरंपरागत (नास्तिक) दर्शन प्रणालियाँ, जैसे बौद्ध धर्म और जैन धर्म, दोनों शामिल हैं।
- भारतीय चिंतन विभिन्न दार्शनिक समस्याओं से जुड़ा रहा है, जिनमें प्रमुख हैं विश्व की प्रकृति (ब्रह्मांड विज्ञान), वास्तविकता की प्रकृति (तत्वमीमांसा), तर्कशास्त्र, ज्ञान की प्रकृति (ज्ञानमीमांसा), नैतिकता और धर्म का दर्शन।
- इस दार्शनिक विविधता ने सहिष्णुता, धार्मिकता, प्रेम, विभिन्न भिन्नताओं की पहचान, वसुधैव कुटुम्बकम और सर्वधर्म समभाव जैसी धारणाओं को जन्म दिया है।
- यह हमारी सॉफ्ट पावर कूटनीति और वैश्विक स्तर पर सद्भावना में अच्छी तरह से परिलक्षित होता है। असंख्य मौलिक मतभेदों के बावजूद भारतीय समाज का सह-अस्तित्व केवल ऐसी वैचारिक लचीलापन के कारण ही संभव है।

सहिष्णुता, प्रेम और करुणा

- सहिष्णुता, यानी किसी ऐसे विचार या व्यवहार को सहन करने की क्षमता या इच्छा जिससे कोई असहमत हो या जिसे वह नापसंद करता हो, सदियों से भारतीय समाज के अस्तित्व और निरंतरता का एक प्रमुख कारण रहा है।
- इस सहिष्णुता के साथ-साथ, मनुष्यों और जानवरों, दोनों के लिए प्रेम और करुणा भी जुड़ी हुई थी, जैसा कि यहाँ विकसित हुए कुछ धर्मों, खासकर बौद्ध और जैन धर्मों में प्रचारित किया गया था।
- मौर्य सम्राट अशोक ने सभी धर्मों के लोगों के प्रति सहिष्णुता का उपदेश दिया और तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में युद्ध का त्याग कर दिया। उनके बाद समुद्रगुप्त और हर्षवर्धन जैसे अन्य सहिष्णु राजा हुए।
- मध्यकाल में भक्ति और सूफी संतों ने सहिष्णुता, प्रेम और करुणा का उपदेश दिया। सोलहवीं शताब्दी के मुगल शासक अकबर भी सभी धर्मों के लोगों के प्रति अपनी सहिष्णुता के लिए उल्लेखनीय हैं।
- इस प्रकार, वर्तमान भारतीय समाज उन लोगों के बीच सहिष्णुता, प्रेम और करुणा के युगों का परिणाम है, जिन्होंने इस देश को अपनी मातृभूमि बनाया और यहीं रहे।

परस्पर निर्भरता

- भारत में परस्पर निर्भरता की एक उल्लेखनीय परंपरा रही है जिसने इसे सदियों से एकजुट रखा है। और, यह इस तथ्य के बावजूद है कि हमारा समाज जाति-प्रधान है जहाँ सामाजिक स्तरीकरण की प्रथाएँ प्रचलित हैं।
- इसका एक उदाहरण जजमानी प्रथा या विभिन्न जातियों की कार्यात्मक परस्पर निर्भरता है।
- जजमान या यजमान कुछ सेवाओं का प्राप्तकर्ता होता है। यह प्रथा शुरू में गाँवों में खाद्यान्न उत्पादक परिवारों और उन्हें अन्य वस्तुओं और सेवाओं से सहायता प्रदान करने वाले परिवारों के बीच विकसित हुई।
- सामाजिक व्यवस्था का संपूर्ण दायरा जजमानी से जुड़ा था, जिसमें अनेक प्रकार के भुगतान और दायित्व शामिल थे। कोई भी जाति आत्मनिर्भर नहीं थी और कई मामलों में दूसरी जातियों पर निर्भर थी।

- इस प्रकार, प्रत्येक जाति एक कार्यात्मक समूह के रूप में कार्य करती थी और जजमानी व्यवस्था के माध्यम से दूसरी जातियों से जुड़ी हुई थी।
- यद्यपि जजमानी व्यवस्था हिंदू जातियों के आपसी जुड़ाव का प्रतिनिधित्व करती थी, फिर भी व्यवहार में यह व्यवस्था धर्म की सीमाओं को पार कर विभिन्न धर्मों के बीच संबंध भी स्थापित करती थी।
- उदाहरण के लिए, हिंदुओं की मुस्लिम बुनकर या धोबी पर निर्भरता, या मुसलमानों की हिंदू व्यापारी/दर्जी/स्वर्णकार आदि पर निर्भरता, इसी व्यवस्था का एक उदाहरण है, हालाँकि इसे ऐसा नहीं कहा जाता।
- हालाँकि, पश्चिमीकरण, वैश्वीकरण, जाति व्यवस्था का कमजोर होना, शिक्षा का विस्तार और फलस्वरूप रोज़गार ने जजमानी व्यवस्था को एक ऐसा रूप दिया है जो परस्पर निर्भरता के पारंपरिक आधार से भी आगे निकल गया है।

अनेकता में एकता

- जैसा कि हमने अभी पिछली चर्चा में देखा, भारत विविधताओं (अर्थात् नस्लों, धर्मों, भाषाओं, जातियों और संस्कृतियों की विविधता) का देश है।
- हालाँकि, इतनी विविधता के बावजूद, यह एकता, एकता की भावना प्रदर्शित करता है जो समाज के सदस्यों को एक सूत्र में पिरोती है।
- इसीलिए इसे "विविधता में एकता" की संज्ञा दी गई है। भारतीय समाज में इस सारी विविधता के मूल में एकता के सूत्र हैं, जो जीवन की एकरूपता और एकीकरण की कुछ प्रक्रियाओं में निहित हैं।
- दुनिया भर में यह विविधता तीन रूपों में समाहित है। आइए, भारतीय समाज के एकता के कुछ सूत्र पर चर्चा करें।

भौगोलिक विविधता और एकता

भौगोलिक विविधता:

- भारत का भूगोल विविध है। व्यापक स्तर पर, देश को कई क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है, जैसे हिमालय, उत्तरी मैदान, मध्य भारत और दक्कन का पठार, पश्चिमी और पूर्वी घाट, थार रेगिस्तान आदि।
- इनमें से प्रत्येक की जलवायु, तापमान, वनस्पति, जीव-जंतु, लोग आदि अलग-अलग हैं।
- यह विविधता, बदले में, प्रत्येक भौगोलिक स्थान द्वारा प्रदान की जाने वाली कृषि उपज के कारण कार्यात्मक आर्थिक निर्भरता की भावना पैदा करती है।

एकता के स्रोत के रूप में भूगोल:

- इस विविधता के बावजूद, भारत को सदियों से एक विशिष्ट भौगोलिक इकाई के रूप में परिभाषित किया गया है।
- विष्णु पुराण के एक श्लोक में भारत को बर्फीले पहाड़ों के दक्षिण और समुद्र के उत्तर में स्थित भूमि के रूप में परिभाषित किया गया है।
- विभिन्न साम्राज्यवादी ताकतों ने अपनी भौगोलिक विशिष्टता को ध्यान में रखते हुए बार-बार इस देश का एकीकरण किया।

भूगोल संघर्ष का स्रोत:

- भूगोल अपने आप में विभाजनकारी तत्व नहीं है। हालाँकि, जब इसे आक्रामक क्षेत्रवाद की विचारधारा के साथ जोड़ दिया जाता है, तो यह एक विभाजनकारी कारक बन जाता है। उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र में भूमिपुत्र आंदोलन एक विशेष क्षेत्र के लोगों को लक्षित करता है।

वैचारिक विविधता और एकता

वैचारिक विविधता:

- भारतीय दर्शन, भारतीय उपमहाद्वीप की सभ्यताओं द्वारा विकसित चिंतन और चिंतन की प्रणालियाँ हैं।
- इनमें रूढ़िवादी (आस्तिक) दर्शन प्रणालियाँ, अर्थात् न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व-मीमांसा (या मीमांसा), और वेदांत दर्शन प्रणालियाँ, और अपरंपरागत (नास्तिक) दर्शन प्रणालियाँ, जैसे बौद्ध और जैन धर्म, दोनों शामिल हैं।

- भारतीय चिंतन विभिन्न दार्शनिक समस्याओं से संबंधित रहा है, जिनमें प्रमुख हैं विश्व की प्रकृति (ब्रह्मांड विज्ञान), वास्तविकता की प्रकृति (तत्वमीमांसा), तर्कशास्त्र, ज्ञान की प्रकृति (ज्ञानमीमांसा), नैतिकता और धर्म का दर्शन।

एकता के स्रोत के रूप में विचारधारा:

- इस दार्शनिक विविधता ने सहिष्णुता, धार्मिकता, प्रेम, विभिन्न मतभेदों की पहचान, वसुधैव कुटुम्बकम और सर्वधर्म समभाव जैसी धारणाओं को जन्म दिया है।
- यह हमारी सॉफ्ट पावर डिप्लोमेसी और वैश्विक स्तर पर सद्भावना में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।
- असंख्य मूलभूत भिन्नताओं के बावजूद, भारतीय समाज का सह-अस्तित्व, ऐसे ही वैचारिक लचीलेपन का परिणाम है।

संघर्ष के स्रोत के रूप में विचारधारा:

- दूसरों की विचारधारा के प्रति असहिष्णुता ही संघर्ष का असली स्रोत है। उदाहरण के लिए, धार्मिक कट्टरवाद - किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह का किसी पवित्र धार्मिक ग्रंथ या किसी विशेष धार्मिक नेता, पैगम्बर और/या ईश्वर की शिक्षाओं की पूर्ण प्रामाणिकता में विश्वास।
- आज अल-कायदा, बोको हराम और आईएसआईएस जैसे कई इस्लामी आतंकवादी संगठन भी कट्टरपंथी दृष्टिकोण रखते हैं और पश्चिमी सभ्यता को धर्मनिरपेक्ष आधुनिकीकरण का प्रतीक मानते हैं जो पारंपरिक इस्लामी मूल्यों के लिए खतरा है।

धार्मिक विविधता और एकता

धार्मिक विविधता:

- भारत का कोई राजकीय धर्म नहीं है, यह एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है।
- यह वह भूमि है जहाँ दुनिया के लगभग सभी प्रमुख धर्मों का उनके अनुयायी पालन करते हैं। फिर भी, धार्मिक विविधता देश में फूट और असामंजस्य का एक प्रमुख स्रोत रही है।
- ऐसा इसलिए है क्योंकि भारत में धार्मिक संबद्धता पर अत्यधिक ज़ोर दिया जाता है और कई बार लोग राष्ट्रीय एकता को भूलकर अपने धर्म के प्रति अधिक निष्ठा व्यक्त करते हैं।

धर्म एकता का स्रोत है :

- प्रत्येक धर्म, जब उदार रूप में व्याख्यायित किया जाता है, धार्मिक बहुलवाद और सहिष्णुता, प्रेम और करुणा का उपदेश देता है।
- सहिष्णुता, अर्थात् किसी व्यक्ति द्वारा नापसंद या असहमत विचारों या व्यवहार के अस्तित्व को सहन करने की क्षमता या इच्छा, सहस्राब्दियों से भारतीय समाज में निरंतरता और निरंतरता के प्रमुख कारणों में से एक रही है।
- इस सहिष्णुता के साथ, मनुष्यों और पशुओं, दोनों के लिए प्रेम और करुणा का भाव भी जुड़ा था, जैसा कि यहाँ विकसित हुए कुछ धर्मों, विशेष रूप से बौद्ध और जैन धर्मों द्वारा प्रचारित किया गया था।
- मौर्य सम्राट अशोक ने सभी धर्मों के लोगों के प्रति सहिष्णुता का उपदेश दिया और तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में युद्ध का त्याग कर दिया।
- उनके बाद समुद्रगुप्त और हर्षवर्धन जैसे अन्य सहिष्णु राजा हुए। मध्यकाल में भक्त और सूफी संतों ने सहिष्णुता, प्रेम और करुणा का उपदेश दिया।
- सोलहवीं शताब्दी के मुगल शासक अकबर भी सभी धर्मों के लोगों के प्रति अपनी सहिष्णुता के लिए उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार, वर्तमान भारतीय समाज उन लोगों के बीच सदियों से चली आ रही सहिष्णुता, प्रेम और करुणा का परिणाम है, जिन्होंने इस देश को अपनी मातृभूमि बनाया।

संघर्ष के स्रोत के रूप में धर्म

- हालाँकि, इस धार्मिक विविधता ने सांप्रदायिकता और सांप्रदायिक हिंसा के रूप में देश के सामने लगातार चुनौतियाँ खड़ी की हैं।

- ब्रिटिश काल से शुरू होकर, सांप्रदायिकता देश की एकता के लिए सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक रही है। अंततः द्विराष्ट्र सिद्धांत के विकास के कारण हमारे देश का विभाजन हुआ।

भाषाई विविधता और एकता

भाषिक विभिन्नता:

- भाषा भारत में पहचान के प्रमुख शक्तिशाली प्रतीकों में से एक है। भारतीय संघ के राज्यों का सीमांकन मुख्यतः बोली जाने वाली भाषा के आधार पर किया जाता है। लोगों की पहचान उनकी मातृभाषा के माध्यम से ही किसी विशिष्ट भाषाई, जातीय, धार्मिक या सांस्कृतिक समूह से होती है। इसके अलावा, भाषा देश में कई जातीय आंदोलनों का आधार रही है।

एकता के स्रोत के रूप में भाषा:

- हमारी भाषाओं की विविधता, नेहरू द्वारा भारतीय संस्कृति को विविधता में एकता के रूप में वर्णित करने का एक महत्वपूर्ण घटक थी।
- महात्मा गांधी भी हमारी भाषाई बहुलता को अत्यधिक महत्व देते थे, और उन्होंने इसे भारत में बच्चों की शिक्षा का आधार बनाने की सिफ़ारिश की थी।
- विभिन्न समयों पर, कुछ भाषाओं का प्रयोग लिंग्वा फ़्रैंका या पार-क्षेत्रीय भाषाओं के रूप में किया जाता था - उदाहरण के लिए संस्कृत - क्षेत्रीय भाषाएं, जिनमें लिपिविहीन असंख्य जनजातीय भाषाएं शामिल थीं, न केवल लुप्त नहीं हुईं, बल्कि मौखिक और लिखित दोनों ही प्रकार से उच्च गुणवत्ता वाली साहित्यिक अभिव्यक्तियां उत्पन्न करने के कारण फलती-फूलती रहीं।
- गुजरात के भीलों के वीरगाथाएँ या मुंडाओं और संथालों की गीति कविताएँ किसी भी तरह से विकसित साक्षरता परंपराओं की उपलब्धियों से कमतर नहीं हैं।
- चीनी सभ्यता के विपरीत, भारतीय सभ्यता की ताकत इसकी भाषाओं की बहुलता रही है।
- द्विभाषिकता और बहुभाषिकता हमारे इतिहास की विशेषता रही है।
- स्वतंत्रता के बाद के भारत में भारतीय राज्यों का भाषाई पुनर्गठन इस तथ्य की एक सकारात्मक मान्यता थी।

संघर्ष के स्रोत के रूप में भाषा:

- आज़ादी से पहले और बाद में, क्षेत्रीय भाषाओं को राजनीतिक मान्यता दिलाने के संघर्षों ने लोगों को उत्पीड़कों की भाषा से राजनीतिक मुक्ति दिलाने में योगदान दिया है।
- उदाहरण के लिए, जब कर्नाटक एकीकरण आंदोलन (कर्नाटक एकीकरण) के दौरान विभिन्न कन्नड़ भाषी क्षेत्रों के एकीकरण के लिए भीषण संघर्ष हुए, तो इसका मूल कारण हैदराबाद, मद्रास और बॉम्बे कर्नाटक के क्षेत्रों में बहुसंख्यक कन्नड़ भाषियों को हाशिए पर धकेला जाना था।
- गैर-मुख्यधारा की भाषाओं के बोलने वालों द्वारा संवैधानिक मान्यता के लिए हाल के संघर्ष भी इसी तरह के कारणों से प्रेरित हैं।
- दूसरे शब्दों में, भाषाई वर्चस्व का संघर्ष भाषा-भाषियों की सामाजिक और राजनीतिक न्याय की आवश्यकता के संघर्ष से गहराई से जुड़ा हुआ है।
- भाषाएँ, जो एक समय में लोगों की एकता का प्रतीक बन सकती हैं, बाद में उन क्षेत्रों के भाषाई अल्पसंख्यकों की नज़र में उत्पीड़न का प्रतीक बन सकती हैं।
- समृद्ध जातीय विविधता वाले राज्य असम में, राभा और बोडो जैसी आदिवासी भाषाओं के बोलने वालों को अब लगता है कि राज्य की भाषा अहोमिया, मुख्यधारा और आदिवासी समुदायों के बीच असमान आदान-प्रदान की स्थिति में उनकी जातीय आत्म-प्रतिष्ठा के लिए खतरा है।

- हिंदी पट्टी में भी असंतोष की सुगबुगाहट है। गढ़वाली और कुमाऊँनी जैसी भाषाओं को हिंदी के समर्थक बोलियाँ मानते हैं, हालाँकि उनके और हिंदी के बीच का अंतर उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि हिंदी और गुजराती के बीच, जिसे एक स्वतंत्र भाषा का दर्जा प्राप्त है।
- बिहार में भी कुछ असहमति के स्वर उठे हैं, जो दावा करते हैं कि भोजपुरी और मैथिली स्वतंत्र भाषाएँ हैं, न कि केवल हिंदी की बोलियाँ।
- मणिपुर का मैतेई समर्थक वर्ग बंगाली लिपि को खत्म करने के लिए संघर्ष कर रहा है, जो उनके अनुसार, बाहरी लोगों की आक्रमणकारी संस्कृति द्वारा थोपी गई थी।

राजनीतिक विविधता और एकता

- भारतीय समाज विभिन्न रूपों में राजनीतिक विविधता प्रदर्शित करता है। विचारधारा के संदर्भ में, पूंजीवाद और समाजवाद के विचार लोकतांत्रिक समाजवाद और मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा में अभिव्यक्त हो रहे हैं।
- इसी प्रकार, बहुदलीय लोकतंत्र का अस्तित्व और सहकारी संघवाद का उदय देश की संघीय इकाइयों के बीच गतिशील संबंधों का संकेत देते हैं।
- एकता के स्रोत के रूप में राजनीति: स्वतंत्रता के बाद, अंतरराज्यीय परिषद, एकल नागरिकता, एकीकृत न्यायिक प्रणाली आदि जैसे संवैधानिक उपायों के माध्यम से एकता को बढ़ावा दिया जा रहा है, इसी प्रकार लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, स्वतंत्रता, समानता और न्याय जैसे शब्दों के माध्यम से प्रस्तावना में प्रकट संवैधानिक आदर्शों ने भारत को राजनीतिक और प्रशासनिक एकता की भावना दी।

भारतीय समाज में अध्यात्मवाद और भौतिकवाद के बीच संतुलन

- भारतीय समाज में आध्यात्मिकता और भौतिकवाद के बीच विरोधाभास लंबे समय से मौजूद रहे हैं।
- प्राचीन विचार इस बात पर मतभेद रखते हैं कि भौतिक जीवन ही सब कुछ है, पदार्थ और चेतना मिलकर संसार का निर्माण करते हैं, या पदार्थ केवल वह आधार है जहाँ से व्यक्ति को पूर्ण चेतना तक पहुँचना है।
- स्वामी विवेकानंद आधुनिक भारत के प्रमुख व्यक्तियों और निर्माताओं में से एक हैं, जो अध्यात्मवाद और भौतिकवाद पर अपने भाषणों के लिए जाने जाते थे।
- अपने विभिन्न भाषणों और लेखों में, उन्होंने गरीबों के भौतिक विकास की आवश्यकता पर ज़ोर दिया।
- विवेकानंद के अनुसार, मनुष्य केवल भौतिक और भौतिक प्राणी नहीं है जो अपनी इंद्रियों को तृप्त करने के लिए अस्तित्व में है, बल्कि आध्यात्मिक प्राणी भी है।
- यही आध्यात्मिकता है जो दुनिया भर की मानवता को उच्च स्तर पर एकजुट करती है। लेकिन, केवल आध्यात्मिकता ही पर्याप्त नहीं है। इसलिए, वे भौतिक विकास की आवश्यकता पर भी बल देते हैं।

भारतीय समाज में व्यक्तिवाद और सामूहिकता के बीच संतुलन

- भारत एक ऐसा समाज है जिसमें सामूहिकतावादी और व्यक्तिवादी दोनों विशेषताएँ हैं।
- सामूहिकतावादी पक्ष का अर्थ है एक व्यापक सामाजिक ढाँचे से जुड़े होने को उच्च प्राथमिकता देना, जिसमें व्यक्तियों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपने परिभाषित समूहों की व्यापक भलाई के लिए कार्य करें।
- ऐसी स्थितियों में, व्यक्ति के कार्य विभिन्न अवधारणाओं से प्रभावित होते हैं, जैसे कि उसके परिवार, विस्तारित परिवार, पड़ोसियों, कार्यसमूह और अन्य ऐसे व्यापक सामाजिक नेटवर्क की राय, जिनसे उसका कुछ संबंध है।
- एक समूहवादी के लिए, अपने साथियों द्वारा अस्वीकृत किया जाना या अपने विस्तारित और निकटतम समूह द्वारा नीचा समझा जाना, उसे दिशाहीन बना देता है और उसे तीव्र खालीपन का एहसास कराता है।
- नियोक्ता/कर्मचारी का संबंध अपेक्षाओं पर आधारित होता है - कर्मचारी द्वारा वफादारी और नियोक्ता द्वारा लगभग पारिवारिक संरक्षण।

- नियुक्ति और पदोन्नति के निर्णय अक्सर रिश्तों के आधार पर लिए जाते हैं जो सामूहिक समाज में हर चीज की कुंजी हैं।
- भारतीय समाज के व्यक्तिवादी पहलू को उसके प्रमुख धर्म/दर्शन - हिंदू धर्म - का परिणाम माना जाता है। हिंदू मृत्यु और पुनर्जन्म के चक्र में विश्वास करते हैं, और प्रत्येक पुनर्जन्म का तरीका इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति ने पिछला जीवन कैसे जिया था।
- इसलिए, लोग अपने जीवन जीने के तरीके और अपने पुनर्जन्म पर पड़ने वाले प्रभाव के लिए व्यक्तिगत रूप से ज़िम्मेदार हैं। व्यक्तिवाद पर यह ध्यान भारतीय समाज की अन्यथा सामूहिक प्रवृत्तियों के साथ अंतःक्रिया करता है, जिसके कारण इस आयाम पर इसका स्कोर मध्यवर्ती है।

भारतीय समाज में परंपरावाद और आधुनिकता का सह-अस्तित्व

- भारतीय समाज सदैव परंपराओं और आधुनिकता के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करता रहा है, विशेषकर बदलते समय के साथ, जो भारतीय समाज की एक प्रमुख विशेषता है।
- भारतीय समाज सदैव परिवर्तनशील, निरंतर परिवर्तनशील और परिवर्तन की निरंतर प्रक्रिया से गुजरता रहेगा। इसका तात्पर्य यह है कि निरंतर परिवर्तन का विचार समकालीन भारतीय समाज का अभिन्न अंग है।
- वैश्विक और क्षेत्रीय घटनाओं ने भारत में बदलते समाज को आकार दिया है-
- उपनिवेशीकरण एक महत्वपूर्ण कारक है जिसने विदेशी संस्कृतियों और प्रथाओं को पेश करके भारतीय समाज को सबसे अधिक प्रभावित किया।
- औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण ने तकनीकी विस्तार को जन्म दिया और विभिन्न स्तरों पर समाज में परिवर्तन लाया।
- उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (एलपीजी) भारत में आर्थिक विकास और सुधार के तर्क और प्रक्रियाओं में अंतर्निहित थे।
- भारत में आधुनिकीकरण और विकास में जनसंचार माध्यम और सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) एक महत्वपूर्ण कारक है। इसके व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों तरह के परिणाम हैं।
- सामाजिक आंदोलनों ने अतीत के साथ-साथ वर्तमान में भी कई तरह से बदलाव लाए हैं। ये आंदोलन कुछ सामाजिक परिस्थितियों के कारण होते हैं और इनका उद्देश्य सामाजिक संरचना में परिवर्तन लाकर उसे बेहतर बनाना होता है।

निष्कर्ष

- यद्यपि देश की विविधता और एकता के अंतर्निहित बंधन ने सदियों से भारतीय समाज को अक्षुण्ण रखा है, फिर भी क्षेत्रवाद, संप्रदायवाद और जातिवाद जैसी विभाजनकारी प्रवृत्तियाँ उभरती रहती हैं और लोगों को एक-दूसरे के विरुद्ध खड़ा करती हैं। इसलिए, प्रत्येक भारतीय का यह कर्तव्य है कि वह इन संकीर्ण प्रवृत्तियों से ऊपर उठकर राष्ट्रीय एकता और अखंडता के लिए कार्य करे। जैसा कि हमारे माननीय प्रधानमंत्री ने ठीक ही कहा है, "विविधता में एकता ही भारत की शक्ति है। प्रत्येक भारतीय में सरलता है। भारत के हर कोने में एकता है। यही हमारी शक्ति है।"

भारतीय समाज में लिंग

- भारतीय समाज ने सदैव से ही नारियों का सम्मान किया है। हिंदू धर्म में, पुरुष और स्त्री ईश्वरीय शरीर के दो अंग हैं।
- उनके बीच श्रेष्ठता या हीनता का कोई प्रश्न ही नहीं है। हिंदू इतिहास में गार्गी, मैत्रेयी और सुलभा जैसी कई विलक्षण स्त्रियाँ हुई हैं, जिनकी तर्क-शक्ति सामान्य मनुष्यों से कहीं अधिक श्रेष्ठ थी।
- देश भर में सरस्वती, दुर्गा, लक्ष्मी, काली आदि अनेक देवियों की पूजा की जाती है।
- महाभारत के अनुसार, स्त्री का सम्मान करने से वस्तुतः समृद्धि की देवी की पूजा होती है।
- नकारात्मक पक्ष यह है कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था ऋग्वेद के समय से ही चली आ रही है। रीति-रिवाज और मूल्य पुरुषों द्वारा पुरुषों के पक्ष में बनाए गए थे। महिलाएँ इस भेदभाव को चुपचाप सहती हैं।
- ऐतिहासिक रूप से, भारतीय महिलाओं को विरोधाभासी भूमिकाएँ निभाने के लिए मजबूर किया गया है। महिला की शक्ति का बखान यह सुनिश्चित करने के लिए किया जाता है कि महिलाएँ बेटी, माँ, पत्नी और बहू के रूप में पालन-पोषण की अपनी पारंपरिक भूमिकाएँ प्रभावी ढंग से निभाएँ।
- दूसरी ओर, "कमज़ोर और असहाय महिला" की रूढ़िवादिता को बढ़ावा दिया जाता है ताकि पुरुष पर पूरी तरह निर्भरता सुनिश्चित हो सके।

सुधार आंदोलन: एक ऐतिहासिक विवरण

- महिला आंदोलन, सामाजिक आंदोलन का एक महत्वपूर्ण रूप है, इस अर्थ में कि इसका उद्देश्य समाज में उन संस्थागत व्यवस्थाओं, मूल्यों, रीति-रिवाजों और मान्यताओं में परिवर्तन लाना है, जिन्होंने वर्षों से महिलाओं को अपने अधीन रखा है।
- यह सामाजिक आंदोलनों के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण, लेकिन उपेक्षित पहलू है। महिला आंदोलन और संगठन का अध्ययन दो चरणों में किया जा सकता है।

पूर्व स्वतंत्रता

- दिलचस्प बात यह है कि महिलाओं की मुक्ति के शुरुआती प्रयास पुरुषों द्वारा ही शुरू किए गए थे।
- राजा राम मोहन राय और स्वामी दयानंद सरस्वती जैसे समाज सुधारकों और आर्य समाज तथा ब्रह्म समाज जैसे संबंधित संगठनों ने महिलाओं की पारंपरिक अधीनता को चुनौती दी, विधवा पुनर्विवाह को प्रोत्साहित किया और अन्य मुद्दों के अलावा महिला शिक्षा और धार्मिक मामलों में निष्पक्षता का समर्थन किया।
- इसी तरह, बॉम्बे प्रेसीडेंसी में रानाडे और ज्योतिबा फुले द्वारा विधवा पुनर्विवाह आंदोलन, जिन्होंने जाति और लैंगिक उत्पीड़न पर एक साथ प्रहार किया। सर सैयद अहमद खान द्वारा संचालित इस्लाम में सामाजिक सुधार आंदोलन।
- हिंदू उच्च जाति की विधवाओं के साथ निंदनीय और अन्यायपूर्ण व्यवहार समाज सुधारकों द्वारा उठाया गया एक प्रमुख मुद्दा था।
- रानाडे ने बिशप जोसेफ बटलर जैसे विद्वानों के लेखन का सहारा लिया, जिनकी रचनाएँ "धर्म का सादृश्य" और "मानव प्रकृति पर तीन उपदेश" 1860 के दशक में बॉम्बे विश्वविद्यालय के नैतिक दर्शन पाठ्यक्रम में प्रमुखता से शामिल थीं।
- इसी समय, एमजी रानाडे की रचनाएँ, "विधवाओं के पुनर्विवाह की विधिपूर्णता पर हिंदू विधि के ग्रंथ और विधवा विवाह के लिए वैदिक प्राधिकरण", विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए शास्त्रीय स्वीकृति पर विस्तार से प्रकाश डालती हैं।
- रानाडे और राममोहन राय उच्च जाति और मध्यम वर्ग से थे, लेकिन जोतिबा फुले जैसे समाज सुधारक सामाजिक रूप से बहिष्कृत जाति से थे और उनका हमला जाति और लिंग भेदभाव, दोनों के विरुद्ध था। उन्होंने सत्यशोधक

समाज की स्थापना की, जिसका मुख्य जोर "सत्य की खोज" पर था। फुले के पहले व्यावहारिक समाज सुधार प्रयास पारंपरिक ब्राह्मण संस्कृति में सबसे निचले माने जाने वाले दो समूहों: महिलाओं और अछूतों की सहायता के लिए थे।

- अन्य सुधारकों की तरह, आधुनिक पश्चिमी विचारों और पवित्र ग्रंथों, दोनों से प्रेरणा लेने की एक समान प्रवृत्ति मुस्लिम समाज सुधार के सर सैयद अहमद ख़ान के प्रयासों की विशेषता थी।
- वह चाहते थे कि लड़कियों को शिक्षा मिले, लेकिन उनके घर की चारदीवारी के भीतर। आर्य समाज के दयानंद सरस्वती की तरह, वे महिला शिक्षा के पक्षधर थे, लेकिन एक ऐसे पाठ्यक्रम की मांग कर रहे थे जिसमें धार्मिक सिद्धांतों की शिक्षा, गृहस्थी, हस्तशिल्प और बच्चों के पालन-पोषण की कलाओं का प्रशिक्षण शामिल हो।
- आज यह बहुत रूढ़िवादी लग सकता है। हालाँकि, यह समझना होगा कि एक बार जब महिलाओं के लिए शिक्षा जैसे अधिकारों को स्वीकार कर लिया गया, तो एक ऐसी प्रक्रिया शुरू हुई जिसने अंततः महिलाओं को केवल कुछ प्रकार की शिक्षा तक सीमित रखना असंभव बना दिया।
- राष्ट्रीय सामाजिक सम्मेलन के तत्वावधान में 1905 में स्थापित भारत महिला परिषद सबसे प्रमुख संगठनों में से एक थी, जो महिलाओं के लिए सामाजिक मुद्दों पर विचार-विमर्श करने का आधार बनी।
- उपरोक्त पहलों ने महिलाओं की सामाजिक स्थिति पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला। लेकिन उपरोक्त आंदोलनों में एक बड़ी कमी यह थी कि ये केवल उच्च जाति की महिलाओं के लिए ही योजनाबद्ध थे और इनमें गरीब और मजदूर वर्ग की महिलाओं के विशाल समूह का कोई मुद्दा नहीं उठाया गया।
- महिलाओं के संदर्भ में एक और बड़ा विकास उनकी राजनीतिक भागीदारी के संदर्भ में हुआ। महिलाओं ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन और अंग्रेजों के विरुद्ध अन्य प्रकार के विरोध प्रदर्शनों का समर्थन करके उपनिवेशवाद के प्रति अपने विरोध का खुलकर प्रदर्शन करना शुरू कर दिया। इससे उन्हें आवश्यक आत्मविश्वास और अपने नेतृत्व कौशल को विकसित करने का अवसर मिला। उदाहरण के लिए, सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान सरोजिनी नायडू की भूमिका। महिलाओं में राजनीतिक जागरूकता काफ़ी बढ़ी। यह भी महसूस किया गया कि महिलाओं के मुद्दों को देश के राजनीतिक परिवेश से अलग नहीं किया जा सकता। इस अवधि के दौरान, सामाजिक सुधार आंदोलन और राष्ट्रवादी आंदोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में गठित प्रारंभिक महिला संगठन इस प्रकार थे:
- **महिला भारतीय संघ (WIA):** WIA की स्थापना मद्रास में मार्गरेट कजिन्स ने की थी। थियोसोफिकल सोसाइटी के साथ मिलकर काम करते हुए, इसने गैर-सांप्रदायिक धार्मिक गतिविधियों को प्रोत्साहित किया और साक्षरता को बढ़ावा देने, विधवाओं के लिए आश्रय गृह स्थापित करने और आपदा पीड़ितों को राहत प्रदान करने में विश्वसनीय कार्य किया। महिलाओं की विवाह की न्यूनतम आयु बढ़ाने के लिए बाल विवाह निरोधक अधिनियम और देवदासी प्रथा को समाप्त करने के लिए शारदा विधेयक के अधिनियमन और कार्यान्वयन में उनकी भूमिका सर्वविदित है।
- **भारतीय राष्ट्रीय महिला परिषद (एनसीडब्ल्यूआई):** इस संगठन की स्थापना मुम्बई, चेन्नई और कोलकाता की महिलाओं द्वारा की गई थी, जिन्होंने प्रथम विश्व युद्ध के दौरान विकसित अपने नेटवर्क का लाभ उठाया और 1925 में एनसीडब्ल्यूआई की स्थापना की।
- **अखिल भारतीय महिला सम्मेलन (AIWC):** उस समय के महिला संगठनों में सबसे महत्वपूर्ण अखिल भारतीय महिला सम्मेलन था। हालाँकि इसके शुरुआती प्रयास महिला शिक्षा में सुधार लाने पर केंद्रित थे, लेकिन बाद में इसका दायरा महिलाओं के मताधिकार, उत्तराधिकार अधिकार आदि जैसे कई महिला मुद्दों तक विस्तृत हो गया।

कृषि संघर्ष और विद्रोह

- अक्सर यह माना जाता है कि केवल मध्यम वर्ग की शिक्षित महिलाएँ ही सामाजिक आंदोलनों में शामिल होती हैं। इस संघर्ष का एक हिस्सा महिलाओं की भागीदारी के विस्मृत इतिहास को याद दिलाने का भी रहा है। औपनिवेशिक काल में आदिवासी और ग्रामीण क्षेत्रों में हुए संघर्षों और विद्रोहों में महिलाओं ने पुरुषों के साथ-साथ भाग लिया।

बंगाल में तेभागा आंदोलन, तत्कालीन निज़ाम के शासनकाल में तेलंगाना का हथियार संघर्ष और महाराष्ट्र में वरली आदिवासियों का दासता के विरुद्ध विद्रोह इसके कुछ उदाहरण हैं।

पोस्ट-आजादी

- आज़ादी के बाद के दौर में, महिला संगठनों का धर्मयुद्ध आज़ादी से पहले जैसा नहीं रहा। ऐसा इसलिए था क्योंकि साझा दुश्मन, अंग्रेज़, अब नहीं रहे। इसके अलावा, राष्ट्रवादी आंदोलन में शामिल कई महिला कार्यकर्ता राष्ट्र निर्माण के काम में जुट गईं। कुछ लोग इस सुस्ती के लिए विभाजन के आघात को ज़िम्मेदार मानते हैं।
- कुछ महिला नेता औपचारिक रूप से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल हो गईं और मंत्रियों, राज्यपालों और राजदूतों जैसे शक्तिशाली पदों पर आसीन हुईं।
- भारतीय महिलाओं के हितों के समर्थन में काम करने के लिए राष्ट्रीय भारतीय महिला महासंघ (1954), समाजवादी महिला सभा (1959) जैसे नए संगठन बनाए गए। अब भारतीय महिलाओं को संघर्षपूर्ण राजनीति में भाग लेने का अवसर मिला।
- महिला संगठनों ने अब महसूस किया कि कार्यान्वयन में समस्या थी और परिणामस्वरूप महिला आंदोलन में विराम आ गया।
- 1970 के दशक के मध्य में, भारत में महिला आंदोलन का एक नया दौर शुरू हुआ। कुछ लोग इसे भारतीय महिला आंदोलन का दूसरा चरण कहते हैं। हालाँकि कई चिंताएँ जस की तस रहीं, लेकिन संगठनात्मक रणनीति और विचारधारा दोनों में बदलाव हुए। स्वायत्त महिला आंदोलनों का उदय हुआ। 'स्वायत्तता' शब्द का अर्थ था कि वे 'स्वायत्त' थीं या राजनीतिक दलों से स्वतंत्र थीं, उन महिला संगठनों से अलग जिनका राजनीतिक दलों से संबंध था। यह महसूस किया गया कि राजनीतिक दल महिलाओं के मुद्दों को हाशिए पर धकेलने की कोशिश करते हैं।
- **स्व-नियोजित महिला संघ:** अहमदाबाद में ही 1972 में इला भट्ट की पहल पर स्व-नियोजित महिला संघ (सेवा) की स्थापना के साथ महिला ट्रेड यूनियन का पहला प्रयास किया गया था।
  इसका मुख्य उद्देश्य असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली गरीब महिलाओं को प्रशिक्षण, तकनीकी सहायता और सामूहिक सौदेबाजी के माध्यम से उनकी स्थिति में सुधार लाना था। सेवा (SEWA) को उल्लेखनीय सफलता मिली है।
- **नव निर्माण आंदोलन:** यह आंदोलन 1974 में बढ़ती कीमतों, कालाबाजारी और बेईमानी के खिलाफ गुजरात में एक छात्र आंदोलन के रूप में शुरू हुआ था, जिसमें जल्द ही बड़ी संख्या में मध्यम वर्ग की महिलाएं शामिल हो गईं, जिन्होंने इसकी बागडोर अपने हाथ में ले ली।
- **अन्नपूर्णा महिला मंडल (एएमएम): अन्नपूर्णा महिला मंडल (** एएमएम) एक और महत्वपूर्ण आंदोलन है जो महिलाओं और बालिकाओं के कल्याण के लिए काम करता है। यह विभिन्न गतिविधियों का आयोजन करता है जिनमें महिलाओं को स्वास्थ्य, पोषण, मातृ एवं शिशु देखभाल, परिवार नियोजन, साक्षरता और पर्यावरण स्वच्छता जैसे विषयों पर शिक्षित करना शामिल है।
- **स्वाधीनता:** स्वाधीनता (स्व-सम्मानित महिला) का गठन 1986 में किया गया था। यह मुख्य रूप से एक नागरिक समाज संगठन है जो सतत विकास और सही आजीविका के आधार पर महिलाओं और बाल विकास के सशक्तिकरण पर केंद्रित है।
- **अखिल भारतीय जनवादी महिला संघ** : यह एक प्रभावशाली स्वतंत्र वामपंथी महिला संगठन है जो लोकतंत्र, समानता और महिला मुक्ति के लिए प्रतिबद्ध है। अखिल भारतीय जनवादी महिला संघ (AIDWA) की स्थापना 1981 में महिलाओं के एक राष्ट्रीय स्तर के जन संगठन के रूप में की गई थी।
- संगठनात्मक बदलावों के अलावा, कई नए मुद्दों पर भी ध्यान केंद्रित किया गया। उदाहरण के लिए, महिलाओं के खिलाफ हिंसा। पिछले कुछ वर्षों में, कई अभियान चलाए गए हैं। आपने देखा होगा कि स्कूल के फॉर्म में पिता और माता, दोनों के नाम होते हैं। यह हमेशा सच नहीं था। इसी तरह, महिला आंदोलन के अभियानों की बदौलत

महत्वपूर्ण कानूनी बदलाव भी हुए हैं। भूमि अधिकार और रोज़गार के मुद्दों के साथ-साथ यौन उत्पीड़न और दहेज के खिलाफ अधिकारों के लिए भी लड़ाई लड़ी गई है।

- यह मान्यता रही है कि जहाँ सभी महिलाएँ पुरुषों की तुलना में किसी न किसी रूप में वंचित हैं, वहीं सभी महिलाओं को समान स्तर या प्रकार के भेदभाव का सामना नहीं करना पड़ता। शिक्षित मध्यम वर्ग की महिला की चिंताएँ किसान महिला से भिन्न होती हैं, ठीक उसी तरह जैसे दलित महिला की चिंताएँ 'उच्च जाति' की महिला से भिन्न होती हैं। आइए हिंसा का उदाहरण लें। यह भी व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है कि पुरुष और महिला दोनों ही प्रमुख लैंगिक पहचानों से विवश हैं। उदाहरण के लिए, पितृसत्तात्मक समाजों में पुरुषों को लगता है कि उन्हें सशक्त और सफल होना चाहिए। भावनात्मक रूप से अपनी अभिव्यक्ति व्यक्त करना पुरुषोचित नहीं है। एक लैंगिक-न्यायपूर्ण समाज पुरुषों और महिलाओं दोनों को स्वतंत्र होने की अनुमति देगा। यह निश्चित रूप से इस विचार पर आधारित है कि सच्ची स्वतंत्रता के विकास और प्रगति के लिए, सभी प्रकार के अन्याय का अंत होना आवश्यक है। लैंगिक-न्यायपूर्ण समाज की अवधारणा दो महत्वपूर्ण कारकों पर आधारित है - बहु-भूमिकाओं वाली शिक्षित महिलाएँ और बेहतर लिंगानुपात। भारत सरकार द्वारा संचालित कई कार्यक्रम, जैसे बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना, एक लैंगिक-न्यायपूर्ण समाज के निर्माण में एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

महिलाओं की भूमिका

परिवार और समाज

- परिवार में सतत विकास और जीवन की गुणवत्ता की कुंजी महिलाएँ हैं। परिवार में महिलाएँ विभिन्न प्रकार की भूमिकाएँ निभाती हैं: पत्नी, नेता, प्रशासक, पारिवारिक आय प्रबंधक और अंत में, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण, माँ की भूमिका।
- कभी परिवार संगठन की एक इकाई मानी जाने वाली महिलाएँ अब जीवन के सभी क्षेत्रों में सक्रिय भागीदार बन गई हैं। महिलाएँ अब न केवल समाज की एक महत्वपूर्ण इकाई बन रही हैं, बल्कि समाज में सामाजिक परिवर्तन की दिशा को भी प्रभावित कर रही हैं और महिला संगठनों ने इसमें एक सहयोगी भूमिका निभाई है।
- आधुनिक समाज महिलाओं की व्यक्तिगत पहचान को तेज़ी से पहचानने लगा है। ऐसा माना जाता है कि पुरुषों की तरह उनकी भी अपनी आकांक्षाएँ, योग्यताएँ और गुण होते हैं।

पत्नी	प्रशासक और परिवार का नेता	पारिवारिक आय प्रबंधक	माँ
• वह जीवन में उच्च प्रयास और उपलब्धियों के लिए मनुष्य के लिए प्रेरणा का स्रोत है।	वह परिवार के सदस्यों को उनकी रुचि और क्षमता के अनुसार कर्तव्य सौंपती है।	वह जिम्मेदारी से खर्च किए गए प्रत्येक पैसे से अधिकतम लाभ सुनिश्चित करती है।	बच्चे पैदा करने और उसके पालन-पोषण का पूरा भार महिला द्वारा ही उठाया जाता है।
वह सभी संकटों में उसके साथ खड़ी रहती है।	वह भोजन तैयार करने और परोसने, कपड़ों के चयन और देखभाल, कपड़े धोने, साज-सज्जा और घर के रखरखाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।	वह अपनी आय को विभिन्न मदों जैसे आवश्यकताओं, सुख-सुविधाओं और विलासिता पर वितरित करती है।	वह मुख्य रूप से बच्चे की आत्म-नियंत्रण, व्यवस्था आदि की आदत के लिए जिम्मेदार होती है।

पत्नी	प्रशासक और परिवार का नेता	पारिवारिक आय प्रबंधक	माँ
वह अपनी सारी सफलताएं और उपलब्धियां उसके साथ साझा करती है।	वह सामाजिक विकास के लिए परिवार में विभिन्न सामाजिक कार्यों का आयोजन करती है।	वह अपशिष्ट उत्पादों का उपयोग उत्पादक उद्देश्यों के लिए करती है।	वह बच्चे की पहली शिक्षिका हैं। एक माँ के रूप में, वह परिवार की स्वास्थ्य अधिकारी हैं और परिवार के प्रत्येक सदस्य के शारीरिक स्वास्थ्य के प्रति चिंतित रहती हैं।

राजनीति

- राजनीति में महिलाओं की भूमिका लगातार बढ़ रही है क्योंकि अधिक से अधिक महिलाएँ राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश कर रही हैं। बनाई जा रही कल्याणकारी नीतियाँ महिलाओं की स्थिति को ध्यान में रखकर बनाई गई हैं और यह मुख्यतः राजनीति में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी के कारण है। महिलाओं ने उन्हें प्रभावित करने वाले कई मुद्दों को उठाया है, जैसे संपत्ति पर उनका अधिकार, गर्भपात, मातृत्व लाभ, दहेज और बलात्कार जैसी हिंसा के खिलाफ आंदोलन, समान वेतन आदि।
- जिन सुधार आंदोलनों की चर्चा पहले की जा चुकी है, उन्होंने महिलाओं को राजनीति में शक्ति प्राप्त करने में मदद की। स्वतंत्रता के बाद, 73वें संशोधन अधिनियम के माध्यम से पंचायतों और अन्य सार्वजनिक निकायों में उनके लिए सीटों के आरक्षण के साथ, उन्होंने अभूतपूर्व राजनीतिक सफलता हासिल की है। भारतीय महिलाओं ने भारत और विदेशों में प्रशासन के उच्च पदों पर भी कार्य किया है।

  राजनीति में कुछ उल्लेखनीय महिलाएं शामिल हैं:
- **संयुक्त राष्ट्र संघ सचिव (विजय लक्ष्मी पंडित),**
- **प्रधानमंत्री (इंदिरा गांधी),**
- **मुख्यमंत्री (सुचेता कृपलानी, जयललिता, उमा भारती, मायावती और वसुन्धरा राजे) और**
- **President (Pratibha Patil).**
- हालाँकि, वर्तमान में लोकसभा और राज्यसभा दोनों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व 12% के आंकड़े को पार नहीं कर पाया है। इसकी तुलना में, स्वीडन की संसद में 45 प्रतिशत सीटें महिलाओं के पास हैं। यहाँ तक कि रवांडा जैसे विकासशील देश की राष्ट्रीय विधायिका में भी 64% महिलाएँ हैं। विधानसभाओं, संसद और अन्य नागरिक संस्थाओं में पदों के आरक्षण के साथ-साथ विशेष रियायतों और विशेषाधिकारों की माँग भारत में महिला सशक्तिकरण की दिशा में कुछ कदम हैं। हालाँकि, संसद में महिला आरक्षण का विधेयक 10 वर्षों से भी अधिक समय से लंबित है।

- मीडिया में भी, महिलाएँ सक्रिय रूप से भाग ले रही हैं, जैसा कि कई महिला लेखिकाओं (जैसे अरुंधति रॉय) की रचनाओं से स्पष्ट है, जिन्हें अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त संस्थानों द्वारा सराहा गया है। पत्रकारिता के क्षेत्र में, जहाँ पहले पुरुषों का वर्चस्व था, अब कई महिलाएँ हैं। अब, वे ब्लॉग और नेटवर्किंग के माध्यम से अपनी भावनाओं को व्यक्त करने, आक्रोश और असहमति व्यक्त करने और स्वीकृति और अनुमोदन की आवश्यकता को पूरा करने की स्वतंत्रता का लाभ उठा रही हैं, जो अब तक उन्हें नहीं मिली थी।
- यद्यपि उपरोक्त परिवर्तन महिलाओं के लिए समानता के दृष्टिकोण से सकारात्मक लाभ दर्शाते हैं, लेकिन वास्तविकता कई समस्याओं और तनावों से घिरी हुई है। महिलाओं पर काम की दोहरी ज़िम्मेदारी अभी भी एक चुनौती है। कामकाजी पत्नियों को घर का काम भी करना पड़ता है और बच्चों की देखभाल अभी भी काफी हद

तक उन्हीं का काम है। महिलाओं का सप्ताहांत आमतौर पर घर के अधूरे और लंबित कामों को पूरा करने में बीतता है।

अर्थव्यवस्था

- महिलाएं गृहिणियां बनकर, आतिथ्य क्षेत्र में काम करके, बाजार में सबसे बड़ी उपभोक्ता बनकर, अनौपचारिक क्षेत्रों में काम करके अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।
- **गृहिणियाँ:** वे दुनिया की सबसे बड़ी कार्यबल हैं, सबसे कम वेतन पाती हैं और बेवजह उपहास का शिकार होती हैं। एक महिला घरेलू सामान खरीदती है, जिसमें सिर्फ़ खाने-पीने की चीज़ें ही नहीं, बल्कि कपड़े, सामान और रोज़मर्रा की कई चीज़ें शामिल होती हैं, जैसे बर्तन धोने के लिए स्क्रबर। वे कई तरह के सामान बनाने वाली बड़ी कंपनियों की तानाशाह होती हैं।
- **सबसे बड़े उपभोक्ता:** ज़्यादातर शॉपिंग आउटलेट महिलाओं के लिए हैं। विडंबना यह है कि बाज़ार में महिलाओं को सबसे ज़्यादा नज़रअंदाज़ किया जाता है, और जो कंपनियाँ महिला उपभोक्ताओं को लक्षित करती हैं, उनकी कंपनी में महिला कर्मचारियों की कमी है।
- **अनौपचारिक क्षेत्र:** औपचारिक श्रम शक्ति की तुलना में अधिक महिलाएँ 'छिपे हुए' वेतन वाले कामों में शामिल हो सकती हैं। अनुमान है कि 90 प्रतिशत से अधिक महिला श्रमिक अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत हैं। अनौपचारिक क्षेत्र में घरेलू नौकर, छोटे व्यापारी, कारीगर या पारिवारिक खेत पर मज़दूरी जैसे काम शामिल हैं।
- **कृषि** : सभी कृषि श्रमिकों में लगभग 65% और ग्रामीण कार्यबल में लगभग 74% महिलाएँ हैं। फिर भी, खेतों में कड़ी मेहनत करने के बावजूद, महिलाओं को आधिकारिक तौर पर किसान नहीं माना जाता क्योंकि आधिकारिक रिकॉर्ड में उनके नाम पर ज़मीन का कोई दावा नहीं है।
- महिलाओं की उपरोक्त भूमिकाओं को समझने के बाद, यह स्पष्ट है कि महिलाओं को अपनी क्षमता का एहसास करने के अवसरों से वंचित करना मानव पूंजी की बर्बादी और आर्थिक प्रगति में बाधा है। यह बात भारत के लिए गिल और आईएचडीआई के आंकड़ों से स्पष्ट होती है।
- यदि महिलाओं को पर्याप्त रूप से सशक्त बनाया जाए तो भारत का विकास अधिक समावेशी और समतापूर्ण हो सकता है।

Human Development Index (HDI) Trends, 1990-2018

Rank	Country	1990	2000	2010	2012	2013	2014	2015	2016	2017	2018
129	India	.431	.497	.581	.600	.607	.618	0.627	0.637	0.643	.647
South Asia		**.441**	**.505**	**.585**	**.602**	**.607**	**.618**	**0.624**	**0.634**	**0.639**	**.642**
World		**.598**	**.641**	**.697**	**.709**	**.713**	**.718**	**0.722**	**0.727**	**0.729**	**.731**

Average Annual HDI Growth %

Country	1990-2000	2000-2010	2010-2018	1990-2018
India	1.43	1.57	1.34	1.46
South Asia	**1.36**	**1.48**	**1.18**	**1.35**
World	**0.71**	**0.84**	**0.60**	**0.72**

Inequality Adjusted Human Development Index 2018

	HDI	Inequality Adjusted HDI (IHDI)		
Country	Value	Value	Overall loss %	Difference from HDI rank
India	0.647	0.477	26.33	1
South Asia	**0.642**	**0.476**	**25.9**	-
World	**0.731**	**0.584**	**20.2**	-

Source: UNDP Report, 2019

विज्ञान और प्रौद्योगिकी

- विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आमतौर पर पुरुषों का दबदबा माना जाता है, लेकिन महिला वैज्ञानिकों और शिक्षाविदों का योगदान भी उल्लेखनीय है। उनके योगदान का अध्ययन निम्नलिखित तीन चरणों में किया जा सकता है:

प्राचीन भारत

- **लीलावती:** लीलावती महान गणितज्ञ भास्कराचार्य की पुत्री थीं। उन्हें एक प्रतिभाशाली गणितज्ञ और ज्योतिषी भी कहा जाता है।

पूर्व स्वतंत्रता

- **कादम्बिनी गांगुली:** वह न केवल ब्रिटिश साम्राज्य की पहली महिला स्नातकों में से एक थीं, बल्कि वह पश्चिमी चिकित्सा में प्रशिक्षित होने वाली दक्षिण एशिया की पहली महिला चिकित्सक भी थीं।
- **अन्ना मणि:** वह भारतीय मौसम विज्ञान विभाग की पूर्व उप महानिदेशक थीं। वह एक भारतीय भौतिक विज्ञानी और मौसम विज्ञानी थीं। उन्होंने मौसम संबंधी उपकरणों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया।
- **राजेश्वरी चटर्जी:** वे भारत में माइक्रोवेव इंजीनियरिंग और एंटीना इंजीनियरिंग के क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभाने वाली पहली महिला वैज्ञानिक हैं। लगभग 60 साल पहले, वे भारतीय विज्ञान संस्थान में एकमात्र महिला प्राध्यापक थीं।

पोस्ट-आजादी

- **डॉ. इंदिरा हिंदुजा:** वह पहली भारतीय महिला हैं जिन्होंने 6 अगस्त 1986 को टेस्ट ट्यूब बेबी को जन्म दिया। वह मुंबई स्थित एक भारतीय स्त्री रोग विशेषज्ञ, प्रसूति एवं बांझपन विशेषज्ञ हैं।
- **किरण मजूमदार शॉ:** वह बैंगलोर स्थित जैव प्रौद्योगिकी कंपनी बायोकॉन लिमिटेड की अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक हैं। वह फोर्ब्स की दुनिया की 100 सबसे शक्तिशाली महिलाओं की सूची में और फाइनेंशियल टाइम्स द्वारा जारी शीर्ष 50 व्यावसायिक महिलाओं की सूची में शामिल हैं।
- **डॉ. आदितल पंत:** वह पेशे से समुद्र विज्ञानी हैं और बर्फीले महाद्वीप अंटार्कटिका की यात्रा करने वाली पहली भारतीय महिलाओं में से एक हैं।
- **डॉ. सुमन सहाय:** डॉ. सहाय नीम और हल्दी के पेटेंट अभियान के पीछे दिमाग और ताकत हैं। उनका मानना है कि 'प्रकृति की तकनीक मानवता की ज़रूरतों को पूरा कर सकती है।'
- **कल्पना चावला:** वह पहली भारतीय-अमेरिकी अंतरिक्ष यात्री और अंतरिक्ष में जाने वाली पहली भारतीय महिला थीं। उन्होंने 1997 में एक मिशन विशेषज्ञ और प्राथमिक रोबोटिक आर्म ऑपरेटर के रूप में अंतरिक्ष शटल कोलंबिया से पहली उड़ान भरी थी। नासा प्रमुख ने उन्हें "शानदार अंतरिक्ष यात्री" कहा था।

उपरोक्त सूची संपूर्ण नहीं है और यह ध्यान रखना पर्याप्त होगा कि महिलाओं ने भी विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान दिया है।

पर्यावरण

- भारत में प्राचीन काल से लेकर आज तक पूरे देश में महिलाएं पौधों, पेड़ों, नदियों, पहाड़ों और जानवरों की पूजा करती हैं।
- हमारे पारंपरिक रीति-रिवाजों का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने पर पता चलता है कि भारतीय महिलाएं अपनी संस्कृति और संस्कार के हिस्से के रूप में प्रकृति के तत्वों की पूजा करती हैं।

आज भी, महिलाएँ पुरुषों के साथ समान रूप से भागीदारी कर रही हैं, खासकर प्रदूषण निवारण और पर्यावरण संरक्षण के मामले में। यह **"चिपको आंदोलन"** से लेकर " **नर्मदा बचाओ आंदोलन** " तक, विभिन्न पर्यावरण आंदोलनों में महिलाओं की भागीदारी से परिलक्षित होता है।

- **अमृता बाई ने** खेजड़ीली के एक छोटे से गाँव में चिपको आंदोलन की शुरुआत की, जिसे बाद में उत्तर प्रदेश की बचनी देवी और गौरा देवी ने पुनर्जीवित किया, जिन्होंने लकड़हारों से कुल्हाड़ी छीन ली और उन्हें पेड़ काटने से रोक दिया। सामाजिक विज्ञान में स्नातक मेधा पाटकर 1980 के दशक के मध्य में नर्मदा घाटी के आदिवासियों के बीच रहने चली गईं।
- नर्मदा बचाओ आंदोलन के गठन में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही। 1991 में नर्मदा बचाओ आंदोलन समर्थकों और आंदोलनकारी ताकतों के बीच हुए भीषण संघर्ष में, उनके 21 दिनों के उपवास ने उन्हें मौत के मुँह में धकेल दिया। ये उन अनगिनत उदाहरणों में से बहुत कम हैं जिनमें महिलाओं ने पर्यावरण संरक्षण के लिए संघर्ष किया है। हालाँकि महिलाएँ पर्यावरण संरक्षण में सक्रिय रूप से भाग ले रही हैं, फिर भी पर्यावरण नीतियों के निर्माण, योजना और क्रियान्वयन में उनकी भागीदारी अभी भी कम है।

इको-फेमिनिज्म

- फ्रांसीसी नारीवादी फ्रैंकोइस डी. ओबोन को 1974 में "इको-फेमिनिज़्म" शब्द गढ़ने का श्रेय दिया जाता है। उन्होंने पुरुष वर्चस्व के परिणामस्वरूप महिलाओं और प्रकृति पर होने वाली भीषण हिंसा का वर्णन करने का प्रयास किया। यह सिद्धांत सभी प्रकार के उत्पीड़न को समाप्त करने का प्रयास करता है।
- इको-फेमिनिज्म एक सामाजिक आंदोलन है जो महिलाओं और प्रकृति के उत्पीड़न को आपस में जुड़ा हुआ मानता है। चूँकि महिलाएँ हवा, पानी, मिट्टी, जीवों और सबसे बढ़कर, समग्र रूप से पर्यावरण के साथ व्यवहार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, इसलिए वे विभिन्न प्रकार के पर्यावरणीय प्रदूषणों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती हैं। ऐसा प्रदूषण विभिन्न बीमारियों जैसे खाद्य विषाक्तता, जीवाणु, कवक और विषाणु संक्रमण और कई कैंसरजन्य समस्याओं का कारण बनता है।

कार्य में भागीदारी: एक आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य

- महिलाओं के कार्य की सटीक प्रकृति, दायरा और परिमाण को परिभाषित करना एक समस्या क्षेत्र बना हुआ है, क्योंकि महिलाओं का अधिकांश कार्य या तो अदृश्य है या कार्यबल भागीदारी डेटा में इसका आंशिक रूप से ही उल्लेख किया गया है।
- महिलाओं के काम के घटकों में घरेलू काम, घर-आधारित शिल्प गतिविधियों से संबंधित सवेतन और अवैतनिक कार्य, पारिवारिक उद्यम या व्यवसाय और घर से बाहर सवेतन कार्य शामिल हैं। गृहिणी के रूप में महिलाओं की भूमिका पर आर्थिक विकास में महिलाओं की भूमिका पर पिछले खंड में पहले ही चर्चा की जा चुकी है। बाल श्रमिक के रूप में भी, कई लड़कियाँ काम कर रही हैं। लड़कियाँ घरेलू उत्पादन में मुफ्त श्रम प्रदान करती रहती हैं।
- ग्रामीण बालिकाओं पर किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि वे प्रतिदिन नौ घंटे काम करके सामान और सेवाएँ प्रदान करती हैं, जिससे वे स्कूल नहीं जा पातीं। कश्मीर के कालीन उद्योग, अलीगढ़ में ताला बनाने, जयपुर में रत्न पॉलिश करने, शिवकाशी में माचिस उद्योग और बीड़ी बनाने के काम में भी लड़कियाँ बड़ी संख्या में कार्यरत हैं। इस तरह के काम उन्हें स्कूली शिक्षा, साक्षरता, तकनीकी कौशल सीखने और अपनी नौकरी की संभावनाओं को बेहतर बनाने से वंचित कर देते हैं।
- वेतनभोगी श्रमिक के रूप में, महिलाएँ खेतों, जंगलों, खदानों, कारखानों, कार्यालयों, लघु एवं घरेलू उद्योगों में काम करती हैं। हालाँकि, उनके विकल्प सीमित हैं क्योंकि वे या तो प्रवेश नहीं लेतीं या स्कूल छोड़ देती हैं। यही भारत में महिला श्रम बल भागीदारी दर के निम्न स्तर का प्रमुख कारण है। वेतनभोगी श्रमिक के रूप में महिलाओं को जिस एक अन्य भेदभाव का सामना करना पड़ता है, वह है वेतन असमानता।

कम श्रम बल भागीदारी दर

- अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) के कार्य पत्र के अनुसार, उभरते बाजारों और विकासशील देशों में भारत की महिला श्रम बल भागीदारी दर (एलएफपीआर) सबसे कम है।

कम एलएफपीआर के कारण निम्नलिखित हैं:

- **पुरुषों की आय में वृद्धि:** जैसे-जैसे परिवार के पुरुष अधिक आय अर्जित करने लगते हैं, महिलाएँ औपचारिक अर्थव्यवस्था में अपने काम में कटौती करके घरेलू गतिविधियों पर अधिक ध्यान केंद्रित करने लगती हैं। यहाँ तक कि मातृत्व लाभ अधिनियम जैसे प्रगतिशील कानून भी इस धारणा को बढ़ावा देते हैं कि बच्चे पैदा करना महिलाओं की प्राथमिक ज़िम्मेदारी है।
- **जातिगत कारक:** कुछ समुदायों में, खासकर कुछ ऊँची जातियों में, घर से बाहर काम करने वाली महिलाओं को कलंक माना जाता है - खासकर अगर वह काम 'नीच' माना जाता हो। महिलाओं को 'परिवार की इज्जत' माना जाता है।
- **पितृसत्ता:** पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना जो महिलाओं को कम महत्व देती है और यह परिवार और अर्थव्यवस्था में उनके द्वारा किए जाने वाले कार्यों में परिलक्षित होता है। यह 'पतिव्रता नारी' जैसे स्थानीय शब्दों में प्रकट होता है।
- **सुरक्षा चुनौतियाँ और काम का चुनाव:** महिलाओं को अक्सर वो काम नहीं मिलता जो वे करना चाहती हैं, जिसमें सुरक्षा के पर्याप्त प्रावधान हों। जैसे, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न। खासकर ईंट-भट्ठा उद्योग जैसे अनौपचारिक क्षेत्र में।
- **बुनियादी ढांचे की कमी:** बुनियादी ढांचे, परिवहन और बाल देखभाल सुविधाओं की कमी ने भी महिलाओं को पीछे रखा है। उदाहरण के लिए, निर्भया बलात्कार मामले जैसी घटनाएं महिलाओं को विशेष रूप से रात में घर से बाहर निकलने से रोकती हैं।

वेतन असमानता

- 2016 में, ऑनलाइन सेवा प्रदाता मॉन्स्टर द्वारा वेतन सूचकांक रिपोर्ट जारी की गई, जिसमें भारत में लैंगिक वेतन अंतर पर प्रकाश डाला गया।

  रिपोर्ट के निष्कर्षों के अनुसार, लिंग-आधारित वेतन अंतर 27% तक है।
- विनिर्माण क्षेत्र में लिंग वेतन अंतर सबसे अधिक था, जो लगभग 35 प्रतिशत था।
- आईटी सेवा क्षेत्र में लिंग वेतन में 34 प्रतिशत का भारी अंतर है।

  रिपोर्ट में वेतन असमानता के कारणों का भी उल्लेख किया गया है:
- माता-पिता के कर्तव्यों और अन्य सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों के कारण महिलाओं का करियर ब्रेक।
- पुरुष प्रधान क्षेत्रों में अवसरों की कमी - सशस्त्र बलों का कहना है कि पुरुष प्रधान क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी का अभाव है।
- महिलाओं द्वारा किये जाने वाले देखभाल कार्य को कम महत्व दिया जाता है, क्योंकि इसे कौशल के बजाय उनका स्वाभाविक गुण माना जाता है।

  हालाँकि, स्थिति इतनी भी निराशाजनक नहीं है, भारत सरकार की हाल की घोषणा, जिसके तहत महिलाओं को सेना, नौसेना और वायु सेना के सभी वर्गों में लड़ाकू भूमिकाएं निभाने की अनुमति दी गई है, लैंगिक समानता की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम का संकेत देती है।

महिलाओं से संबंधित मुद्दे

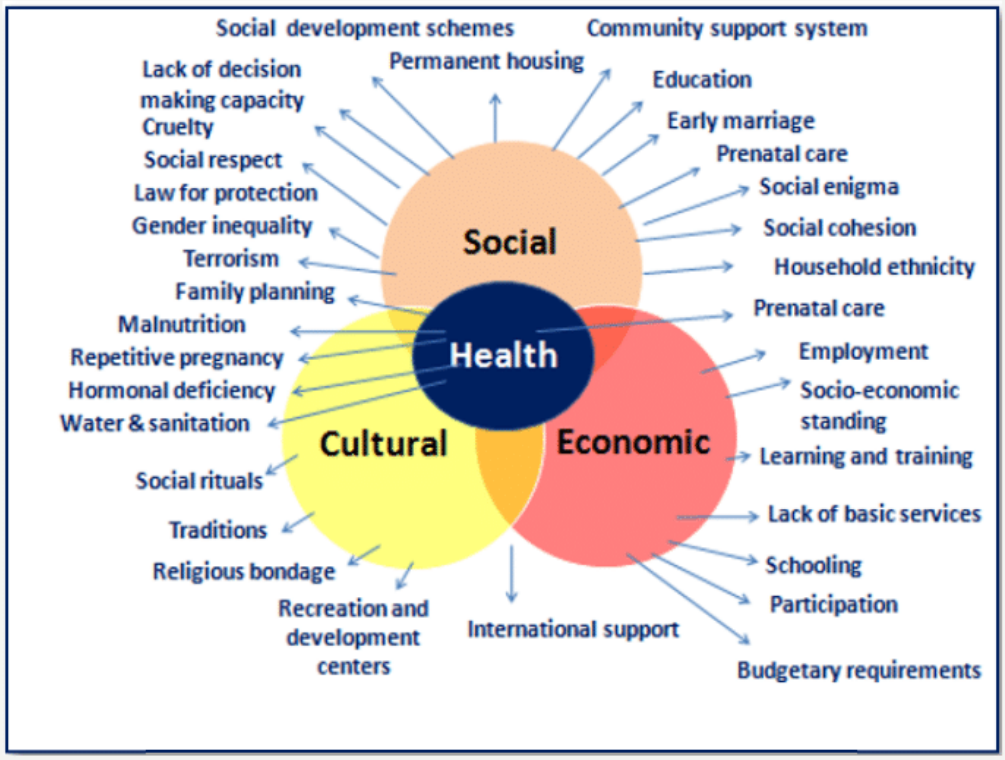

- यह विडंबना ही है कि भारत में, जहाँ नारी देवियों की पूजा की जाती है, महिलाओं को स्वतंत्र पहचान और दर्जा नहीं दिया जाता। महिलाओं के लिए राष्ट्रीय नीति का मसौदा जीवन चक्र दृष्टिकोण के माध्यम से महिलाओं से जुड़े विभिन्न मुद्दों को सामने रखता है। जीवन चक्र दृष्टिकोण के माध्यम से, यह भ्रूण अवस्था से लेकर वृद्धावस्था तक, महिलाओं के सामने आने वाली समस्याओं का विस्तार से विश्लेषण करता है।

कन्या भ्रूण हत्या और शिशु हत्या

- शिशुहत्या का अर्थ है जन्म के तुरंत बाद शिशु की हत्या करना, जबकि भ्रूणहत्या का अर्थ है गर्भ में ही उसकी हत्या कर देना। तमिलनाडु के कल्लार जैसे जाति समूहों में यह प्रथा आम है। ऐसा इसलिए है क्योंकि बेटी को बोझ समझा जाता है। लड़कियों के लिए रोज़गार के अवसरों का अभाव होता है और उनकी शादी में दहेज देना पड़ता है।

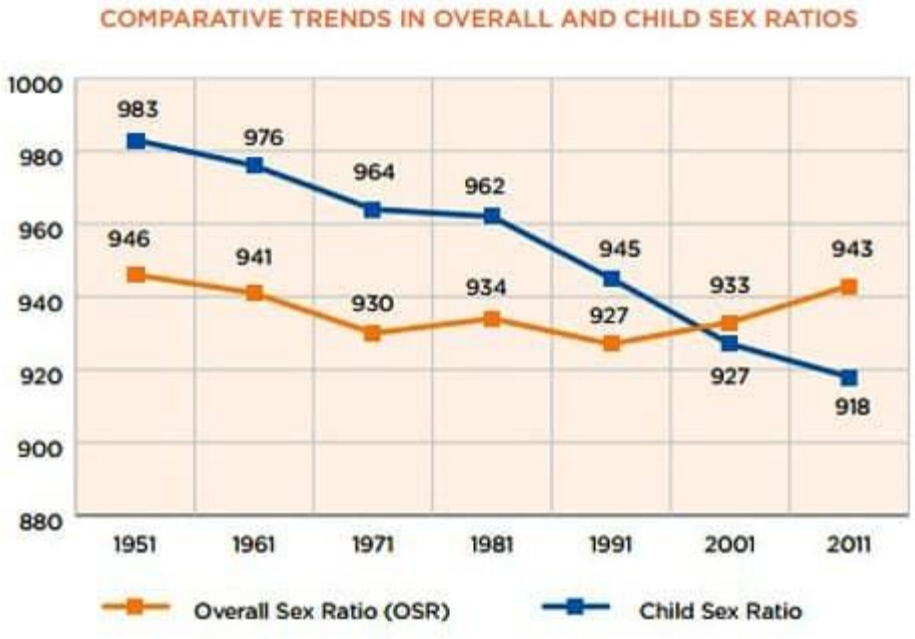

- शहरी इलाकों और तकनीक तक पहुँच रखने वाले लोगों में भ्रूण हत्या ज़्यादा आम है। दुर्भाग्य से, माता-पिता अपने बच्चे का लिंग निर्धारण करने के लिए इस तकनीक का दुरुपयोग कर रहे हैं। लिंग निर्धारण परीक्षण का दुरुपयोग एक गंभीर समस्या रही है। उत्तर भारत और पश्चिमी भारत में, भविष्य में विवाह के समय दहेज देने से बचने के

लिए, एमनियोसेंटेसिस (लिंग परीक्षण) की मदद से कन्या भ्रूणों का व्यवस्थित रूप से गर्भपात किया जाता है। यही भारत में बाल लिंगानुपात के निम्न स्तर का प्रमुख कारण है।

- हालिया आर्थिक सर्वेक्षण में पुत्र प्राप्ति की अत्यधिक प्राथमिकता की प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला गया है, जिसमें माता-पिता प्रजनन क्षमता के "रोकने के नियम" अपनाते हैं - यानी तब तक बच्चे पैदा करते हैं जब तक कि वांछित संख्या में पुत्र पैदा न हो जाएँ। सर्वेक्षण में कहा गया है, "यह अत्यधिक प्राथमिकता स्वाभाविक रूप से 'अवांछित' लड़कियों की एक काल्पनिक श्रेणी को जन्म देती है, जिनकी अनुमानित संख्या 2.1 करोड़ से अधिक है।" सर्वेक्षण में इस अत्यधिक प्राथमिकता का आकलन अंतिम संतान के लिंगानुपात (SRLC) नामक एक संकेतक का उपयोग करके किया गया है। मूलतः, यदि कोई समाज पुत्रों को प्राथमिकता देता है, तो इसका परिणाम यह होगा कि SRLC का झुकाव लड़कों के पक्ष में अधिक होगा।

बाल विवाह

- महिलाओं को पारंपरिक रूप से आश्रित प्राणी माना जाता है जो अंततः पिता के घर से पति के घर चली जाती हैं। यही कारण है कि माता-पिता अपनी लड़कियों को स्कूल भेजने से हिचकिचाते हैं। इस प्रकार, ये सामाजिक मान्यताएँ और पूर्वाग्रह, विशेष रूप से ग्रामीण और पिछड़े समुदायों में, बाल विवाह को प्राथमिकता देते हैं।

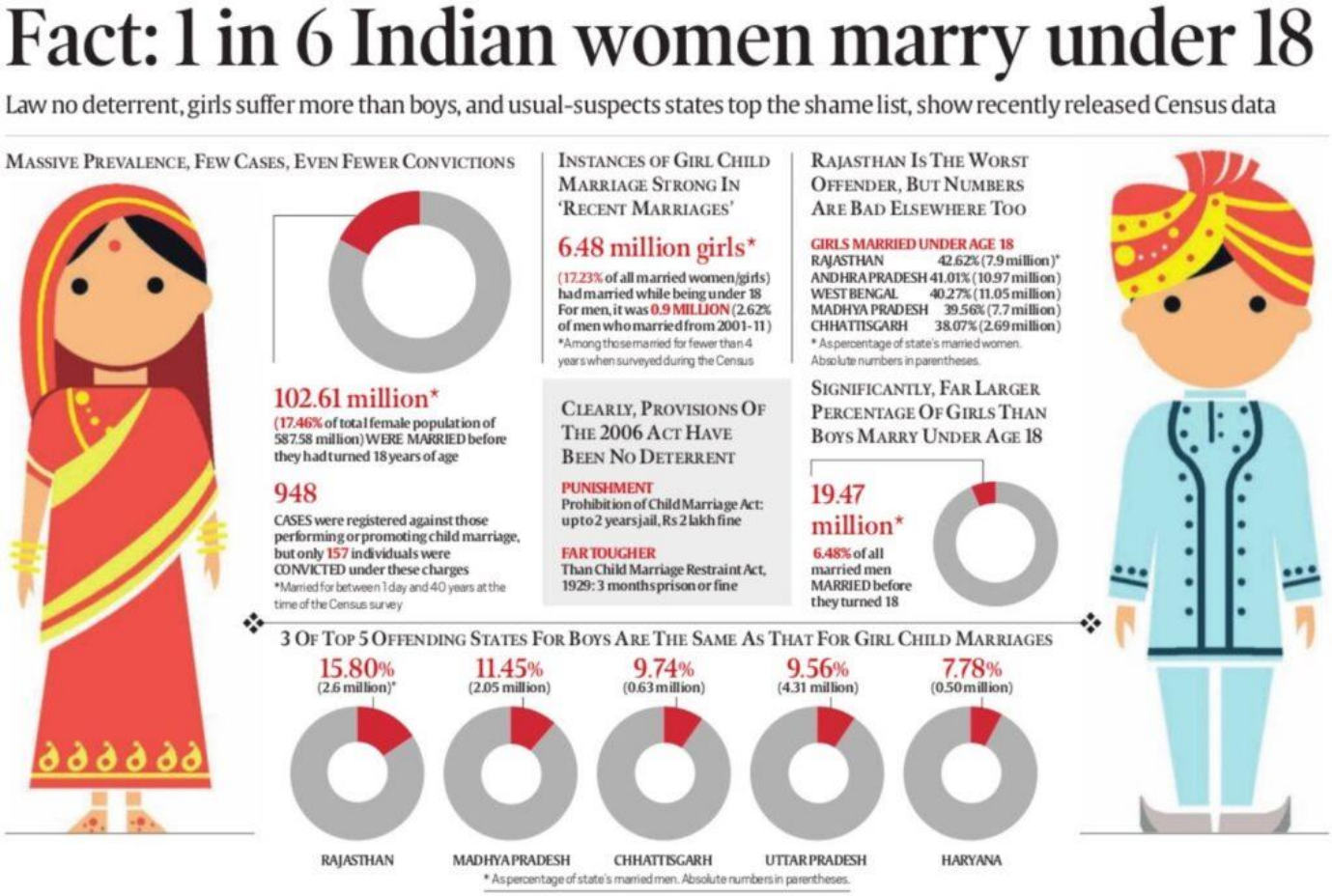

- उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त हमारे कानून में एक खामी भी है, जो एक ओर बाल विवाह करने पर दंड का प्रावधान करती है, वहीं दूसरी ओर ऐसे विवाहों को वैध मानती है।

घरेलू हिंसा और दहेज मृत्यु

- परिवार में महिलाओं पर पत्नी की पिटाई, दुर्व्यवहार, भावनात्मक यातना आदि के रूप में होने वाली हिंसा को घरेलू हिंसा माना गया है और यह समाज के सभी वर्गों में प्रचलित है।

दुल्हनों पर इस हिंसा का चरम रूप अक्सर हत्या तक पहुंच जाता है, जिसे दहेज के लिए दुल्हन की हत्या कहा जाता है। दहेज, विवाह के समय दुल्हन के परिवार से प्राप्त धन होता है।

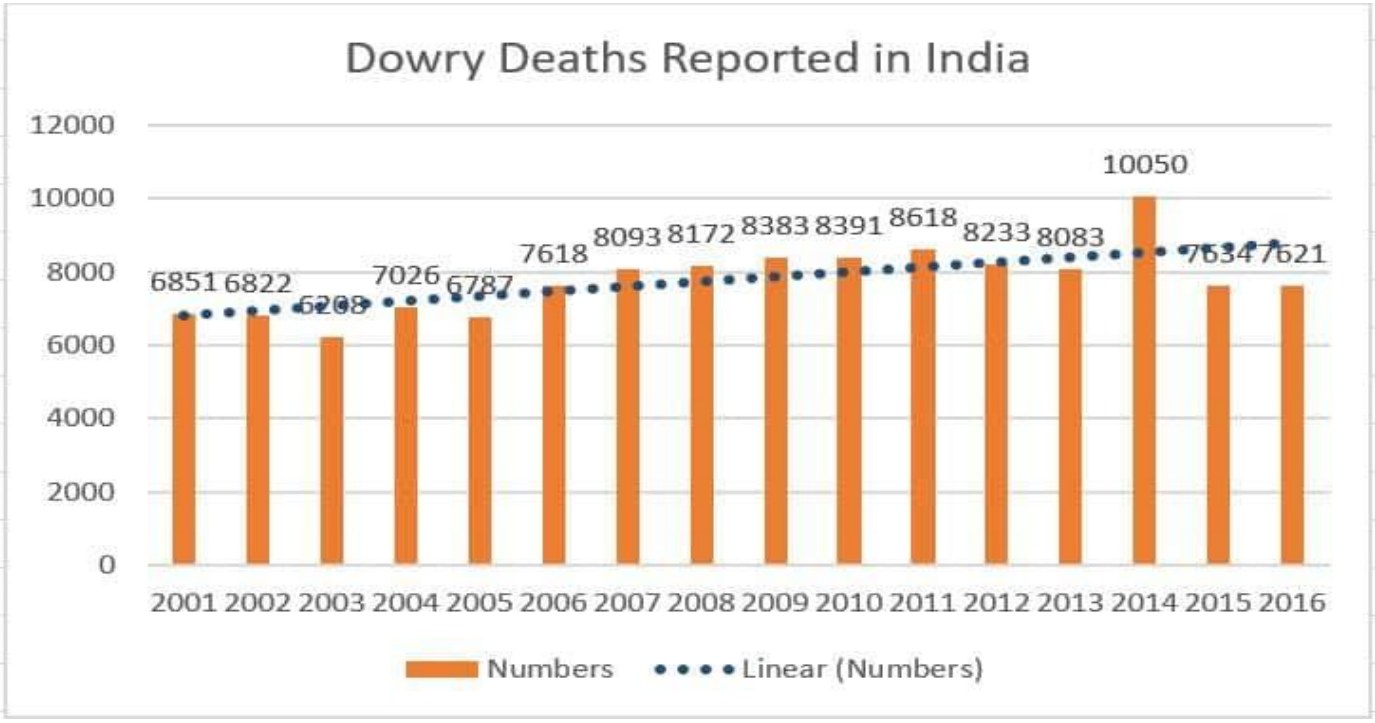

यौन उत्पीड़न

- पुरुषों द्वारा महिलाओं/युवतियों के साथ बलात्कार, यौन उत्पीड़न, छेड़छाड़, छेड़छाड़ और दुर्व्यवहार महिलाओं की स्वतंत्रता को सीमित करने का काम करते हैं। ऐसी घटनाएँ इस धारणा को भी मज़बूत करती हैं कि महिलाओं को जीवन के विभिन्न चरणों में पुरुष संरक्षण की आवश्यकता होती है।
- • कॉलेजों, सार्वजनिक परिवहन और अन्य सार्वजनिक स्थानों पर छेड़छाड़ की घटनाएँ आम हैं। • भारत के कई हिस्सों में कॉलेजों में सामूहिक बलात्कार और युवतियों पर तेज़ाब फेंकने की घटनाएँ सामने आई हैं। 16 दिसंबर, 2013 के सामूहिक बलात्कार मामले ने पूरे देश को झकझोर कर रख दिया था और इसके परिणामस्वरूप आपराधिक अधिनियम में संशोधन किया गया था। • नौकरी छूटने के डर से कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न और दुर्व्यवहार की कभी रिपोर्ट नहीं की जाती।

मी टू आंदोलन

मी टू आंदोलन (या "#MeToo", अन्य भाषाओं में स्थानीय विकल्पों के साथ) यौन उत्पीड़न और हमले के विरुद्ध एक अंतर्राष्ट्रीय आंदोलन है। #MeToo अक्टूबर 2017 में सोशल मीडिया पर एक हैशटैग के रूप में वायरल हुआ, जिसका उद्देश्य यौन उत्पीड़न और उत्पीड़न, विशेष रूप से कार्यस्थल पर, की व्यापक व्यापकता को दर्शाना था। यह अभियान हार्वे वाइंस्टीन के खिलाफ यौन दुराचार के आरोपों के सार्वजनिक खुलासे के तुरंत बाद शुरू हुआ।

साइबर क्राइम

- राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा नीति 2016 का मसौदा यह मानता है कि सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) और टेलीफोनी में तीव्र प्रगति के दुरुपयोग के परिणामस्वरूप यौन शोषण के नए और विविध रूप सामने आए हैं, जैसे साइबर अपराध और मोबाइल तथा इंटरनेट के माध्यम से महिलाओं का उत्पीड़न। इंटरनेट की अभूतपूर्व प्रगति के साथ, इंटरनेट का उपयोग करके होने वाले अपराध ने भी अपनी जड़ें सभी दिशाओं में फैला ली हैं। साइबर अपराध एक वैश्विक परिघटना है और महिलाएं इस नए प्रकार के अपराध का आसान निशाना हैं। महिलाओं के विरुद्ध साइबर अपराध चिंताजनक स्तर पर है और यह समग्र रूप से किसी भी व्यक्ति की सुरक्षा के लिए एक बड़ा खतरा बन सकता है। वर्ल्ड वाइड वेब उपयोगकर्ताओं को पाठ, चित्र, वीडियो और ध्वनियों के रूप में सामग्री प्रसारित करने की अनुमति देता है। ऐसी सामग्री का व्यापक प्रसार महिलाओं के लिए विशेष रूप से हानिकारक है।

साइबर अपराधों के विभिन्न रूप जो विशेष रूप से महिलाओं को लक्षित करते हैं, उनमें शामिल हैं:

- **ईमेल के ज़रिए उत्पीड़न:** यह उत्पीड़न का एक आम प्रकार है। उदाहरण के लिए, नाम से प्रेम पत्र भेजना या किसी के मेलबॉक्स में गुमनाम रूप से शर्मनाक मेल भेजना।
- **साइबर स्टॉकिंग:** साइबर स्टॉकिंग आधुनिक दुनिया में सबसे व्यापक ऑनलाइन अपराधों में से एक है। "स्टॉकिंग" शब्द का अर्थ है "चुपके से पीछा करना"। साइबर स्टॉकिंग का इस्तेमाल ऑनलाइन उत्पीड़न और ऑनलाइन दुर्व्यवहार के रूप में किया जा सकता है। इसमें इंटरनेट पर किसी व्यक्ति की गतिविधियों पर नज़र रखकर उसकी निजता का उल्लंघन किया जाता है। साइबर स्टॉकिंग में, स्टॉकर पीड़ित की व्यक्तिगत जानकारी जैसे नाम, पारिवारिक पृष्ठभूमि, फ़ोन नंबर और दैनिक दिनचर्या तक पहुँच प्राप्त कर लेता है और उसे डेटिंग सेवाओं से संबंधित वेबसाइटों पर पीड़ित के नाम से पोस्ट कर देता है। हाल ही में दिल्ली की एक लड़की को उसके फेसबुक दोस्तों द्वारा पैसे ठगने जैसी घटनाएँ इस स्थिति की गंभीरता को दर्शाती हैं।
- **साइबर पोर्नोग्राफ़ी:** साइबर पोर्नोग्राफ़ी एक और ख़तरा है, ख़ासकर महिला नेटिज़न्स के लिए। इसमें अश्लील वेबसाइटें, कंप्यूटर (सामग्री प्रकाशित और मुद्रित करने के लिए) और इंटरनेट (अश्लील चित्र, फ़ोटो, लेख आदि डाउनलोड और प्रसारित करने के लिए) का इस्तेमाल करके बनाई जाने वाली अश्लील पत्रिकाएँ शामिल हैं। यह काफ़ी व्यापक है। उदाहरण के लिए, 2014 में आईक्लाउड से हॉलीवुड सेलिब्रिटी की तस्वीरें लीक हुईं।
- **साइबर मानहानि:** यह तब होता है जब कंप्यूटर और/या इंटरनेट की मदद से मानहानि की जाती है। उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति किसी वेबसाइट पर किसी के बारे में अपमानजनक सामग्री प्रकाशित करता है या उस व्यक्ति के सभी दोस्तों को अपमानजनक जानकारी वाले ईमेल भेजता है।
- **मॉर्फिंग:** मॉर्फिंग का मतलब है मूल तस्वीर को अनधिकृत उपयोगकर्ता या नकली पहचान के आधार पर संपादित करना। यह देखा गया है कि नकली उपयोगकर्ता वेबसाइटों से महिलाओं की तस्वीरें डाउनलोड करते हैं और उन्हें संपादित करके नकली प्रोफाइल बनाकर फिर से विभिन्न वेबसाइटों पर पोस्ट/अपलोड कर देते हैं।
- **ई-मेल स्पूफिंग:** स्पूफ किए गए ई-मेल को वह ई-मेल कहा जा सकता है जो अपने स्रोत को गलत तरीके से प्रस्तुत करता है। इसका इस्तेमाल अक्सर महिलाओं से निजी जानकारी निकालने और फिर उसी जानकारी का इस्तेमाल उन्हें ब्लैकमेल या परेशान करने के लिए किया जाता है।

वस्तुकरण और वस्तुकरण

पितृसत्तात्मक व्यवस्था में, स्त्री को अक्सर उसके शरीर से पहचाना जाता है और उसे वासना की वस्तु माना जाता है। स्त्री का यह वस्तुकरण स्त्री कामुकता के वस्तुकरण की ओर ले जाता है। वस्तुकरण किसी ऐसी चीज़ को भौतिक मूल्य प्रदान करने की प्रक्रिया है जिसे पहले मूल्यांकन द्वारा सीमित नहीं किया जा सकता था। इस प्रकार कई मानवीय गुण, संस्कृति, भाषा, कला, साहित्य और यहाँ तक कि मानव शरीर भी वस्तु बन जाते हैं।

स्त्री की कामुकता का वस्तुकरण, स्त्री की अधीनता से शुरू होता है। उसकी कामुकता का वस्तुकरण, एक व्यक्ति के रूप में स्त्री की पहचान को कमज़ोर करता है। वस्तुकरण और वस्तुकरण से जुड़े विचार वेश्यावृत्ति के मुद्दे पर और भी विस्तार से व्यक्त होते हैं।

साहित्य, मीडिया, चित्रकला आदि के माध्यम से महिलाओं का अभद्र चित्रण भी वस्तुकरण का ही एक रूप है। उदाहरण के लिए, महिलाओं द्वारा पुरुषों के परफ्यूम के विज्ञापनों को हटाना, हिंदी फिल्मों में 'मुन्नी बदनाम हुई' जैसे आइटम सॉन्ग आदि इस प्रवृत्ति को उजागर करते हैं।

वेश्यावृत्ति

वेश्यावृत्ति महिलाओं की गरिमा को कम करती है। यह महिलाओं के लिए कलंक का स्रोत भी बन जाती है। वेश्यावृत्ति की घटनाएँ विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों में अधिक होती हैं क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों से एकल पुरुषों का प्रवास अधिक होता है।

- इनमें से ज़्यादातर महिलाएँ/लड़कियाँ यौन संचारित रोगों (एसटीडी) से पीड़ित हैं। ऐसा पाया गया है कि इनमें से कई एक्वायर्ड इम्यून डेफिसिएंसी सिंड्रोम (एड्स) की शिकार हैं। हालाँकि, वेश्यावृत्ति में लिप्त महिलाओं को एड्स का शिकार होने के बजाय, एड्स वायरस की वाहक के रूप में निशाना बनाया जाता है।

  1986 में, वेश्यावृत्ति में तस्करी को रोकने के लिए महिलाओं और लड़कियों के अनैतिक व्यापार दमन अधिनियम, 1956 (SITA अधिनियम) में संशोधन किया गया और नया अनैतिक मानव तस्करी निवारण अधिनियम (ITPPA) पारित किया गया, जिसके उद्देश्य, लक्ष्य, तर्क और आधार समान थे। महिलाओं को वेश्यावृत्ति के लिए प्रेरित करने वाले कारकों को समझना महत्वपूर्ण है। यह मुख्यतः परिस्थितिजन्य है, जो वेश्याओं और वेश्यावृत्ति की समस्या को जन्म देता है। कई परिस्थितिजन्य बाध्यताओं में से दो प्रमुख हैं:
- **सामाजिक रूप से अपकृत:** इसमें वे महिलाएँ शामिल हैं जिन्हें सामाजिक रूप से त्याग दिया गया है, जैसे विधवाएँ, बेसहारा और परित्यक्त महिलाएँ, छल-कपट की शिकार, जिन्हें शादी का वादा किया गया था या जिनकी शादी हो चुकी थी और जिस व्यक्ति पर उन्होंने भरोसा जताया था, उसने उन्हें किसी दलाल या वेश्यालय मालिक को बेच दिया। उदाहरण के लिए, झारखंड और ओडिशा की आदिवासी लड़कियों को वेश्यालयों में जबरन शामिल होने के लिए मजबूर किया जाता है। सामाजिक रूप से अपकृत्यों में वे महिलाएँ भी शामिल हैं जिन्हें बलात्कार का शिकार होने के बाद उनके परिवार, माता-पिता या पतियों ने त्याग दिया है।
- **आर्थिक रूप से गरीब:** आर्थिक रूप से वंचित महिलाएं, कुछ पैसे कमाने के लिए, उदाहरण के लिए, नेपाल भूकंप के कारण बाल तस्करी में वृद्धि हुई।

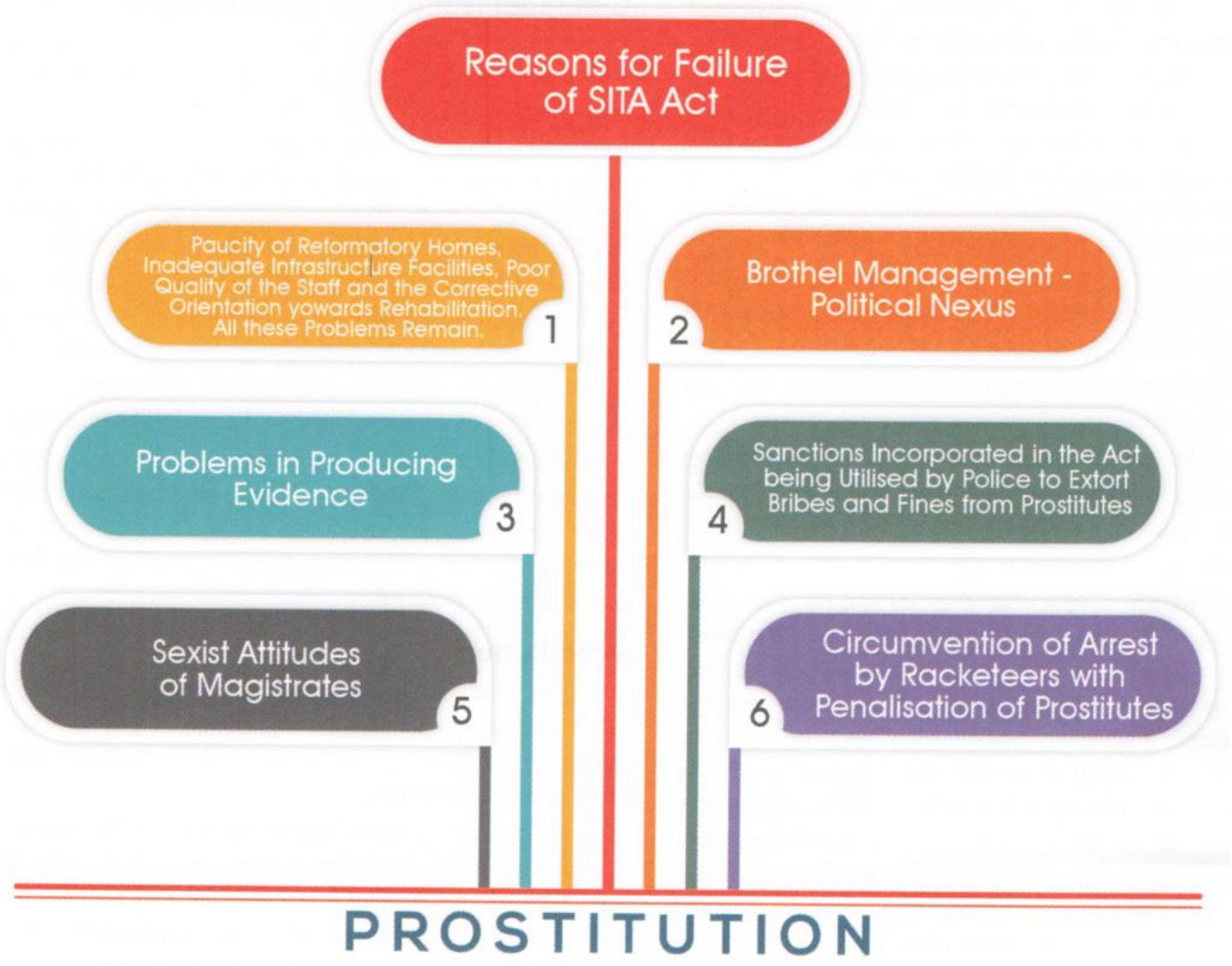

आईटीपीपीए का विश्लेषण

- आईटीपीपीए की आलोचना हुई क्योंकि यह वेश्याओं के प्रति पक्षपातपूर्ण बना हुआ है। वेश्याओं को दंडित करने वाली धाराएँ बरकरार रखी गईं। साथ ही, ग्राहक को अपराधी नहीं बनाया गया।
- इसके अलावा, कार्यान्वयन ढाँचे को मज़बूत करने के प्रावधान किए बिना दंडात्मक उपाय बढ़ाने का कोई मतलब नहीं है। एसआईटीए अधिनियम की विफलता के लिए ज़िम्मेदार कारण अभी भी मौजूद हैं।

सम्मान रक्षा हेतु हत्या

- ऑनर किलिंग किसी रिश्तेदार, विशेषकर लड़की या महिला की उसके/उसके परिवार के सदस्यों द्वारा उसके वास्तविक या कथित नैतिक या मानसिक रूप से अशुद्ध और अपवित्र व्यवहार के कारण की जाने वाली गैरकानूनी हत्या है, जिसके बारे में माना जाता है कि इससे उस परिवार या समुदाय का अपमान हुआ है जिससे वह परिवार संबंधित है।
- भारत में महिलाओं को कई कारणों से निशाना बनाया जाता है, जिनमें शामिल हैं, तयशुदा विवाह में शामिल होने से इनकार करना, यौन उत्पीड़न का शिकार होना, दुर्व्यवहार करने वाले पति से तलाक लेना, (कथित रूप से) व्यभिचार करना, अपने परिवार के जातीय और/या धार्मिक समुदाय से बाहर प्रेमी, प्रेमिका या जीवनसाथी चुनना।

संसद में गृह राज्य मंत्री के बयान के अनुसार, 2015 में देश में पुलिस द्वारा ऑनर किलिंग के 251 मामले दर्ज किये गये।

भेदभाव

घर पर

- भारत में महिलाओं को जीवन के हर पड़ाव और हर जगह भेदभाव का सामना करना पड़ता है। ज़्यादातर उनके साथ घर पर ही भेदभाव होता है क्योंकि उन्हें पुरुषों की तुलना में खाने, कपड़े, शिक्षा, आज़ादी वगैरह में ज़्यादा तरजीह दी जाती है।
- पोषण के मामले में पुरुषों को महिलाओं पर तरजीह दी जाती है। भारत में कुपोषण की व्यापक समस्या का एक प्रमुख कारण यह है कि गर्भवती माताओं को पर्याप्त पूरक पोषण नहीं मिल पाता। आमतौर पर ऐसा भी होता है कि घरों में महिलाएँ परिवार के बाकी सदस्यों को परोसने के बाद सबसे आखिर में खाना खाती हैं। जिन घरों में खाने का बजट सीमित होता है, या जहाँ बचा हुआ खाना रखने के लिए फ्रिज नहीं होता, वहाँ अक्सर सबसे आखिर में खाने वाले व्यक्ति को कम या निम्न गुणवत्ता वाला खाना मिलता है।
- ज़्यादातर परिवारों में, घर के सारे काम अकेले महिलाओं के ही जिम्मे होते हैं। कई परिवारों में, जहाँ बुनियादी सुविधाएँ अपर्याप्त हैं, उन्हें पीने का पानी और जलावन की लकड़ी (अगर जलाने के दूसरे साधन उपलब्ध न हों) जुटानी पड़ती है। इसका उनके स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
- इसके अलावा, अधिकांश भारतीय परिवारों में पुरुष और महिला सदस्यों को दी जाने वाली स्वतंत्रता के मानक अलग-अलग हैं।

कार्यस्थल पर

- औपचारिक क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं को विभिन्न प्रकार के भेदभाव का सामना करना पड़ता है, जिनमें शामिल हैं:
- **पुरुष कर्मचारियों को प्राथमिकता:** अक्सर नियोक्ता पुरुष उम्मीदवार को नियुक्त करना चुनते हैं, जबकि उनके पास समान/योग्य योग्यता वाले पुरुष और महिला उम्मीदवारों में से चुनने का विकल्प होता है, जो कि महिला के बजाय पुरुष के साथ काम करने की उनकी सहजता की धारणा पर आधारित होता है।
- **पदोन्नति और नौकरी का वर्गीकरण:** नियोक्ता केवल लिंग के आधार पर किसी एक कर्मचारी को दूसरे से ऊपर पदोन्नत नहीं कर सकते। दूसरी बात, अगर कोई नियोक्ता पुरुषों के लिए नौकरी का वर्गीकरण बदलने में जल्दबाजी करता है, जबकि समान काम करने वाली महिला कर्मचारियों को निचले नौकरी वर्गीकरण में रहने देता है, तो यह भेदभावपूर्ण रोज़गार प्रथाओं का एक उदाहरण है।

- **लाभ और वेतन:** ऑनलाइन सेवा प्रदाता मॉन्स्टर की वेतन सूचकांक रिपोर्ट भारत में लैंगिक वेतन अंतर को उजागर करती है। रिपोर्ट के अनुसार, लैंगिक वेतन अंतर 27% तक है।
- **यौन उत्पीड़न:** यौन उत्पीड़न में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरह के यौन प्रयास शामिल हैं जो दोनों लिंगों के कर्मचारियों के लिए प्रतिकूल कार्य वातावरण बनाते हैं। ऐसे मामलों को रोकने और महिलाओं की सुरक्षा के लिए, कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013 पारित किया गया था। हालाँकि, फिक्की-ईवाई की नवंबर 2015 की एक रिपोर्ट के अनुसार, 36% भारतीय कंपनियाँ और 25% बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ यौन उत्पीड़न अधिनियम, 2013 का अनुपालन नहीं करती हैं।
- इस तरह के भेदभाव महिला श्रम बल भागीदारी दर को कम करने में भी भूमिका निभाते हैं।

गरीबी का स्त्रीकरण

- जब महिलाओं में गरीबी की दर पुरुषों की तुलना में अनुपातहीन रूप से अधिक होती है, तो इसे गरीबी का स्त्रीकरण कहा जाता है। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार, दुनिया में गरीबी में रहने वाले सभी लोगों में से 70% महिलाएं हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन अत्यधिक गरीबी को दुनिया का सबसे क्रूर हत्यारा मानता है। महिलाओं में गरीबी के इतने उच्च स्तर के कारण इस प्रकार हैं:
- **कृषि का मशीनीकरण:** 70% महिलाएँ कृषि और उससे जुड़े व्यवसायों में कार्यरत हैं। वे पूरक और सीमांत श्रमिकों के रूप में काम करती हैं। कृषि के मशीनीकरण के कारण महिलाओं ने अपनी नौकरियाँ खो दी हैं और अपर्याप्त भोजन और अन्य बुनियादी सुविधाओं के साथ अपने परिवार का पालन-पोषण करने के लिए मजबूर हैं। शिक्षा तक अपर्याप्त पहुँच और उच्च स्कूल छोड़ने की दर।
- **कौशल की कमी:** उद्योगों के व्यापक आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप कुशल श्रमिकों की माँग में वृद्धि हुई है। लेकिन अधिकांश महिला श्रमिक अकुशल हैं। इसलिए वे उद्योगों में समायोजित नहीं हो पातीं। यहाँ तक कि जो महिला श्रमिक पहले उद्योगों में कार्यरत थीं, उनके कौशल में सुधार करके उन्हें बनाए रखने के बजाय, कुशल पुरुष श्रमिकों को उनकी जगह ले लिया जाता है।

- **रोजगार के अवसरों की कमी:** महिलाओं को अकुशल श्रम के अलावा पर्याप्त वैकल्पिक रोजगार के अवसर नहीं मिलते हैं।
- **संपत्ति के अधिकारों की अनुपलब्धता:** अधिकांश संस्कृतियों में महिलाओं को पैतृक संपत्ति पर अधिकार नहीं प्राप्त है, जिसे आमतौर पर पुरुषों का विशेषाधिकार माना जाता है।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि आर्थिक असमानता की अत्यधिक लैंगिक प्रकृति को वैश्विक मंच पर अभी तक मान्यता नहीं मिली है।

कृषि का स्त्रीकरण

- पुरुषों द्वारा गाँवों से शहरों की ओर बढ़ते प्रवास के साथ, कृषि क्षेत्र का 'स्त्रीकरण' हो रहा है, जहाँ कृषक, उद्यमी और श्रमिक जैसी विविध भूमिकाओं में महिलाओं की संख्या बढ़ रही है। 1970 के दशक से देश के कई हिस्सों में कृषि का स्त्रीकरण देखा गया है। सुधारों के बाद की अवधि में कृषि कार्यबल में महिलाओं की हिस्सेदारी बढ़ रही है। 1991 और 2001 के बीच, कृषि क्षेत्र में ग्रामीण मुख्य श्रमिकों की संख्या 183 मिलियन से घटकर 171 मिलियन

हो गई, लेकिन यह कमी महिला श्रमिकों (0.5 मिलियन) की तुलना में पुरुषों (11.7 मिलियन) के मामले में अधिक थी।

- फसल चयन से लेकर भूमि तैयारी, बीज चयन, रोपण, निराई, कीट नियंत्रण, कटाई, फसल भंडारण, रखरखाव, विपणन और कृषि उत्पादों के प्रसंस्करण तक, महिलाएं कृषि के सभी पहलुओं में शामिल हैं। आज ग्रामीण भारत में लगभग सभी महिलाओं को किसी न किसी रूप में 'किसान' माना जा सकता है, जो कृषि श्रमिक, पारिवारिक कृषि उद्यम में अवैतनिक श्रमिक, या दोनों के संयोजन के रूप में काम करती हैं। इसके अलावा, पारंपरिक रूप से पुरुषों द्वारा किए जाने वाले कई कृषि कार्य भी अब महिलाएं कर रही हैं क्योंकि पुरुषों को उच्च वेतन वाले रोजगारों की ओर आकर्षित किया जा रहा है। इस प्रकार, ग्रामीण भारत कृषि के स्त्रीकरण की प्रक्रिया का साक्षी बन रहा है।

2011 की जनगणना के अनुसार, 'कृषि में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है' और 2001 की पिछली जनगणना की तुलना में महिला कृषि मज़दूरों की संख्या में 24 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। लेकिन भूमि और पशुधन प्रबंधन में उनकी भूमिका को कम मान्यता मिलने के कारण, कृषि नीतियों, कार्यक्रमों और बजट के मामले में सरकार की नज़रों में महिलाएँ लगभग अदृश्य ही रही हैं।

कृषि के स्त्रीकरण के कारक

- **गरीबी:** गरीबी की स्थिति परिवार की आय बढ़ाने के लिए महिला सदस्यों को कृषि क्षेत्रों में काम करने के लिए मजबूर करती है।
- **लैंगिक वेतन अंतर:** पुरुषों को महिलाओं से ज़्यादा वेतन मिलता है। जब पुरुष कहीं और काम करके ज़्यादा कमा सकते हैं, तो महिलाओं के लिए कम आय वाला काम छोड़ दिया जाता है।
- **पुरुष प्रवास:** ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर पुरुषों के प्रवास ने महिलाओं को कृषि क्षेत्रों में उनका स्थान लेने के लिए मजबूर कर दिया है।
- **कृषि मज़दूरों की माँग:** भारत में पारंपरिक कृषि श्रम-प्रधान है, और इसलिए मज़दूरों की माँग बहुत ज़्यादा है। ऊपर बताए गए ग्रामीण से शहरी पुरुषों के प्रवास से यह माँग और भी बढ़ जाती है।

- **सामाजिक स्वीकृति:** ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के लिए कृषि कार्य पारंपरिक रूप से स्वीकार्य रहा है, अन्यथा कार्यस्थलों पर महिलाओं की रोजगार क्षमता के मामले में यह कई कलंकों के लिए बदनाम है।

तीन तलाक

- तलाक के तीन रूप हैं: अहसन, हसन और तलाके-बिद्दत (तीन या तुरंत तलाक)। अहसन और हसन तलाक वापस लेने योग्य हैं। हालाँकि, बिद्दत, जिसका अर्थ है पति द्वारा एक बार में तलाक देना, अपरिवर्तनीय है। हालाँकि, बिद्दत को 'पाप' माना जाता है, फिर भी इस्लामी कानून (शरिया) में इसकी अनुमति है।

मुस्लिम पर्सनल लॉ पति को अपनी इच्छानुसार विवाह विच्छेद करने का पूर्ण अधिकार देता है। हालाँकि, मुस्लिम विवाह में पत्नी केवल तभी विवाह विच्छेद की माँग कर सकती है जब:

- यह आपसी सहमति से तलाक है।
- पत्नी द्वारा पति को कुछ प्रतिफल देने पर सहमति से तलाक;
- तलाक जहां पति प्रतिनिधि नियुक्त करता है।

- अतः यह स्पष्ट है कि तलाक कहने के मामलों में महिलाओं को समान निर्णय लेने की शक्ति नहीं दी जाती है, बल्कि वे इसकी शिकार होती हैं।
- अगस्त 2017 में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने तीन-दो के बहुमत से इस भेदभावपूर्ण और विवादास्पद प्रथा पर प्रतिबंध लगा दिया और कहा कि तीन तलाक "धार्मिक रीति-रिवाजों का अभिन्न अंग नहीं है और संवैधानिक नैतिकता का उल्लंघन करता है"। न्यायालय ने यह भी कहा कि यह मुस्लिम महिलाओं के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है क्योंकि यह सुलह-समझौते की कोई गुंजाइश छोड़े बिना ही विवाह को हमेशा के लिए समाप्त कर देता है। न्यायालय ने इस तथ्य का हवाला दिया कि पाकिस्तान जैसे कई इस्लामी देश तीन तलाक की अनुमति नहीं देते हैं।

मंदिर प्रवेश

- मंदिर में प्रवेश का मुद्दा 2016 में तब सुर्खियों में आया जब भूमाता रंगरागिनी ब्रिगेड नामक महिलाओं के एक समूह ने शनि शिगणापुर मंदिर की 400 साल पुरानी परंपरा को तोड़ने की कोशिश की। इस परंपरा के तहत महिलाओं को मंदिर के गर्भगृह में प्रवेश करने की अनुमति नहीं थी। जैसे ही यह मुद्दा मीडिया में आया, केरल के सबरीमाला मंदिर की एक और परंपरा की आलोचना होने लगी, जिसके अनुसार 10 से 50 वर्ष की आयु की महिलाओं को मंदिर में प्रवेश की अनुमति नहीं है, क्योंकि वे मासिक धर्म की आयु वर्ग में हैं।
- ऐसे उदाहरणों ने कानून और धर्म के बीच बहस को जन्म दिया है। यह प्रतिबंध संविधान द्वारा प्रदत्त समानता के सिद्धांत का उल्लंघन करता है, लेकिन प्रथागत अधिकार धार्मिक परंपराओं और रीति-रिवाजों का सम्मान करने की अनुमति देते हैं।

- सौभाग्य से, इस मुद्दे को बॉम्बे उच्च न्यायालय (शनि शिगणापुर के लिए) और सर्वोच्च न्यायालय (सबरीमाला मंदिर के लिए) ने दृढ़ता से निपटाया। बॉम्बे उच्च न्यायालय ने कहा कि "कोई भी कानून महिलाओं को पूजा स्थल में प्रवेश करने से नहीं रोकता है और यदि पुरुषों को अनुमति है, तो महिलाओं को भी अनुमति दी जानी चाहिए"। इसी प्रकार, सर्वोच्च न्यायालय ने त्रावणकोर देवस्वोम बोर्ड (बोर्ड, जो केरल के लोकप्रिय सबरीमाला अयप्पा हिंदू मंदिर का प्रबंधन करता है) को अनुचित व्यवहार करने और मंदिर में मासिक धर्म की आयु की महिलाओं के प्रवेश पर प्रतिबंध लगाने के उनके रुख के लिए फटकार लगाई। न्यायालय का मानना था कि महिलाओं के प्रवेश को प्रतिबंधित या प्रतिबंधित करने वाले पूजा स्थल लैंगिक समानता की लड़ाई को कमजोर करते हैं और उन्हें ऐसा करने का कोई संवैधानिक अधिकार नहीं है।

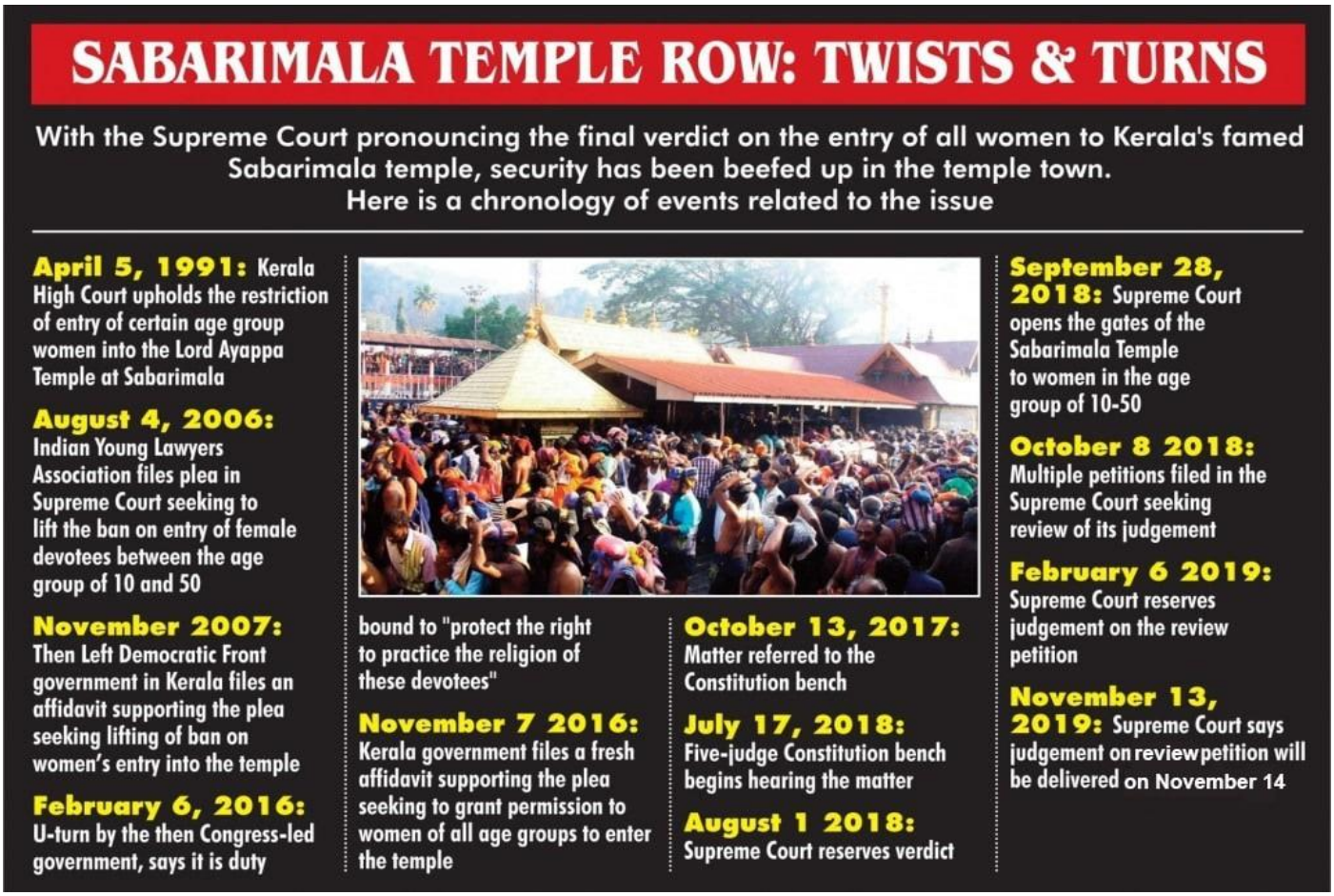

संवैधानिक और वैधानिक प्रावधान

- आज़ादी के बाद से, संसद ने संवैधानिक प्रावधानों, वैधानिक उपायों और अधिनियमों सहित अनेक उपाय किए हैं। इसके अलावा, अनिवार्य अधिनियमों और प्रावधानों के प्रभावी कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए केंद्र और राज्य दोनों स्तरों पर विभिन्न संस्थाएँ भी स्थापित की गई हैं।

संवैधानिक

- **अनुच्छेद 14:** धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के भेदभाव के बिना सभी के लिए कानून के समक्ष समानता।
- **अनुच्छेद 15(1):** राज्य किसी भी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा।
- **अनुच्छेद 15(3):** राज्य द्वारा महिलाओं और बच्चों के पक्ष में कोई विशेष प्रावधान करना।
- **अनुच्छेद 16:** राज्य के अधीन किसी भी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित मामलों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समानता।

- **अनुच्छेद 39(क):** समान अवसर के आधार पर न्याय को बढ़ावा देना तथा उपयुक्त कानून या योजना या किसी अन्य तरीके से निःशुल्क कानूनी सहायता प्रदान करना ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि आर्थिक या अन्य अक्षमताओं के कारण किसी भी नागरिक को न्याय प्राप्त करने के अवसरों से वंचित न किया जाए।
- **अनुच्छेद 39(घ):** राज्य अपनी नीति को पुरुषों और महिलाओं के लिए समान रूप से आजीविका के पर्याप्त साधन का अधिकार सुनिश्चित करने की दिशा में निर्देशित करेगा (अनुच्छेद 39(क)); तथा पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन।
- **अनुच्छेद 42:** राज्य न्यायसंगत और मानवोचित कार्य दशाएं सुनिश्चित करने तथा प्रसूति सहायता के लिए प्रावधान करेगा।
- **अनुच्छेद 46:** राज्य जनता के कमजोर वर्गों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को विशेष ध्यान से बढ़ावा देगा तथा उन्हें सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से बचाएगा।
- **अनुच्छेद 47:** राज्य अपने लोगों के पोषण स्तर और जीवन स्तर को ऊंचा उठाएगा।
- **अनुच्छेद 51(ए)(ई):** भारत के सभी लोगों के बीच सद्भाव और समान भाईचारे की भावना को बढ़ावा देना और महिलाओं की गरिमा के लिए अपमानजनक प्रथाओं का त्याग करना।
- **अनुच्छेद 243घ(3):** प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरी जाने वाली कुल सीटों की कम से कम एक-तिहाई (जिसमें अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की महिलाओं के लिए आरक्षित सीटों की संख्या भी शामिल है) महिलाओं के लिए आरक्षित होंगी और ऐसी सीटें पंचायत में विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों को चक्रानुक्रम से आवंटित की जाएंगी।
- **अनुच्छेद 243डी(4):** प्रत्येक स्तर पर पंचायतों में अध्यक्षों के कुल पदों की संख्या के कम से कम एक तिहाई पद महिलाओं के लिए आरक्षित किए जाएंगे।
- **अनुच्छेद 243टी(3):** प्रत्येक नगर पालिका में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरी जाने वाली कुल सीटों की कम से कम एक-तिहाई (जिसमें अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की महिलाओं के लिए आरक्षित सीटों की संख्या भी शामिल है) महिलाओं के लिए आरक्षित होंगी और ऐसी सीटें किसी नगर पालिका में विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों को चक्रानुक्रम से आवंटित की जाएंगी।
- **अनुच्छेद 243टी(4):** नगरपालिकाओं में अध्यक्ष के पदों का अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं के लिए ऐसी रीति से आरक्षण जैसा कि राज्य विधानमंडल विधि द्वारा उपबंधित करे।

वैधानिक

- 19वीं सदी के सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलनों के दौरान, भारत में महिला अधिकारों के लिए आंदोलन मुख्यतः बाल विवाह, विधवापन, सती प्रथा, महिलाओं के संपत्ति अधिकार आदि समस्याओं पर केंद्रित थे। स्वतंत्रता के बाद के काल में महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार लाने और महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव एवं उत्पीड़न को समाप्त करने के उद्देश्य से कई कानून बनाए गए।

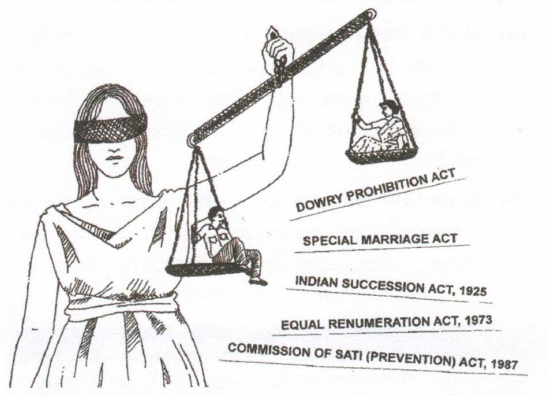

कानूनों की सूची निम्नलिखित है:

1. **विशेष विवाह अधिनियम 1954:** 1929 में पारित सारदा अधिनियम या बाल विवाह निरोधक अधिनियम ने लड़कियों की विवाह आयु 15 वर्ष निर्धारित की। यह अधिनियम सभी समुदायों पर लागू था। बाद में 1954 में विशेष विवाह अधिनियम पारित करके इसमें संशोधन किया गया, जिसके तहत पुरुषों के लिए विवाह की न्यूनतम आयु 21 वर्ष और महिलाओं के लिए 18 वर्ष निर्धारित की गई।

2. **बहुविवाह पर प्रतिबंध:** भारत सरकार ने बहुविवाह की प्रथा पर प्रतिबंध लगा दिया, जिसके तहत एक व्यक्ति सभी सरकारी कर्मचारियों के लिए एक ही समय में एक से अधिक पत्नियां रख सकता था।
3. **दहेज निषेध अधिनियम, 1961:** दहेज निषेध अधिनियम, 1961 के प्रावधानों को और अधिक कठोर बनाने के लिए 1984 और फिर 1986 में इसमें संशोधन किया गया। इस कानून के तहत अब न्यायालय को अपनी जानकारी के आधार पर या किसी मान्यता प्राप्त कल्याणकारी संगठन की शिकायत पर कार्रवाई करने का अधिकार है। जाँच के उद्देश्य से अपराध को संज्ञेय बना दिया गया है।

- (क) इसके अतिरिक्त, भारतीय साक्ष्य अधिनियम में संशोधन किया गया है ताकि दहेज की मांग किए जाने तथा सामान्य परिस्थितियों के अलावा विवाह के 7 वर्ष के भीतर दुल्हन की मृत्यु हो जाने की स्थिति में साक्ष्य का भार पति और उसके परिवार पर डाला जा सके।
- (ख) इस मुद्दे से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए कुछ महत्वपूर्ण शहरी केंद्रों में दहेज विरोधी प्रकोष्ठ भी स्थापित किए गए हैं।

4. **हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956:** इस अधिनियम के लागू होने से पहले, हिंदुओं में उत्तराधिकार मिताक्षरा और दयाभाग पद्धतियों द्वारा शासित होता था। इसने महिलाओं की स्थिति को आश्रित बना दिया था। 1956 के अधिनियम ने उत्तराधिकार के स्वरूप में आमूल-चूल परिवर्तन किए। इस अधिनियम के अनुसार, पुत्री को पिता की संपत्ति में समान हिस्सा मिलेगा, जबकि विधवा को पति की संपत्ति में समान अधिकार प्राप्त होगा। 2005 में इस अधिनियम में संशोधन करके पुत्रियों को पैतृक संपत्ति में समान हिस्सा देने का अधिकार दिया गया।
5. **कार्य, पारिश्रमिक और मातृत्व लाभ**

- (क) **समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1973:** इस अधिनियम के अनुसार, समान या समान कार्य के लिए पुरुषों और महिलाओं को समान वेतन दिया जाएगा। यह अधिनियम भर्ती के समय और उसके बाद लिंग के आधार पर भेदभाव का भी निषेध करता है।
- (ख) **मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961** कारखानों, खदानों, बागानों और सरकारी एवं अर्ध-सरकारी प्रतिष्ठानों में काम करने वाली महिलाओं को मातृत्व अवकाश प्रदान करता है।

6. **सती (निवारण) अधिनियम, 1987:** यह कानून सती प्रथा को गैरकानूनी घोषित करता है। यह अधिनियम सती प्रथा के महिमामंडन को भी अपराध बनाता है और इस मिथक का खंडन करता है कि सती हिंदू महिलाओं की महिमा का प्रतीक है।
7. **आपराधिक कानून अधिनियम, 1983 में संशोधन:** यह संशोधन पति या उसके रिश्तेदारों द्वारा की गई क्रूरता को अपराध बनाकर घरेलू हिंसा को कानूनी मान्यता देता है।
8. **आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2013:** 16 दिसंबर की भयावह सामूहिक बलात्कार घटना के बाद सीआरपीसी में संशोधन हेतु यह संशोधन पारित किया गया था। इसमें बलात्कार के दोषियों के लिए आजीवन कारावास और मृत्युदंड सहित कठोरतम सजा का प्रावधान था।
9. **घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005:** यह अधिनियम महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार की घरेलू हिंसा को दंडनीय अपराध घोषित करता है। सांख्यिकी एवं कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय (MoSPI) ने 'भारत में महिलाएँ और पुरुष 2015' शीर्षक से एक रिपोर्ट जारी की है, जिसके अनुसार महिलाओं के विरुद्ध अपराधों में घरेलू हिंसा की हिस्सेदारी सबसे अधिक है।
10. **गर्भ का चिकित्सीय समापन अधिनियम, 1971:** इस अधिनियम के माध्यम से, यदि भ्रूण शारीरिक या मानसिक असामान्यता से ग्रस्त हो, बलात्कार और अवांछित गर्भावस्था के मामले में गर्भधारण अवधि के 12 सप्ताह के भीतर और 12वें सप्ताह के बाद, 20वें सप्ताह से पहले गर्भपात को कानूनी बना दिया गया था, यदि गर्भावस्था मां के लिए हानिकारक हो या पैदा होने वाला बच्चा गंभीर रूप से विकृत हो।

मातृत्व लाभ (संशोधन) अधिनियम, 2017

भारतीय श्रम सम्मेलन (आईएलसी) के 44वें, 45वें और 46वें सत्र की सिफारिशों और विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त मांगों के अनुरूप, सरकार ने हाल ही में मातृत्व लाभ (संशोधन) अधिनियम, 2017 लागू किया है। इस संशोधन अधिनियम के माध्यम से, मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 में निम्नलिखित प्रावधान जोड़े गए हैं:

- (i) कामकाजी महिलाओं को पहले दो बच्चों के लिए उपलब्ध मातृत्व अवकाश को 12 सप्ताह से बढ़ाकर 26 सप्ताह किया जाएगा।
- (ii) पहले दो बच्चों के अलावा अन्य बच्चों के लिए मातृत्व अवकाश 12 सप्ताह का ही रहेगा।
- (iii) 50 से अधिक कर्मचारियों वाले प्रत्येक प्रतिष्ठान को कामकाजी माताओं के लिए शिशुगृह की सुविधा उपलब्ध करानी होगी तथा ऐसी माताओं को शिशुगृह में बच्चे की देखभाल करने तथा उसे भोजन कराने के लिए कार्य समय के दौरान चार बार शिशुगृह में जाने की अनुमति होगी।
- (iv) यदि संभव हो तो नियोक्ता किसी महिला को घर से काम करने की अनुमति दे सकता है।

संस्थानों

राष्ट्रीय महिला आयोग (एनसीडब्ल्यू)

राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 के तहत जनवरी 1992 में एक वैधानिक निकाय के रूप में की गई थी:

- महिलाओं के लिए संवैधानिक और कानूनी सुरक्षा उपायों की समीक्षा करें;
- सुधारात्मक विधायी उपायों की सिफारिश करना;
- शिकायतों के निवारण में सुविधा प्रदान करना और
- महिलाओं को प्रभावित करने वाले सभी नीतिगत मामलों पर सरकार को सलाह देना।

अपने अधिदेश के अनुरूप आयोग ने शिकायतकर्ताओं को शीघ्र न्याय दिलाने के लिए स्वप्रेरणा से कार्य किया।

- इसने बाल विवाह के मुद्दे को उठाया, दहेज निषेध अधिनियम, 1961, पीसी और पीएनडीटी (गर्भधारण-पूर्व और प्रसव-पूर्व निदान तकनीक) अधिनियम 1994, भारतीय दंड संहिता 1860 और राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 जैसे कानूनों की समीक्षा की ताकि उन्हें अधिक कठोर और प्रभावी बनाया जा सके।
- यह कार्यशालाएं/परामर्श आयोजित करता है, महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण पर विशेषज्ञ समितियों का गठन करता है, लिंग जागरूकता के लिए कार्यशालाएं/सेमिनार आयोजित करता है और कन्या भ्रूण हत्या, महिलाओं के विरुद्ध हिंसा आदि के विरुद्ध प्रचार अभियान चलाता है, ताकि इन सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध समाज में जागरूकता पैदा की जा सके।

महिलाओं के लिए राष्ट्रीय नीति

- भारत सरकार द्वारा 2001 में महिलाओं के लिए आधिकारिक नीति जारी की गई थी, जिसे राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति (एनपीईडब्ल्यू) कहा जाता है। राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति (एनपीईडब्ल्यू), 2001 को तैयार हुए लगभग डेढ़ दशक बीत चुका है, जिसने महिलाओं की उन्नति, विकास और सशक्तिकरण के लिए उपयुक्त नीतिगत सुझावों और रणनीतियों के साथ एक व्यापक प्रगतिशील नीति निर्धारित की।
- सरकार ने राष्ट्रीय महिला नीति 2016 का मसौदा जारी किया। अब हम चर्चा करेंगे कि नई नीति की आवश्यकता क्यों थी और मसौदा नीति की मुख्य विशेषताएं क्या हैं।

दलील

- महिला सशक्तिकरण की अवधारणा में कई बदलाव आए हैं, कल्याणकारी लाभों की प्राप्तकर्ता से लेकर विकास प्रक्रिया में उनकी भागीदारी की आवश्यकता तक। इसलिए, एक ऐसा सक्षम वातावरण बनाने के लिए अधिकार-आधारित दृष्टिकोण को सुदृढ़ करना आवश्यक है जिसमें महिलाएँ अपने अधिकारों का आनंद ले सकें।

- पिछले कुछ वर्षों में कई विरोधाभासी रुझान देखे गए हैं। लैंगिक अधिकारों और समानता की बढ़ती स्वीकार्यता के साथ-साथ, महिलाओं के विरुद्ध विभिन्न प्रकार की हिंसा, जैसे बलात्कार, मानव तस्करी, दहेज प्रथा आदि की रिपोर्टिंग में भी वृद्धि हुई है।
- नई सहस्राब्दी और तेजी से बदलते वैश्विक और राष्ट्रीय परिदृश्य की गतिशीलता ने विकास और वृद्धि के नए पहलुओं को जन्म दिया है, जिससे लिंग भूमिकाओं के बारे में गहरी सांस्कृतिक और सामाजिक मान्यताओं वाले समाज में महिलाओं के लिए जटिल सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक चुनौतियां पैदा हुई हैं।
- इसलिए एक नई नीति तैयार करने की आवश्यकता है जो लैंगिक अधिकारों को वास्तविकता बनाने के लिए आवश्यक परिवर्तनकारी बदलाव का मार्गदर्शन कर सके, महिलाओं के मुद्दों को उनके सभी पहलुओं में संबोधित कर सके, उभरती चुनौतियों को समझ सके और अंततः महिलाओं को देश में वर्तमान में हो रहे सतत विकास में समान भागीदार के रूप में स्थापित कर सके।

प्राथमिकता वाले क्षेत्र

- **खाद्य सुरक्षा और पोषण सहित स्वास्थ्य:** इसके अंतर्गत, नीति लैंगिक परिवर्तनकारी स्वास्थ्य रणनीति पर जोर देती है, जो महिलाओं के प्रजनन अधिकारों को मान्यता देती है, जिसमें परिवार नियोजन में महिला नसबंदी से पुरुष नसबंदी पर ध्यान केंद्रित करने जैसे बदलाव शामिल हैं।
- मातृ एवं प्रसवोत्तर मृत्यु दर जैसे पारंपरिक क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है, तथा एमएमआर और आईएमआर की उच्च दरों को कम करने के लिए प्राथमिकता बनी रहेगी।
- मातृ स्वास्थ्य के अलावा, कैंसर, हृदय रोग, एचआईवी/एड्स जैसे संक्रामक और गैर-संक्रामक रोगों सहित महिलाओं की अन्य स्वास्थ्य समस्याओं पर उचित रणनीतियों और हस्तक्षेपों के साथ प्राथमिकता से ध्यान दिया जाएगा।

शिक्षा: लड़कियों से संबंधित कई मुद्दों पर चर्चा की गई है, जिनमें आंगनवाड़ी केंद्रों में स्कूल-पूर्व शिक्षा, कार्यात्मक बालिका शौचालयों के प्रावधान के माध्यम से किशोरियों के स्कूलों में नामांकन और ठहराव में वृद्धि, महिला शिक्षकों की अधिक भर्ती, संकाय और पाठ्यक्रम और सामग्री का लिंग संवेदीकरण आदि शामिल हैं।

अर्थव्यवस्था: चूँकि घरेलू अनुमानों में लैंगिक गरीबी का अनुमान नहीं होता, इसलिए लिंग आधारित अनुमानों के आधार पर गरीबी के प्रभाव का आकलन करने के प्रयास किए जाएँगे। लिंग और गरीबी की गतिशीलता के बीच संबंधों को संबोधित किया जाएगा, उदाहरण के लिए, कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाकर, आर्थिक और सामाजिक मूल्य के संदर्भ में महिलाओं के अवैतनिक कार्य को मान्यता देकर, और अचल संपत्ति पर महिलाओं के अधिकारों को सुनिश्चित करके।

शासन और निर्णय लेना : विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका सहित सरकार की तीनों शाखाओं में महिलाओं की उपस्थिति को बढ़ावा देने के लिए तंत्र स्थापित करना।

- निर्णय लेने तथा महिला अधिकारों एवं विधानों के पहलुओं पर अधिक क्षमता निर्माण के माध्यम से महिलाओं के प्रतिनिधित्व की गुणवत्ता में सुधार किया जाएगा।
- महिलाओं के विरुद्ध हिंसा: महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के सभी रूपों को संबोधित करने के प्रयास, भ्रूण से लेकर वृद्धों तक, जीवन चक्र दृष्टिकोण के माध्यम से समग्र दृष्टिकोण के साथ जारी रखे जाएंगे, जिसमें लिंग चयनात्मक गर्भपात, शिक्षा से वंचित करना, बाल विवाह से लेकर घर के निजी क्षेत्र, सार्वजनिक स्थानों और कार्यस्थल पर महिलाओं द्वारा सामना की जाने वाली हिंसा शामिल है।
- यह विविध हितधारकों के सहयोग से कानूनों, कार्यक्रमों और सेवाओं के संयोजन के माध्यम से हिंसा और दुर्व्यवहार की पहचान करेगा और उनका मुकाबला करेगा।

अनुकूल वातावरण: आवास नीतियों, आवासीय कॉलोनियों की योजना और ग्रामीण तथा शहरी दोनों क्षेत्रों में आश्रय स्थलों में लैंगिक परिप्रेक्ष्य को प्राथमिकता दी जाएगी।

- महिलाओं के स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित पेयजल और स्वच्छता सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण माना जाएगा।

- जनसंचार माध्यमों अर्थात प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, विज्ञापन जगत, फिल्म क्षेत्र और नए मीडिया में लैंगिक समानता को बढ़ावा दिया जाएगा।
- फीडर सड़कों पर किफायती और बेहतर पारंपरिक परिवहन सेवाएं उपलब्ध कराने के प्रयास किए जाएंगे तथा महिला समूह/समुदाय आधारित कम लागत वाली परिवहन योजनाओं की संभावनाओं का पता लगाया जाएगा।

पर्यावरण और जलवायु परिवर्तन: चूंकि महिलाएं जलवायु परिवर्तन, पर्यावरणीय क्षरण, प्राकृतिक आपदाओं के समय संकटपूर्ण प्रवास और विस्थापन से अत्यधिक प्रभावित होती हैं, इसलिए पर्यावरण, संरक्षण और पुनर्स्थापन के लिए नीतियों और कार्यक्रमों में अनिवार्य रूप से लैंगिक चिंताओं को शामिल किया जाएगा।

इस संवाद का एक अभिन्न अंग प्राकृतिक संसाधनों के समान स्वामित्व नियंत्रण और उपयोग को सक्षम बनाना तथा गरीबी और जलवायु झटकों का मुकाबला करने के लिए हाशिए पर रहने वाली गरीब महिलाओं की परिसंपत्ति को सुरक्षित करना होगा।

कार्यान्वयन

- नीतिगत ढांचे को मूर्त रूप देने के लिए राष्ट्रीय, राज्य और स्थानीय सरकार के स्तर पर, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों, कॉरपोरेट्स, व्यापार, ट्रेड यूनियनों, गैर सरकारी संगठनों और समुदाय आधारित संगठनों में कार्यान्वयन के लिए विशिष्ट, प्राप्त करने योग्य और प्रभावी रणनीतियां बनाने की आवश्यकता होगी।
- नीति दस्तावेज में नीतिगत निर्देशों के संबंध में कार्य बिंदुओं के साथ एक अंतर-मंत्रालयी कार्य योजना तैयार की जाएगी, जिसमें निश्चित लक्ष्य, महत्वपूर्ण गतिविधियां, समय-सीमा (अल्पकालिक, मध्यम अवधि और दीर्घकालिक) तथा परिणाम संकेतक दिए जाएंगे तथा कार्यों को लागू करने के लिए जिम्मेदार मंत्रालयों/विभागों की जानकारी भी दी जाएगी।
- कार्य योजना के अंतर्गत प्राप्त उपलब्धियों और प्रगति की समय-समय पर निगरानी के लिए एक अंतर-मंत्रालयी समिति गठित की जाएगी।

महिला विकास

- विकास कार्यक्रमों की अक्सर लैंगिक भूमिकाओं और महिलाओं पर पड़ने वाले उनके प्रभाव की अनदेखी करने के लिए आलोचना की जाती रही है। इस वास्तविकता को स्वीकार करते हुए, नए दृष्टिकोण सामने आए और गरीबी उन्मूलन और उनकी निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति को सुधारने की आशा में महिलाओं को विकास कार्यक्रमों में शामिल करने की दिशा में बदलाव आया।
- इसे पूरा करने के लिए विभिन्न दृष्टिकोण सामने रखे गए और उनमें से तीन मुख्य दृष्टिकोणों पर संक्षेप में चर्चा की जाएगी। तीन दृष्टिकोणों में शामिल हैं:

विकास में महिलाएं (WID)

- विकास में महिलाएँ (WID) 1970 के दशक के आरंभ में एक उदार नारीवादी ढाँचे से विकसित हुआ। इसका मुख्य उद्देश्य उन महिलाओं को विकास प्रक्रिया में शामिल करना था जिन्हें पहले किसी भी प्रगति का निष्क्रिय लाभार्थी माना जाता था। पहले विकास को केवल आर्थिक दृष्टि से देखा जाता था। इसलिए इस दृष्टिकोण ने विकास नीति और व्यवहार में महिलाओं पर अधिक ध्यान देने की माँग की।
- WID परिप्रेक्ष्य एक महत्वपूर्ण सुधारात्मक कार्रवाई को चिह्नित करता है जो इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि यदि प्रभावी और कुशल विकास प्राप्त करना है तो महिलाओं को सक्रिय रूप से विकास में शामिल होना आवश्यक है। इसके तहत, महिलाओं की अधीनता को बाजार क्षेत्र से उनके बहिष्कार और परिणामस्वरूप संसाधनों पर सीमित नियंत्रण के रूप में देखा गया। 73वें/74वें संविधान संशोधन अधिनियम, मनरेगा में महिलाओं के लिए 33% लक्ष्य जैसे प्रयास इस दृष्टिकोण को उजागर करते हैं।
- यह दृष्टिकोण मूलतः महिलाओं के विकास के लिए अधिक संसाधनों तक उनकी पहुंच की वकालत कर रहा था, लेकिन इसे जल्द ही अस्वीकार कर दिया गया क्योंकि यह महसूस किया गया कि मौजूदा सामाजिक संरचनाएं

अनिवार्य रूप से महिलाओं को घरेलू कामों और समाज द्वारा दी गई पारंपरिक भूमिकाओं और जिम्मेदारियों तक सीमित रखने के पक्ष में थीं।

महिला एवं विकास (WAD)

- महिला एवं विकास विचारधारा, विकास कार्यकर्ताओं और सामाजिक वैज्ञानिकों की इस अनुभूति का परिणाम है कि शोषण और असमानता की वैश्विक व्यवस्था में महिलाएं हमेशा से ही विकास प्रक्रिया का अभिन्न अंग रही हैं, और इसी परिप्रेक्ष्य में हमें यह जांचने की आवश्यकता है कि पिछले दशकों की विकास रणनीतियों से महिलाओं को लाभ क्यों नहीं मिला।
- WAD दृष्टिकोण यह स्वीकार करता है कि न केवल महिलाएँ, बल्कि पुरुष भी अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में व्याप्त असमानताओं और शोषण की संरचना से पीड़ित हैं और उन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसलिए यह दृष्टिकोण महिलाओं की समस्याओं पर सख्ती से ध्यान केंद्रित करने को हतोत्साहित करता है क्योंकि वर्ग और पूँजी पर आधारित दमनकारी वैश्विक ढाँचे में दोनों ही लिंग वंचित हैं।
- इसके बाद, WAD विचारधारा ने यह मान लिया कि अधिक न्यायसंगत अंतर्राष्ट्रीय संरचनाओं के साथ महिलाओं की स्थिति में सुधार होगा।
- यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि WAD दृष्टिकोण, WID दृष्टिकोण का बिल्कुल विरोधी नहीं है। बल्कि, यह WID दृष्टिकोण की कमज़ोरियों को स्वीकार करता है और एक उपयुक्त हस्तक्षेप प्रदान करके WID दृष्टिकोण का पूरक बनता है। RMNCHA+ जैसे हालिया उपायों में पुरुषों और महिलाओं दोनों के स्वास्थ्य संबंधी चिंताएँ शामिल हैं।

लिंग और विकास (जीएडी)

- जेंडर एंड डेवलपमेंट (GED) WID दृष्टिकोण की आलोचना करता है और इसके सीमित दायरे को इसका कारण बताता है। GAD के समर्थकों के अनुसार, WID महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए सीमित योगदान देता है, लेकिन कुल मिलाकर पुरुषों की तुलना में उनके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सशक्तिकरण की उपेक्षा करता है।
- इस दृष्टिकोण के पीछे तर्क यह था कि 'महिलाओं के बजाय लिंग पर ध्यान केंद्रित करने से न केवल 'महिला' श्रेणी पर ध्यान देना ज़रूरी हो जाता है - क्योंकि यह कहानी का केवल आधा हिस्सा है - बल्कि पुरुषों के साथ महिलाओं के संबंध और इन श्रेणियों के बीच सामाजिक रूप से निर्मित संबंधों के तरीके पर भी ध्यान देना ज़रूरी हो जाता है।' हाल ही में शुरू किए गए पुरुष महिलाओं के लिए/पुरुष महिलाओं के लिए अभियान जैसे उपाय महिलाओं के सशक्तिकरण में पुरुषों की भागीदारी के महत्व को उजागर करते हैं।

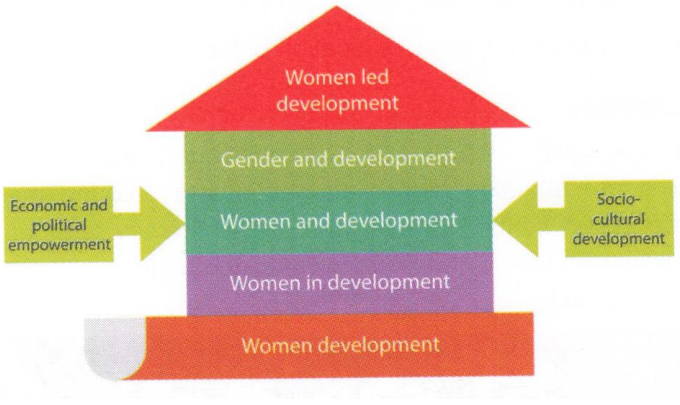

लिंग और लिंग

- लिंग एक जैविक अवधारणा है और सामान्यतः स्त्री और पुरुष के बीच शारीरिक और अन्य जैविक अंतरों को संदर्भित करता है। ये अंतर गर्भधारण के समय निर्धारित होते हैं और गर्भ में तथा बचपन और किशोरावस्था के दौरान विकसित होते हैं।
- हालाँकि, लिंग एक सामाजिक अवधारणा है। यह उन सामाजिक और सांस्कृतिक अंतरों को संदर्भित करता है जो समाज लोगों को उनके लिंग के आधार पर प्रदान करता है। एक व्यक्ति स्त्री या पुरुष के रूप में कैसे सोचता और व्यवहार करता है, यह जीव विज्ञान द्वारा निर्धारित नहीं है, बल्कि यह इस बात का परिणाम है कि समाज उस व्यक्ति से उसके लिंग के आधार पर कैसे सोचने और व्यवहार करने की अपेक्षा करता है।

महिलाओं के लिए वैश्विक वकालत

- महिलाओं के लिए वैश्विक वकालत मूलतः महिलाओं के सामने आने वाले मुद्दों को व्यापक आवाज देने के लिए अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा किए गए प्रयासों को संदर्भित करती है।

संयुक्त राष्ट्र

- महिलाओं के विरुद्ध हिंसा समाप्त करने के लिए संयुक्त राष्ट्र ट्रस्ट फंड महिलाओं और लड़कियों के विरुद्ध हिंसा समाप्त करने के प्रयासों को प्राथमिकता देने के लिए वैश्विक आह्वान कर रहा है।

इसका उद्देश्य है:

- महिलाओं और लड़कियों के खिलाफ हिंसा के बारे में जागरूकता बढ़ाना;
- महिलाओं और लड़कियों के विरुद्ध हिंसा को रोकने, उसका समाधान करने और उसे समाप्त करने के लिए नीति और कार्यक्रमों को सूचित करने के लिए सर्वोत्तम प्रथाओं और सीखे गए सबक के ज्ञान को साझा करना;
- महिलाओं और लड़कियों के विरुद्ध हिंसा को रोकने के लिए पहलों को वित्तपोषित करने हेतु स्थायी संसाधन जुटाना;
- कानूनों का प्रभावी कार्यान्वयन सुनिश्चित करें।

विश्व बैंक

- विश्व बैंक ने भी 2014 में "वॉयस एंड एजेंसी: एम्पावरिंग वीमेन एंड गर्ल्स फॉर शेयर्ड प्रॉस्पेरिटी" नामक एक रिपोर्ट जारी करके इस वैश्विक वकालत में योगदान दिया। इस रिपोर्ट के माध्यम से, विश्व बैंक ने दुनिया भर में महिलाओं और लड़कियों के सामने आने वाली चुनौतियों पर आँकड़े और अध्ययन संकलित किए। रिपोर्ट में पाया गया है कि दुनिया भर में महिलाओं की भूमिका को आगे बढ़ाने के लिए शिक्षा महत्वपूर्ण है।

  कम शिक्षा प्राप्त लड़कियों को बाल विवाह, घरेलू हिंसा और गरीबी का अधिक खतरा रहता है, जिससे उन्हें और उनके समुदाय दोनों को नुकसान पहुंचता है।

रिपोर्ट में मुख्य तथ्य इस प्रकार हैं:

- लिंग-आधारित हिंसा दुनिया भर में होती है, और अक्सर महिला के अपने घर में ही होती है। घरेलू हिंसा व्यापक रूप से फैली हुई है।
- कानून या सामाजिक मानदंडों के कारण महिलाओं के लिए कार्य विकल्प प्रतिबंधित हैं।
- प्रजनन और यौन अधिकारों का व्यापक अभाव है, जैसे कि साथी के साथ यौन संबंध बनाने से इंकार करने में असमर्थता।
- विकासशील देशों में किशोरियों के गर्भवती होने की संभावना ज़्यादा होती है। विकासशील देशों में किशोरियों में होने वाली आधी गर्भधारणाएँ दक्षिण एशिया में होती हैं।
- महिलाओं को प्रौद्योगिकी तक उतनी पहुंच नहीं है जितनी उनके पुरुष साथियों को है।
- संपत्ति का स्वामित्व महिलाओं की सामाजिक स्थिति को बढ़ाता है और इस प्रकार उनकी स्वतंत्रता को बढ़ाता है।
- महिला समूह और सामूहिक कार्रवाई सुधार के लिए गति पैदा करती है।

एमडीजी और एसडीजी: महिलाओं के लिए लक्ष्य

- सहस्राब्दि विकास लक्ष्य 3 (एमडीजी 3) के अंतर्गत केवल एक ही लक्ष्य था: 2005 तक प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा में तथा 2015 तक शिक्षा के सभी स्तरों में लैंगिक असमानता को समाप्त करना।
- हालाँकि, सतत विकास लक्ष्य एक अधिक विस्तृत और लक्षित दृष्टिकोण के साथ सामने आया है, जो इस प्रकार है। सतत विकास लक्ष्य 21वीं सदी की दिशा बदलने का प्रयास करते हैं, गरीबी, असमानता और महिलाओं व लड़कियों के विरुद्ध हिंसा जैसी प्रमुख चुनौतियों का समाधान करते हैं।
- सतत विकास लक्ष्य 5: लैंगिक समानता प्राप्त करना तथा सभी महिलाओं और लड़कियों को सशक्त बनाना, के अंतर्गत निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं:
- सभी जगह सभी महिलाओं और लड़कियों के प्रति सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करें।

- सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में सभी महिलाओं और लड़कियों के विरुद्ध सभी प्रकार की हिंसा को समाप्त करना, जिसमें तस्करी, यौन और अन्य प्रकार का शोषण शामिल है।
- बाल विवाह, बाल विवाह और जबरन विवाह तथा महिला जननांग विकृति जैसी सभी हानिकारक प्रथाओं को समाप्त करें।
- सार्वजनिक सेवाओं, बुनियादी ढांचे और सामाजिक सुरक्षा नीतियों के प्रावधान और राष्ट्रीय स्तर पर उपयुक्त घरेलू और पारिवारिक जिम्मेदारी को बढ़ावा देने के माध्यम से अवैतनिक देखभाल और घरेलू काम को मान्यता देना और महत्व देना।
- राजनीतिक, आर्थिक और सार्वजनिक जीवन में निर्णय लेने के सभी स्तरों पर महिलाओं की पूर्ण और प्रभावी भागीदारी और नेतृत्व के लिए समान अवसर सुनिश्चित करना।
- जनसंख्या और विकास पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन और बीजिंग प्लेटफार्म फॉर एक्शन के कार्य कार्यक्रम और उनके समीक्षा सम्मेलनों के परिणाम दस्तावेजों के अनुसार सहमति के अनुसार यौन और प्रजनन स्वास्थ्य और प्रजनन अधिकारों तक सार्वभौमिक पहुंच सुनिश्चित करना।
- राष्ट्रीय कानूनों के अनुसार महिलाओं को आर्थिक संसाधनों पर समान अधिकार देने के साथ-साथ भूमि और अन्य प्रकार की संपत्ति, वित्तीय सेवाओं, उत्तराधिकार और प्राकृतिक संसाधनों पर स्वामित्व और नियंत्रण तक पहुंच प्रदान करने के लिए सुधार करना।
- महिलाओं के सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए सक्षम प्रौद्योगिकी, विशेष रूप से सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के उपयोग को बढ़ाना।
- सभी स्तरों पर लैंगिक समानता और सभी महिलाओं एवं लड़कियों के सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए ठोस नीतियों और लागू करने योग्य कानूनों को अपनाना और उन्हें मजबूत बनाना।

स्वास्थ्य

- अस्पताल में भर्ती और रिकॉर्ड पर किए गए अध्ययनों से पता चला है कि पुरुषों और लड़कों को महिलाओं और लड़कियों की तुलना में ज़्यादा चिकित्सा देखभाल मिलती है। ऐसा कहा जाता है कि पुरुषों और लड़कों की तुलना में महिलाओं और लड़कियों को अस्वस्थता के बहुत बाद के चरणों में अस्पताल ले जाया जाता है।

मातृ मृत्यु अनुपात

- मातृ मृत्यु अनुपात (एमएमआर) को गर्भावस्था के दौरान या गर्भावस्था समाप्त होने के 42 दिनों के भीतर गर्भावस्था से संबंधित या उससे बढ़ी किसी भी वजह से महिला की मृत्यु के रूप में परिभाषित किया जाता है। इसकी गणना किसी निश्चित अवधि के दौरान प्रति 1 लाख जीवित जन्मों पर मातृ मृत्यु की संख्या के रूप में की जाती है।
- एमडीजी 5 का लक्ष्य 1990 और 2015 के बीच मातृ मृत्यु दर (एमएमआर) को तीन-चौथाई तक कम करना था। इसका मतलब है कि 1990 में एमएमआर 560 से घटकर 2015 में 140 हो जाएगा। हालाँकि, भारत में एमएमआर 167 (2015) पर है। सतत विकास लक्ष्य (एसडीजी) का लक्ष्य कहीं अधिक महत्वाकांक्षी है क्योंकि इसका लक्ष्य 2030 तक वैश्विक एमएमआर को 70 से कम करना है।

एक विश्लेषण

- लैंसेट की एक हालिया वैश्विक रिपोर्ट के अनुसार, 2015 तक दुनिया भर में होने वाली मातृ मृत्यु में भारत का योगदान 15% है। इस रिपोर्ट के अनुसार, 1990 के बाद से वैश्विक मातृ मृत्यु दर लगभग आधी हो गई है, फिर भी 2015 में एक-तिहाई मातृ मृत्यु केवल भारत और नाइजीरिया में हुई। भारत में उच्च मातृ मृत्यु दर के लिए कई सामाजिक-जनसांख्यिकीय कारक ज़िम्मेदार हैं, जिनमें शामिल हैं:
- संस्थागत प्रसव का अभाव
- महिलाओं के लिए प्रसवपूर्व देखभाल का अभाव

- अपर्याप्त प्रसवोत्तर देखभाल
- महिलाओं में स्वास्थ्य जागरूकता का अभाव
- स्वास्थ्य सेवाओं के स्थान के बारे में जागरूकता का अभाव

साक्षरता

- स्वतंत्रता के बाद की अवधि में युवा महिलाएँ और लड़कियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही हैं और पुरुष-प्रधान क्षेत्रों में प्रवेश कर रही हैं। हालाँकि, समग्र साक्षरता दर और सापेक्ष साक्षरता दर पुरुष साक्षरता दर की तुलना में कम है।
- 2011 की जनगणना के अनुसार, महिला साक्षरता दर 65.46% है, जबकि पुरुष साक्षरता दर 80% से अधिक है। साक्षरता का अंतर निश्चित रूप से कम हो रहा है, लेकिन यह अभी भी उच्च स्तर पर है। इसके लिए जिम्मेदार विभिन्न कारक निम्नलिखित हैं:
- लड़कियों में स्कूल छोड़ने की दर अधिक है।
- परिवारों में लड़कियों की अपेक्षा लड़कों की शिक्षा को प्राथमिकता दी जाती है।
- भारत में बाल विवाह पर प्रतिबंध लगाने वाले कानूनों के बावजूद इसका प्रचलन जारी है।
- स्कूलों में बालिकाओं के लिए अलग शौचालय जैसी सुविधाओं का अभाव माता-पिता और परिवारों को उन्हें स्कूल भेजने से रोकता है।
- महिला शिक्षा तथा परिवार और समाज के लिए इसके लाभों के बारे में जागरूकता का अभाव।

महिलाओं के लिए सरकारी योजनाएँ

महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के अनुसार, महिला सशक्तिकरण के लिए सरकार द्वारा निम्नलिखित योजनाएं चलाई जा रही हैं:

लिंग बजट

- जेंडर बजट महिलाओं के लिए अलग से बजट नहीं होता। जेंडर बजट इस बात पर ध्यान देते हैं कि खर्च का पुरुषों और महिलाओं पर क्या प्रभाव पड़ता है और क्या बजट महिलाओं और पुरुषों दोनों की ज़रूरतों को पर्याप्त रूप से पूरा करता है या नहीं।
- पहला जेंडर बजट विवरण 2005-06 के केंद्रीय बजट में प्रकाशित हुआ था। भारत के दस राज्यों ने जेंडर बजटिंग लागू की है, लेकिन विभिन्न योजनाओं के लिए एक मानकीकृत नामकरण की कमी के कारण उन्हें दोहराना या उनका मूल्यांकन करना मुश्किल हो गया है।

Beti Bachao Beti Padhao

- यह योजना महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय तथा मानव संसाधन विकास मंत्रालय की संयुक्त पहल है, जिसके निम्नलिखित उद्देश्य हैं:
- लिंग पक्षपातपूर्ण लिंग चयनात्मक उन्मूलन को रोकें।
- बालिकाओं के अस्तित्व और संरक्षण को सुनिश्चित करना।
- बालिकाओं की शिक्षा सुनिश्चित करें।
- यह पुस्तक सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त मानसिकता और गहरी जड़ें जमाए हुए पितृसत्ता को चुनौती देने पर केंद्रित है।
- इस योजना का उद्देश्य (पीसी और पीएनडीटी) अधिनियम के प्रवर्तन, जागरूकता और वकालत अभियान और चुनिंदा 100 जिलों में बहु-क्षेत्रीय कार्रवाई के माध्यम से बाल लिंग अनुपात के स्तर में सुधार करना है, जहां बाल लिंग अनुपात (सीएसआर) कम है।

Sukanya Samridhi Yojana

- बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना के साथ, सरकार ने "सुकन्या समृद्धि खाता" कार्यक्रम भी शुरू किया। यह योजना महिला एवं बाल विकास मंत्रालय और वित्त मंत्रालय की एक संयुक्त पहल है।

- यह एक छोटी बचत योजना है जो माता-पिता को अपनी बालिका के नाम पर खाता खोलने तथा उसके कल्याण के लिए निर्धारित सीमा तक अपनी अधिकतम बचत जमा करने तथा उच्च शिक्षा व्यय की आवश्यकता को पूरा करने के लिए प्रेरित करती है।

Janani Suraksha Yojana

- 2005 में शुरू की गई इस योजना का उद्देश्य संस्थागत प्रसव को बढ़ावा देकर देश में नवजात और मातृ मृत्यु दर को कम करना है। यह राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के तहत एक सुरक्षित मातृत्व हस्तक्षेप है।
- इससे अंततः शिशु मृत्यु दर (आईएमआर) और शिशु मृत्यु दर (एमएमआर) की उच्च दरों में भी कमी आएगी।

उज्ज्वला

- यह योजना महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा संचालित की जा रही है। यह मानव तस्करी की रोकथाम और मानव तस्करी एवं व्यावसायिक यौन शोषण के पीड़ितों के बचाव, पुनर्वास और पुनर्एकीकरण के लिए एक व्यापक योजना है।
- योजना के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पुनर्वास केन्द्र स्थापित किए गए हैं, जिन्हें बुनियादी सुविधाएं और आश्रय प्रदान करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है।

किशोरियों के सशक्तिकरण के लिए राजीव गांधी योजना

- यह एक केन्द्र प्रायोजित योजना है जिसका उद्देश्य किशोरियों का सर्वांगीण विकास करना है।
- वर्ष 2010-11 में शुरू की गई इस योजना का उद्देश्य लड़कियों के स्वास्थ्य और पोषण की स्थिति में सुधार लाकर उन्हें 'आत्मनिर्भर' बनाना, स्वास्थ्य, स्वच्छता, पोषण, किशोर प्रजनन और यौन स्वास्थ्य, परिवार और बाल देखभाल के बारे में जागरूकता को बढ़ावा देना और मार्गदर्शन और परामर्श तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण जैसे विभिन्न हस्तक्षेपों के माध्यम से सार्वजनिक सेवाओं तक उनकी पहुंच को सुगम बनाना है।

स्वाधार

- इस योजना का उद्देश्य कठिन परिस्थितियों की शिकार महिलाओं के लिए एक सहायक संस्थागत ढाँचा प्रदान करना है ताकि वे सम्मान और विश्वास के साथ अपना जीवन जी सकें। इस योजना का उद्देश्य ऐसी महिलाओं को आश्रय, भोजन, वस्त्र, स्वास्थ्य के साथ-साथ आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करना है।

महिलाओं के लिए प्रशिक्षण और रोजगार कार्यक्रम को समर्थन (STEP)

- भारत सरकार ने 1986-87 में महिलाओं के स्व-रोजगार और वेतनभोगी रोजगार के लिए कौशल उन्नयन के उद्देश्य से यह योजना शुरू की थी। इसके लक्षित समूह में हाशिए पर रहने वाली, साधनहीन ग्रामीण महिलाएँ और शहरी गरीब शामिल हैं। धनराशि सीधे विभिन्न गैर-सरकारी संगठनों को जारी की जाती है, न कि राज्य सरकारों को।

Mahila Shakti Kendras (MSK)

- भारत सरकार ने सामुदायिक भागीदारी के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने तथा ऐसा वातावरण बनाने के लिए महिला शक्ति केंद्र योजना शुरू की है, जिसमें वे अपनी पूरी क्षमता का उपयोग कर सकें।
- यह ग्रामीण महिलाओं को उनके अधिकारों का लाभ उठाने के लिए सरकार से संपर्क करने के लिए एक इंटरफेस प्रदान करेगा तथा प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण के माध्यम से उन्हें सशक्त भी बनाएगा।

महिला पुलिस स्वयंसेवक

- यह योजना महिला एवं बाल विकास मंत्रालय तथा गृह मंत्रालय की संयुक्त पहल है।
- इसमें पुलिस प्राधिकारियों और गांवों में स्थानीय समुदायों के बीच पुलिस स्वयंसेवकों के माध्यम से संपर्क स्थापित करने की परिकल्पना की गई है, जो इस उद्देश्य के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित महिलाएं होंगी।

Pradhan Mantri Matritva Vandana Yojana

- महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के अंतर्गत, केंद्र सरकार गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं के लिए प्रधानमंत्री मातृत्व वंदना योजना (पीएमएमवीवाई) नामक एक केंद्र प्रायोजित योजना को क्रियान्वित कर रही है, जिसे पहले इंदिरा गांधी मातृत्व सहयोग योजना (आईजीएमएसवाई) के रूप में जाना जाता था। इसका उद्देश्य

गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माताओं को नकद प्रोत्साहन प्रदान करके उनके स्वास्थ्य और पोषण की स्थिति में सुधार करके उन्हें बेहतर वातावरण प्रदान करना है।

- वर्तमान में, लाभार्थियों को बैंक खातों या डाकघर खातों के माध्यम से दो किस्तों में 6000 रुपये का भुगतान किया जाता है। सभी सरकारी/सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (केंद्र और राज्य) के कर्मचारियों को इस योजना से बाहर रखा गया है क्योंकि वे सवेतन मातृत्व अवकाश के हकदार हैं।

आलोचनात्मक मूल्यांकन

एक ऐसा देश जहां कन्या भ्रूण हत्या अभी भी उच्च स्तर पर है, जो कि निम्न बाल लिंग अनुपात (सीएसआर) के स्तर से स्पष्ट है, एक निराशाजनक कहानी बताता है कि विकास योजनाओं की उपस्थिति के बावजूद, भारत एक सामंजस्यपूर्ण और समृद्ध समाज बनाने में बहुत पीछे है।

- **अकुशल कार्यान्वयन:** सरकार कार्यान्वयन के स्तर पर विफल रही है। अकुशलता के कारणों में अनुचित निगरानी, जवाबदेही की कमी, भ्रष्टाचार और प्रोत्साहनों का गलत संरेखण शामिल हो सकता है। उदाहरण के लिए, बिहार में एकीकृत बाल विकास योजना, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और ओडिशा में मनरेगा और मध्य प्रदेश में मिड-डे मील योजना विफल रही।
- **निगरानी:** अनेक योजनाओं के पारित होने के बावजूद, भारत का बाल लिंग अनुपात 1991 से बहुत अधिक गिर गया है।
- 2008 में, संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार ने धन लक्ष्मी योजना शुरू की, जो कि कई ऐसी ही सशर्त नकद हस्तांतरण पहलों में से एक है, जिसे देश भर में राज्य सरकारें अभी भी बाल लिंग अनुपात में सुधार के लिए चला रही हैं।
- अधिकांश अन्य योजनाओं की तरह, इसके कार्यान्वयन के दौरान जमीनी स्तर पर निगरानी का अभाव रहा, तथा यह विशेष रूप से प्रभावी नहीं रही।
- **नौकरशाही और भ्रष्टाचार:** महिला सशक्तिकरण योजनाओं की कई लाभार्थियों ने नकद प्रोत्साहन राशि प्राप्त करने में नौकरशाही बाधाओं की शिकायत की। गरीब परिवारों को पंजीकरण और आवश्यक प्रमाण पत्र प्राप्त करने में कठिनाई हुई।
- **योजना निर्माण:** योजनाओं और नीतियों के निर्माण की वर्तमान प्रक्रिया में यह एक और बड़ी कमी है क्योंकि नीति/योजना निर्माण में महिलाओं को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं दिया जाता है। संसद में महिलाओं के कम प्रतिनिधित्व पर हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं।
- **जागरूकता का अभाव:** योजनाओं के लाभार्थी आमतौर पर 108 एम्बुलेंस सेवा और विशेष पोषण पूरक कार्यक्रम जैसी योजनाओं से अनभिज्ञ रहते हैं। केवल 5% महिलाओं ने ही प्रसव के लिए स्वास्थ्य केंद्र जाने के लिए 108 एम्बुलेंस सेवा का उपयोग किया था।

Number Of Janani Suraksha Yojana Beneficiaries: 2005-06 To 2011 -12

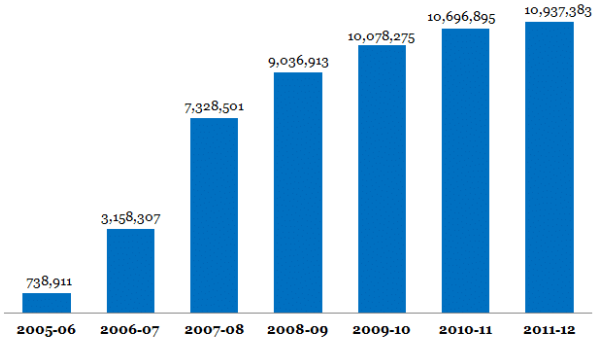

Source: Lok Sabha

जननी सुरक्षा योजना (जेएसवाई) की सफलता

- हालाँकि, योजना के क्रियान्वयन की कहानी इतनी निराशाजनक नहीं है, जैसा कि जननी सुरक्षा योजना की सफलता से पता चलता है। एनएसएसओ के 60वें और 71वें दौर के आंकड़ों के विश्लेषण के आधार पर, जेएसवाई ने 2004 से 2014 के बीच सरकारी अस्पतालों में प्रसव कराने वाली महिलाओं की संख्या में 22% की वृद्धि दर्ज की।

- जननी सुरक्षा योजना ने लाभार्थियों में मातृ स्वास्थ्य (प्रसवपूर्व और प्रसवपूर्व दोनों) और नवजात शिशु की देखभाल के बारे में जागरूकता बढ़ाई है। उदाहरण के लिए, 87% लाभार्थियों को नियमित प्रसवपूर्व जाँचों के बारे में जानकारी

थी और 40% लाभार्थियों (गैर-लाभार्थियों के 32% की तुलना में) को सुरक्षित प्रसव के लिए आवश्यक तैयारियों के बारे में बेहतर जानकारी थी।

संभावित उपाय

- योजनाओं को स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार तैयार किया जा सकता है। केंद्र और राज्य सरकारों के बीच बेहतर समन्वय की आवश्यकता है और कुछ राज्यों में अनुकूलित नीतियाँ एकरूप नीतियों की तुलना में बेहतर काम कर सकती हैं। किसी नीति या योजना की पारदर्शिता, गुणवत्ता और प्रभावशीलता में सुधार के लिए सार्वजनिक नीति तैयार करने में निजी संस्थाओं, समुदाय, नागरिक समाज, गैर सरकारी संगठनों और सरकार के बीच बेहतर समन्वय की आवश्यकता है।

महिला संगठन

स्वयं सहायता समूह (एसएचजी)

- स्वयं सहायता समूह (SHG) एक लोकतांत्रिक संस्था है जो 'एक सबके लिए और सब एक के लिए' के सिद्धांत पर काम करती है। महिला स्वयं सहायता समूहों की अवधारणा 30 साल पहले 1980 के दशक में ग्रामीण महिलाओं की सुरक्षा के उद्देश्य से शुरू हुई थी। महिला स्वयं सहायता समूह ऐसे गठबंधन हैं जहाँ महिलाएँ बेहतर भविष्य के लिए अपने व्यक्तिगत और व्यावसायिक लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु समर्थन, शिक्षा, प्रोत्साहन और वित्तीय सहायता के माध्यम से एक-दूसरे को सशक्त बनाती हैं। दूसरे शब्दों में, ये 'महिलाओं के लिए, महिलाओं द्वारा और महिलाओं के लिए' हैं।
- इसमें आम तौर पर गरीब ग्रामीण या आदिवासी महिलाएँ शामिल होती हैं जो एक वित्तीय बचत सहकारी समिति बनाती हैं और जिन्हें मुख्यतः राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठनों और सामाजिक कार्य पहलों से सहायता मिलती है। प्रत्येक सदस्य एक छोटा सा मासिक या द्वि-साप्ताहिक शुल्क जमा करता है जिसे सदस्यों को ऋण के रूप में उपयोग करने के लिए अलग रखा जाता है।

स्वयं सहायता समूह अपने उन सदस्यों के लिए आर्थिक विकास को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं जो पहले गरीबी के चक्र में फंसे हुए थे।

स्वयं सहायता समूहों के लाभ

- **उद्यमिता:** झारखंड और छत्तीसगढ़ के स्वयं सहायता समूहों का विश्लेषण भारत में परियोजनाएं महिलाओं को बाजार व्यापार में भाग लेने, उद्यमी बनने और आजीविका कमाने की अनुमति देकर उनके बीच वित्तीय स्वतंत्रता को बढ़ावा देने में स्वयं सहायता समूहों की क्षमताओं को प्रदर्शित करती हैं।
- **राजनीतिक भागीदारी** : हिमालय में आजीविका सुधार परियोजना के अनुसार, महिला स्वयं सहायता समूहों के सदस्यों को क्षेत्र की 669 स्थानीय सरकारों में से 170 का प्रमुख चुना गया।
- **स्वास्थ्य देखभाल:** इसके अलावा, स्वयं सहायता समूह गरीब ग्रामीण महिलाओं को जीवन रक्षक स्वास्थ्य देखभाल प्राप्त करने में सहायता करने में एक अपरिहार्य भूमिका निभाते हैं।
- **शिक्षा और जागरूकता:** स्वयं सहायता समूह महिलाओं को मातृ, नवजात और शिशु स्वास्थ्य के बारे में भी शिक्षित करते हैं। इसके अलावा, बड़ी संख्या में महिलाएँ गाँव के पोषण दिवसों में भाग लेती हैं और अपने बच्चों का समय पर टीकाकरण सुनिश्चित करती हैं। स्वयं सहायता समूह

महिलाओं को परिवार नियोजन के लाभों के बारे में शिक्षित करते हैं, उन्हें सामाजिक बाधाओं को दूर करने और गर्भधारण के बीच अंतराल बनाए रखने में मदद करते हैं।

- **सामुदायिक विकास:** महिलाओं की संभावनाओं को बढ़ाने के अलावा, स्वयं सहायता समूह धन, संसाधनों और तकनीकी सहायता के वितरण के माध्यम से सामुदायिक विकास को भी बढ़ावा देते हैं।

ट्रांसजेंडर

- ट्रांसजेंडर का शाब्दिक अर्थ है 'लिंग से परे'। एक ट्रांसजेंडर या ट्रांस-आइडेंटिफाइड व्यक्ति वह व्यक्ति होता है जिसकी लिंग पहचान, बाहरी रूप या लिंग अभिव्यक्ति सांस्कृतिक रूप से परिभाषित लिंग श्रेणियों से परे होती है। मानव जीवन की कहानी शुरू से ही ट्रांसजेंडर लोग हर संस्कृति, जाति और वर्ग में मौजूद रहे हैं।
- भारत में ट्रांसजेंडर समुदाय, जिसमें हिजड़े (जैविक पुरुष लेकिन पुरुषत्व को अस्वीकार करते हैं), हिजड़े (बधिया किया हुआ पुरुष), कोठी (स्वयं को पुरुष के रूप में प्रस्तुत करते हैं), अरावानी (पुरुष शरीर में लिपटी महिला), जोगप्पा (देवी रेणुखा देवी की सेविका के रूप में सेवा करते हैं), शिव-शक्ति (पुरुष लेकिन स्त्रीलिंग भाव रखते हैं) आदि शामिल हैं, का इतिहास उथल-पुथल भरा रहा है। देवत्व से लेकर धिक्कार तक, वे उन लोगों द्वारा पूजनीय और भयभीत रहे हैं जो उनके बारे में बहुत कम जानते थे। हिजड़े (या हिजड़े, जैसा कि उन्हें अक्सर कहा जाता है), एक विशिष्ट पहचान जो मुख्य रूप से उपमहाद्वीपीय क्षेत्र में पाई जाती है, 9वीं शताब्दी ईसा पूर्व से अस्तित्व में है।

इतिहास

- वेदों (1500 ईसा पूर्व - 500 ईसा पूर्व) में व्यक्तियों को उनकी प्रकृति के अनुसार तीन अलग-अलग श्रेणियों में से एक के रूप में वर्णित किया गया है। इन्हें कामसूत्र (चौथी शताब्दी ईस्वी) और अन्यत्र पुंप्रकृति-प्रकृति (स्त्री-प्रकृति) और तृतीयप्रकृति (तृतीय प्रकृति) के रूप में भी वर्णित किया गया है। विभिन्न ग्रंथों से पता चलता है कि पूर्व-आधुनिक भारत में तृतीय लिंगी व्यक्ति सुप्रसिद्ध थे, और इनमें पुरुष शरीर वाले या स्त्री शरीर वाले व्यक्ति के साथ-साथ अंतरलैंगिक भी शामिल थे, और इन्हें अक्सर बचपन से ही पहचाना जा सकता था। प्राचीन हिंदू विधि, चिकित्सा, भाषा विज्ञान और ज्योतिष में भी तृतीय लिंग की चर्चा की गई है।
- हिंदू कानून का आधारभूत कार्य, मनु स्मृति (200 ईसा पूर्व - 200 ईस्वी) तीन लिंगों की जैविक उत्पत्ति की व्याख्या करता है: "अधिक मात्रा में पुरुष वीर्य से एक पुरुष संतान उत्पन्न होती है, और अधिक मात्रा में महिला वीर्य से एक महिला संतान उत्पन्न होती है; यदि दोनों बराबर हैं, तो तृतीय लिंग संतान या लड़का और लड़की जुड़वां पैदा होते हैं; यदि कोई भी कमजोर है या मात्रा में कमी है, तो गर्भधारण विफल हो जाता है। भारतीय भाषाविद् पतंजलि की संस्कृत व्याकरण पर कृति, महाभय (200 ईसा पूर्व), में कहा गया है कि संस्कृत के तीन व्याकरणिक लिंग तीन प्राकृतिक लिंगों से उत्पन्न हुए हैं। सबसे प्राचीन तमिल व्याकरण, तोल्काप्पियम (तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व) भी उभयलिंगियों को तीसरे "नपुंसक" लिंग (अपुरूष पुरुषों की स्त्रीलिंग श्रेणी के अलावा) के रूप में संदर्भित करता है। वैदिक ज्योतिष में, नौ ग्रहों को तीन लिंगों में से प्रत्येक को सौंपा गया है; तीसरा लिंग, तृतीय-प्रकृति, बुध, शनि और (विशेष रूप से) केतु से जुड़ा है। पुराणों में, संगीत और नृत्य के तीन प्रकार के देवों का भी उल्लेख मिलता है: अप्सरा (महिला), गंधर्व (पुरुष) और किन्नर (नपुंसक)।

विकास

प्राचीन काल

- प्राचीन भारत के लेखन में "तृतीय लिंग" या पुरुष या महिला लिंग की पुष्टि न करने वाले व्यक्तियों की मान्यता के ऐतिहासिक प्रमाण थे। "तृतीयप्रकृति" या "नपुंसक" की अवधारणा हिंदू पौराणिक कथाओं, लोककथाओं, महाकाव्य और प्रारंभिक वैदिक और पौराणिक साहित्य का एक अभिन्न अंग रही है। "नपुंसक" शब्द का उपयोग प्रजनन क्षमता की अनुपस्थिति को दर्शाने के लिए किया गया था, जो पुरुष और महिला चिह्नों से अंतर को दर्शाता है। इस प्रकार, कुछ शुरुआती ग्रंथों में कामुकता और तीसरे लिंग के विचार के मुद्दों पर विस्तार से चर्चा की गई, जो

कि एक स्थापित विचार था। वास्तव में, जैन ग्रंथ में "मनोवैज्ञानिक सेक्स" की अवधारणा का भी उल्लेख है, जो किसी व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक बनावट पर जोर देता है, जो उसकी यौन विशेषताओं से अलग है।

मध्यकाल

- इस्लामी जगत के शाही दरबारों में, विशेष रूप से ओटोमन साम्राज्यों और मध्यकालीन भारत में मुगल शासन के दौरान, हिजड़ों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे राजनीतिक सलाहकार, प्रशासक, सेनापति और हरम के संरक्षक जैसे प्रतिष्ठित पदों पर पहुँचे। हिजड़ों को सभी स्थानों और आबादी के सभी वर्गों तक निर्बाध पहुँच प्राप्त थी, जिससे मुगल काल में साम्राज्य निर्माण की राजनीति में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही।

ब्रिटिश काल

- भारतीय उपमहाद्वीप में ब्रिटिश काल के आरंभ में, हिजड़े, औपचारिक रूप से हिजड़ा समुदाय की श्रेणी में शामिल होकर, कुछ भारतीय राज्यों से संरक्षण और लाभ प्राप्त करते थे। इसके अलावा, इन लाभों में भूमि का प्रावधान, भोजन का अधिकार और एक निश्चित क्षेत्र में कृषि परिवारों से छोटी राशि प्राप्त करना शामिल था, जिन्हें अंततः ब्रिटिश कानून के माध्यम से समाप्त कर दिया गया क्योंकि भूमि रक्त संबंधों के माध्यम से विरासत में नहीं मिलती थी।

औपनिवेशिक शासन के तहत अपराधीकरण

- 18वीं सदी से औपनिवेशिक शासन के आगमन के साथ, स्थिति में भारी बदलाव आया। 19वीं सदी के उत्तरार्ध में, ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन ने हिजड़ा समुदाय को अपराधी घोषित करने और उन्हें नागरिक अधिकारों से वंचित करने का पुरज़ोर प्रयास किया।
- औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा भारत के विभिन्न भागों में हिजड़ों को एक अलग जाति या जनजाति माना जाता था। आपराधिक जनजाति अधिनियम, 1871 में उन सभी हिजड़ों को शामिल किया गया था जो बच्चों का अपहरण और बधियाकरण करने में शामिल थे और सार्वजनिक स्थानों पर महिलाओं की तरह कपड़े पहनकर नृत्य करते थे। ऐसी गतिविधियों के लिए दो साल तक की कैद और जुर्माना या दोनों का प्रावधान था। विभाजन-पूर्व का यह इतिहास आज के समय में हिजड़ों की विकट परिस्थितियों को प्रभावित करता है।

स्वतंत्रता के बाद का काल

- हालाँकि, इस अधिनियम को 1952 में निरस्त कर दिया गया था, लेकिन इसकी विरासत आज भी कायम है और कई स्थानीय कानूनों में कुछ जनजातियों, जिनमें हिजड़े भी शामिल हैं, के प्रति पूर्वाग्रही रवैया झलकता है। लगभग डेढ़ दशक पहले, 2012 में कर्नाटक पुलिस अधिनियम में संशोधन किया गया था ताकि "बच्चों के अपहरण, अप्राकृतिक अपराधों और इसी तरह के अपराधों में लिप्त हिजड़ों के पंजीकरण और निगरानी का प्रावधान किया जा सके" (धारा 36ए), आपराधिक जनजाति अधिनियम, 1871 की तरह।

समकालीन काल

- भारतीय जनगणना 2011 के अनुसार, देश में लगभग 4.9 लाख ट्रांसजेंडर हैं। जनगणना द्वारा पहचाने गए कुल ट्रांसजेंडरों में से लगभग 55,000 0-6 आयु वर्ग के हैं। हालाँकि, ट्रांसजेंडर कार्यकर्ताओं का अनुमान है कि यह संख्या छह से सात गुना अधिक है। तृतीय लिंग के रूप में पहचानी गई 66% से अधिक आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है, जो कि गांवों में रहने वाली कुल आबादी के 69% के लगभग बराबर है। जनगणना के आंकड़ों से यह भी पता चलता है कि इस समुदाय में साक्षरता का स्तर कम है, केवल 46 प्रतिशत ट्रांसजेंडर साक्षर हैं, जबकि सामान्य आबादी में साक्षरता दर 74 प्रतिशत है।
- ट्रांसजेंडर समुदाय में काम करने वालों का अनुपात भी सामान्य आबादी के 46% की तुलना में कम (38%) है। कुल कामकाजी आबादी का केवल 65% ही मुख्य श्रमिक हैं - वे लोग जिन्हें साल में छह महीने से ज़्यादा काम मिलता है - जबकि सामान्य आबादी में यह अनुपात 75% है।

चुनौतियाँ और स्थिति

चुनौतियां

आजकल ट्रांसजेंडरों को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जिनकी चर्चा नीचे की गई है:

- **सामाजिक कलंक:** इस समुदाय और इसके सदस्यों को सामाजिक कलंक का सामना करना पड़ता है, जिसकी वजह से शिक्षा और रोज़गार के अवसर उनसे दूर रहे हैं। उनसे जुड़ा यह कलंक इतना व्यापक है कि जब उनकी तलाश की जाती है, तब के अलावा वे शायद ही कभी सार्वजनिक रूप से सामने आते हैं। व्यापक पूर्वाग्रह के कारण हिजड़ों के लिए स्थायी घर ढूँढना अक्सर मुश्किल होता है - और उन्हें अक्सर समाज के हाशिये पर स्थित समुदायों में रहने के लिए मजबूर होना पड़ता है।
- **भेदभाव और उत्पीड़न:** ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को बच्चे के जन्म और नवविवाहित जोड़ों को आशीर्वाद देने के अलावा जीवन के हर क्षेत्र में भेदभाव का सामना करना पड़ता है। उनके साथ होने वाले भेदभाव और उत्पीड़न को भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने नालसा मामले (जिस पर बाद में चर्चा की जाएगी) में मान्यता दी है।
- **रोजगार का अभाव:** सामाजिक कलंक के कारण तथा रोजगार और शिक्षा के अवसरों के अभाव में ट्रांसजेंडरों को अक्सर भीख मांगकर, छोटे-मोटे काम करके और कुछ मामलों में यौन कार्य करके जीवनयापन करने के लिए मजबूर होना पड़ता है।
- **शिक्षा के अवसरों की कमी:** यद्यपि यह समुदाय शिक्षा के अधिकार अधिनियम में परिभाषित "वंचित समूह" के अंतर्गत आता है और आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग (ईडब्ल्यूएस) और वंचित छात्र श्रेणी के तहत प्रवेश के लिए 25 प्रतिशत आरक्षण के लिए पात्र है, लेकिन उन्हें अधिनियम द्वारा अनिवार्य आरक्षित सीटों के तहत प्रवेश नहीं मिलता है।
- **अपराधीकरण:** पुलिस और अन्य प्राधिकारियों द्वारा ट्रांसजेंडरों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 377 के दुरुपयोग के कई उदाहरण सामने आए हैं, जो दो व्यक्तियों के बीच अप्राकृतिक यौन संबंधों को अपराध बनाती है।

स्थिति

भारत में ट्रांसजेंडरों के साथ भेदभाव और खुला तिरस्कार जारी है और उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति संतोषजनक नहीं है। उपर्युक्त चुनौतियाँ भारत में ट्रांसजेंडरों की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति को निर्धारित करती हैं।

- **सामाजिक:** ट्रांसजेंडरों को परिवार और समाज दोनों ही समान रूप से तिरस्कृत करते हैं। उन्हें अक्सर सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में प्रभावी रूप से भाग लेने से वंचित रखा जाता है। इसके अलावा, उनकी सार्वजनिक उपस्थिति भी सीमित होती है।
- **राजनीतिक:** हालांकि भारत का संविधान प्रत्येक नागरिक को सार्वजनिक कार्यालयों और कानून बनाने वाली संस्थाओं (केंद्र और राज्य दोनों) में चुने जाने के अधिकार की गारंटी देता है, लेकिन देश के 70 साल के इतिहास में बहुत कम ट्रांसजेंडर व्यक्ति सार्वजनिक कार्यालयों में चुने गए हैं (उदाहरण के लिए शबनम मौसी 1998 से 2003 तक मध्य प्रदेश राज्य विधान सभा की सदस्य चुनी गईं और मधु बाई किन्नर 2015 में छत्तीसगढ़ राज्य के रायगढ़ की मेयर चुनी गईं)।
- **आर्थिक:** ट्रांसजेंडरों की आर्थिक स्थिति अभी भी दयनीय (संतोषजनक से कोसों दूर) बनी हुई है। 2011 की जनगणना के अनुसार, कामकाजी ट्रांसजेंडरों की संख्या सामान्य जनसंख्या से बहुत कम है। अक्सर वे भीख मांगने और अन्य प्रकार के छोटे-मोटे कामों में लगे रहते हैं।
- **शिक्षा:** भारतीय संदर्भ में ट्रांसजेंडरों के लिए कोई औपचारिक शिक्षा प्रचलित नहीं है। प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर नामांकन काफी कम है और स्कूल छोड़ने की दर अभी भी बहुत अधिक है। अगर वे किसी शैक्षणिक संस्थान में नामांकित भी हैं, तो उन्हें हर दिन उत्पीड़न और धमकियों का सामना करना पड़ता है और उन्हें स्कूल छोड़ने के लिए कहा जाता है या वे स्वयं ही पढ़ाई छोड़ देते हैं।

- **स्वास्थ्य:** ट्रांसजेंडरों की स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच सीमित है। उन्हें जबरन यौन कार्य करने के लिए मजबूर किया जाता है, जिससे उन्हें एचआईवी संक्रमण का सबसे ज़्यादा ख़तरा होता है क्योंकि वे असुरक्षित यौन संबंध बनाने के लिए इसलिए राज़ी होते हैं क्योंकि उन्हें अस्वीकृति का डर होता है या वे यौन संबंध के ज़रिए अपने लिंग की पुष्टि करना चाहते हैं। समाज में उन्हें एचआईवी के 'वाहक' के रूप में देखा जाता है।

नालसा मामला

- 15 अप्रैल, 2014 को, सुप्रीम कोर्ट ने भारत में ट्रांसजेंडर लोगों की उपस्थिति को वैध कर दिया, और राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण बनाम भारत संघ, जिसे नालसा मामले के नाम से जाना जाता है, में "तीसरे लिंग" श्रेणी के कानूनी निर्माण की अनुमति दी।
- इसने ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को पुरुष, महिला या 'तीसरे लिंग' के रूप में स्वयं की पहचान करने के अधिकार को मान्यता दी।
- इसने केंद्र से ट्रांसजेंडरों को सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़ा मानने का अनुरोध किया। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि ट्रांसजेंडरों को शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश दिया जाएगा और उन्हें तीसरे लिंग की श्रेणी के आधार पर रोजगार दिया जाएगा। न्यायालय ने "ट्रांसजेंडर" शब्द की व्यापक व्याख्या के बजाय संकीर्ण व्याख्या की, जिसमें समलैंगिक पुरुष, समलैंगिक महिलाएँ, उभयलिंगी और क्रॉस-जेंडर भी शामिल हैं। इस प्रकार, भारत के सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार, इस शब्द में केवल किन्नर शामिल हैं, अन्य वर्ग नहीं।
- सर्वोच्च न्यायालय ने राज्यों और केंद्र को तृतीय लिंग समुदाय के लिए सामाजिक कल्याण योजनाएँ बनाने और सामाजिक कलंक को मिटाने के लिए जन जागरूकता अभियान चलाने का भी निर्देश दिया। इसने राज्यों के लिए विशेष सार्वजनिक शौचालयों का निर्माण और तृतीय लिंग के विशेष चिकित्सा मुद्दों पर ध्यान देने के लिए विभाग स्थापित करना अनिवार्य कर दिया। इसके अलावा, इसने उन्हें समाज का अभिन्न अंग माना और सरकार से उन्हें मुख्यधारा में लाने के लिए कदम उठाने को कहा।
- **विश्लेषण:** हालाँकि इस फैसले ने हिजड़ों को कुछ राजनीतिक और आर्थिक अधिकार प्रदान किए हैं, लेकिन भेदभाव और अज्ञानता अभी भी उनकी आजीविका के लिए खतरा बनी हुई है। इस फैसले ने ट्रांसजेंडरों के लिए सरकारी कदम उठाने और उनके अधिकारों को बढ़ावा देने में मदद की है।

संभावित उपाय

पारिवारिक स्तर पर

- परिवारों को अपने बीच ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के प्रति अपना दृष्टिकोण व्यापक बनाना चाहिए।
- परिवारों को अपने बच्चों के साथ उनकी यौन प्रवृत्ति के आधार पर भेदभाव नहीं करना चाहिए।
- परिवारों को ट्रांसजेंडर बच्चों को शिक्षा के अवसर प्रदान करने चाहिए और जीवन में उनके सभी प्रयासों में उनका समर्थन करना चाहिए।
- ट्रांसजेंडर व्यक्तियों से जुड़े कलंक और पूर्वाग्रहों से लड़ने की प्रक्रिया परिवार के स्तर पर होनी चाहिए।
- परिवारों को सामाजिक दबाव के आगे झुकना नहीं चाहिए और अपने ट्रांसजेंडर बच्चों को त्यागना नहीं चाहिए।

सामाजिक स्तर पर

- समाज का यह कर्तव्य है कि वह एक समावेशी वातावरण का निर्माण करे जहां विभिन्न विचारधाराओं वाले व्यक्ति एक साथ रह सकें।
- समाज को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि ट्रांसजेंडरों को अलग समुदायों में रहने के लिए मजबूर न किया जाए, जैसा कि अक्सर देखा जाता है।
- ट्रांसजेंडरों के साथ भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए और उन्हें समाज के अन्य सदस्यों की तरह सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेने की अनुमति दी जानी चाहिए।
- ट्रांसजेंडरों को धार्मिक एवं अन्य सार्वजनिक स्थानों से वंचित नहीं किया जाना चाहिए।

- लोगों को सार्वजनिक स्थानों पर ट्रांसजेंडरों पर अनुचित ध्यान नहीं देना चाहिए।
- ट्रांसजेंडरों के साथ शारीरिक या मौखिक दुर्व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए। इसके अलावा, उन्हें यौन तृप्ति की वस्तु के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, जिससे बलात्कार जैसी घटनाएँ घटें।
- समाज को लोगों के लिंग भेद के बावजूद मानवता के आधार पर सभी के साथ समान व्यवहार करना चाहिए।
- जनता और समुदाय तक पहुंचने के लिए व्यापक स्तर पर जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए।

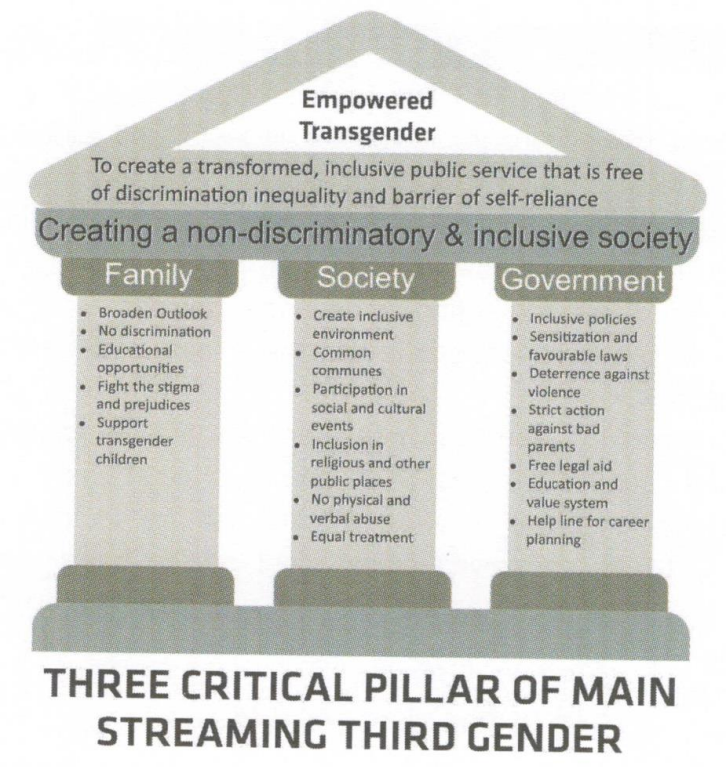

THREE CRITICAL PILLAR OF MAIN STREAMING THIRD GENDER

सरकारी स्तर पर

- सरकार को ट्रांसजेंडरों के लिए समावेशी दृष्टिकोण की योजना बनानी और उसे अपनाना चाहिए। नीतियाँ तो बनाई गई हैं, लेकिन उनका क्रियान्वयन ठीक से नहीं हो रहा है।
- कानूनी और कानून प्रवर्तन प्रणालियों को ट्रांसजेंडर समुदाय के मुद्दों पर सशक्त और संवेदनशील बनाने की आवश्यकता है।
- ट्रांसजेंडर के खिलाफ हिंसा करने वाले लोगों के खिलाफ आपराधिक और अनुशासनात्मक कार्रवाई की जानी चाहिए।
- उन माता-पिता के खिलाफ सख्त कार्रवाई की जानी चाहिए जो अपने बच्चे के जैविक अंतर के कारण उसकी उपेक्षा करते हैं, उसके साथ दुर्व्यवहार करते हैं या उसे छोड़ देते हैं।
- ट्रांसजेंडर समुदाय के लिए जमीनी स्तर पर मुफ्त कानूनी सहायता का प्रावधान सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

- स्कूल और कॉलेजों को ट्रांसजेंडरों को शिक्षा और मूल्य प्रणाली प्रदान करने में सहायक और प्रोत्साहनकारी भूमिका निभाने की आवश्यकता है।
- कैरियर नियोजन एवं मार्गदर्शन, कैरियर अवसरों और ऑनलाइन प्लेसमेंट प्रणाली के लिए हेल्पलाइन की स्थापना को सशक्त बनाया जाना चाहिए।
- उद्यमी या व्यवसायी के रूप में अपना करियर शुरू करने के लिए उदार ऋण सुविधाएं और वित्तीय सहायता सुनिश्चित की जानी चाहिए।
- सभी निजी और सार्वजनिक अस्पतालों और क्लीनिकों में स्वास्थ्य देखभाल से संबंधित अलग-अलग नीतियां बनाई जानी चाहिए और उनका प्रचार किया जाना चाहिए।
- जमीनी स्तर पर छात्रों को जागरूक करने के लिए स्कूल और कॉलेज के पाठ्यक्रम में एक व्यापक यौन-शिक्षा कार्यक्रम शामिल किया जाना चाहिए।

सरकार द्वारा उठाए गए कदम

सर्वोच्च न्यायालय के फैसले और समावेशी समाज की वैश्विक विचारधारा के प्रसार ने विभिन्न सरकारी योजनाओं और उपायों को गति दी है। कुछ योजनाएँ नीचे सूचीबद्ध हैं:

- **मान्यता:** 2009 में, भारत के चुनाव आयोग ने ट्रांसजेंडरों को मतपत्र पर अपना लिंग 'अन्य' चुनने की अनुमति देकर पहला कदम उठाया।
- **सामाजिक सुरक्षा एवं दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग (एसएसईपीडी):** जुलाई 2015 में, ओडिशा ने सामाजिक सुरक्षा एवं दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग (एसएसईपीडी) का गठन करके इस दिशा में एक बड़ा कदम उठाया। यह

विभाग ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के अधिकारों से संबंधित मामलों को देखेगा। इसने ओडिशा में ट्रांसजेंडरों को मान्यता देने और उन्हें तीसरे लिंग के रूप में पहचान देने वाले प्रमाण पत्र प्रदान करने के लिए एक प्रस्ताव का मसौदा तैयार किया है।

- यह ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के कल्याण के लिए केंद्र सरकार द्वारा प्रायोजित पाँच उप-योजनाओं को लागू करेगा। इस योजना के तहत, ट्रांसजेंडर छात्रों को प्री-मैट्रिक और पोस्ट-मैट्रिक छात्रवृत्तियाँ मिलेंगी। ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को कौशल विकास प्रशिक्षण में सहायता प्रदान की जाएगी। अन्य उप-योजनाओं में ट्रांसजेंडर बच्चों के माता-पिता को सहायता का प्रावधान और ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय पेंशन योजना शामिल है।
- **भोजन का अधिकार:** सितंबर 2015 में, ओडिशा सरकार ने राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013 के लाभों को ट्रांसजेंडर व्यक्तियों तक पहुँचाने के लिए कदम उठाए। इसके अलावा, ओडिशा सरकार ने हाल ही में घोषणा की है कि विभिन्न योजनाओं के तहत ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के समान सामाजिक कल्याण लाभ प्रदान किए जाएँगे।
- **पेंशन योजना:** आंध्र प्रदेश सरकार ने राज्य में 18 वर्ष से अधिक आयु के ट्रांसजेंडरों के लिए 1500 रुपये की मासिक पेंशन योजना को मंजूरी दी है।

ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) विधेयक, 2016

केंद्र सरकार ने 2016 में ट्रांसजेंडरों के अधिकारों की रक्षा के लिए लोकसभा में एक विधेयक पेश किया। इस विधेयक की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

- विधेयक में ट्रांसजेंडर व्यक्ति को ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है जो आंशिक रूप से महिला या पुरुष हो; या महिला और पुरुष दोनों का संयोजन हो; या न तो महिला हो और न ही पुरुष। इसके अलावा, व्यक्ति का लिंग जन्म के समय निर्धारित लिंग से मेल नहीं खाना चाहिए, और इसमें ट्रांस-पुरुष, ट्रांस-महिला, इंटरसेक्स भिन्नता वाले व्यक्ति और लिंग-विचित्र व्यक्ति शामिल हैं।
- एक ट्रांसजेंडर व्यक्ति को ट्रांसजेंडर व्यक्ति के रूप में अपनी पहचान को मान्यता देने तथा विधेयक के तहत अधिकारों का उपयोग करने के लिए पहचान प्रमाण पत्र प्राप्त करना होगा।
- यह प्रमाणपत्र जिला मजिस्ट्रेट द्वारा एक स्क्रीनिंग समिति की सिफारिश पर प्रदान किया जाएगा। इस समिति में एक चिकित्सा अधिकारी, एक मनोवैज्ञानिक या मनोचिकित्सक, एक जिला कल्याण अधिकारी, एक सरकारी अधिकारी और एक ट्रांसजेंडर व्यक्ति शामिल होंगे।
- यह विधेयक शिक्षा, रोज़गार और स्वास्थ्य सेवा जैसे क्षेत्रों में ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के साथ भेदभाव को प्रतिबंधित करता है। यह केंद्र और राज्य सरकारों को इन क्षेत्रों में कल्याणकारी योजनाएँ लागू करने का निर्देश देता है।
- किसी ट्रांसजेंडर व्यक्ति को भीख मांगने के लिए मजबूर करना, सार्वजनिक स्थान पर जाने से रोकना, शारीरिक और यौन दुर्व्यवहार आदि जैसे अपराधों के लिए दो वर्ष तक की कैद और जुर्माना हो सकता है।

विश्लेषण

- हालाँकि यह विधेयक ट्रांसजेंडर व्यक्ति के "स्व-अनुभूत" लिंग पहचान के अधिकार को मान्यता देता है, लेकिन इस अधिकार के प्रवर्तन का कोई प्रावधान नहीं करता। एक जिला स्क्रीनिंग समिति ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को मान्यता देने के लिए पहचान प्रमाण पत्र जारी करेगी।
- विधेयक में 'ट्रांसजेंडर व्यक्तियों' की परिभाषा, भारत में अंतर्राष्ट्रीय निकायों और विशेषज्ञों द्वारा मान्यता प्राप्त परिभाषाओं से भिन्न है।
- इसके अलावा, हालाँकि विधेयक में ट्रांसजेंडर व्यक्तियों की परिभाषा में 'ट्रांसट्रांस-महिला', 'अंतरलैंगिक भिन्नताओं' वाले व्यक्ति और 'लिंग-विचित्र' जैसे शब्द शामिल हैं, लेकिन यह उन्हें परिभाषित नहीं करता। विधेयक इस अस्पष्टता को भी स्पष्ट नहीं करता कि वर्तमान में लागू कुछ कानून, जो केवल पुरुष या महिला को लिंग के रूप में मान्यता देते हैं, ट्रांसजेंडर समुदाय के सदस्यों पर कैसे लागू होंगे।

जनसंख्या और संबंधित मुद्दे

- लोग किसी भी देश के बहुत महत्वपूर्ण घटक होते हैं। वे ही उसकी असली संपत्ति होते हैं। वे ही उसके संसाधनों का उपयोग करते हैं और उसकी नीतियाँ तय करते हैं। अंततः एक देश की पहचान उसके लोगों से होती है। इस प्रकार, किसी देश की जनसंख्या किसी विशेष समय में उसमें रहने वाले कुल लोगों की संख्या होती है।
- जन्म और मृत्यु दर तथा बेहतर आय और आजीविका के स्रोतों की तलाश में परिवारों के स्थानांतरण के कारण देश की जनसंख्या निरंतर बदलती रहती है। पिछली आधी सदी में वैश्विक जनसंख्या में तीव्र (लगभग लंबवत) वृद्धि देखी गई है। यही बात भारत के बारे में भी कही जा सकती है, जहाँ चालीस वर्षों (1971 से 2011) में जनसंख्या दोगुनी (548.2 मिलियन से 1210.2 मिलियन) हो गई है और 1951 से लगभग तीन गुनी हो गई है। देश की जनसंख्या में इस तीव्र वृद्धि का लोगों के जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और गरीबी, बेरोजगारी, प्रदूषण आदि जैसी कई समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं।

जनसांख्यिकी

जनसांख्यिकी जनसंख्या का विज्ञान है, जिसकी उत्पत्ति लैटिन शब्द 'डेमोस' से हुई है, जिसका मानव आबादी के आकार, संरचना, विशेषताओं और क्षेत्रीय वितरण तथा उनमें होने वाले परिवर्तनों के मात्रात्मक अध्यय जनसंख्या घटना के अंतर्निहित कारणों या निर्धारकों के अध्ययन से भी संबंधित है। जनसांख्यिकी अध्ययन किसी क्षेत्र की में विभिन्न आबादी को समायोजित करने की क्षमता प्रदान करता है।

जनसंख्या वृद्धि का माल्थुसियन सिद्धांत

- माल्थस के जनसंख्या वृद्धि सिद्धांत को उनके निबंध "जनसंख्या पर निबंध" (1798) में रेखांकित किया गया था। उन्होंने तर्क दिया कि मानव जनसंख्या मानव निर्वाह के साधनों (विशेषकर भोजन, वस्त्र और अन्य कृषि-आधारित उत्पाद) की वृद्धि दर की तुलना में कहीं अधिक तेज़ी से बढ़ती है। इसलिए मानवता हमेशा गरीबी में रहने के लिए अभिशप्त है क्योंकि कृषि उत्पादन की वृद्धि हमेशा जनसंख्या वृद्धि से आगे निकल जाएगी। जहाँ जनसंख्या ज्यामितीय क्रम में बढ़ती है (जैसे, 2, 4, 8, 16, 32 आदि), वहीं कृषि उत्पादन केवल अंकगणितीय क्रम में ही बढ़ सकता है (जैसे, 2, 4, 6, 8, 10 आदि)।
- चूँकि जनसंख्या वृद्धि हमेशा जीवन-निर्वाह संसाधनों के उत्पादन में वृद्धि से ज़्यादा होती है, इसलिए समृद्धि बढ़ाने का एकमात्र तरीका जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करना है। दुर्भाग्य से, मानवता के पास स्वेच्छा से अपनी जनसंख्या वृद्धि को कम करने की सीमित क्षमता है ('निवारक उपायों' जैसे विवाह स्थगित करना या यौन संयम या ब्रह्मचर्य का पालन करना)।
- जनसंख्या वृद्धि हमेशा जीवन निर्वाह संसाधनों के उत्पादन में वृद्धि से आगे निकल जाती है, समृद्धि बढ़ाने का एकमात्र उपाय जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करना है। दुर्भाग्य से, मानवता के पास अपनी जनसंख्या वृद्धि को स्वेच्छा से कम करने की सीमित क्षमता है ('निवारक उपायों' जैसे विवाह स्थगित करना या यौन संयम या ब्रह्मचर्य का पालन करना)।
- इसलिए माल्थस का मानना था कि जनसंख्या वृद्धि पर 'सकारात्मक अंकुश' - अकाल और बीमारियों के रूप में - अपरिहार्य थे, क्योंकि वे खाद्य आपूर्ति और बढ़ती जनसंख्या के बीच असंतुलन से निपटने का प्रकृति का तरीका थे।'
- हालाँकि, यूरोपीय देशों के ऐतिहासिक अनुभव ने इसका खंडन किया है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में जनसंख्या वृद्धि का स्वरूप बदलने लगा और बीसवीं सदी के प्रथम चतुर्थांश के अंत तक ये परिवर्तन काफी नाटकीय हो गए। जन्म दर में गिरावट आई और महामारी संबंधी बीमारियों के प्रकोप पर नियंत्रण पाया जा रहा था। माल्थस

की भविष्यवाणियाँ झूठी साबित हुईं क्योंकि जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के बावजूद खाद्य उत्पादन और जीवन स्तर दोनों में वृद्धि जारी रही। इसी प्रकार, वह यह कल्पना करने में भी विफल रहे कि सरकार जनसंख्या नियंत्रण के लिए लोगों को गर्भनिरोधक अपनाने के लिए प्रोत्साहित करेगी।

जनसांख्यिकीय संक्रमण का सिद्धांत

- इससे पता चलता है कि जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास के समग्र स्तरों से जुड़ी है और प्रत्येक समाज विकास-संबंधित जनसंख्या वृद्धि के एक विशिष्ट पैटर्न का अनुसरण करता है। जनसंख्या वृद्धि के तीन मूल चरण हैं। पहला चरण अविकसित और तकनीकी रूप से पिछड़े समाज में कम जनसंख्या वृद्धि का चरण है। वृद्धि दर कम होती है क्योंकि मृत्यु दर और जन्म दर दोनों बहुत अधिक होती हैं, जिससे दोनों के बीच का अंतर (या शुद्ध वृद्धि दर) कम होता है।
- तीसरा (और अंतिम) चरण भी विकसित समाज में कम वृद्धि का चरण है जहाँ मृत्यु दर और जन्म दर दोनों में काफी कमी आ गई है और उनके बीच का अंतर भी बहुत कम है। इन दोनों चरणों के बीच पिछड़ेपन से उन्नत अवस्था की ओर संक्रमणकालीन चरण होता है, और इस चरण की विशेषता जनसंख्या वृद्धि की अत्यधिक उच्च दर होती है।
- यह 'जनसंख्या विस्फोट' इसलिए होता है क्योंकि रोग नियंत्रण, जन स्वास्थ्य और बेहतर पोषण के उन्नत तरीकों से मृत्यु दर में अपेक्षाकृत तेज़ी से कमी लाई जाती है। हालाँकि, समाज को बदलाव के साथ तालमेल बिठाने और अपने प्रजनन व्यवहार (जो गरीबी और उच्च मृत्यु दर के दौर में विकसित हुआ था) को सापेक्ष समृद्धि और लंबी जीवन अवधि की नई स्थिति के अनुकूल ढालने में ज़्यादा समय लगता है। इस तरह का संक्रमण उन्नीसवीं सदी के अंत और बीसवीं सदी के शुरुआती दौर में पश्चिमी यूरोप में हुआ था। कमोबेश इसी तरह के पैटर्न कम विकसित देशों में भी देखे जा रहे हैं जो घटती मृत्यु दर के साथ जन्म दर को कम करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। भारत में भी, जनसांख्यिकीय संक्रमण अभी पूरा नहीं हुआ है क्योंकि मृत्यु दर तो कम हुई है, लेकिन जन्म दर में उतनी कमी नहीं आई है।

भारत: जनसंख्या और गतिशीलता

आकार, वृद्धि, संरचना और वितरण

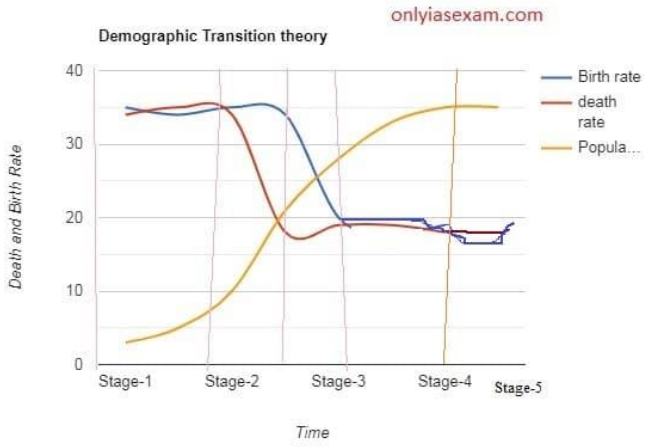

- भारत जैसे विकासशील देश में जनसंख्या का आकार और वृद्धि जनसांख्यिकीय परिघटना के दो महत्वपूर्ण घटक हैं
। चीन के बाद, भारत दुनिया का दूसरा सबसे अधिक आबादी वाला देश है, जिसकी जनसंख्या 2011 में 1,21,05,69,573 थी। संयुक्त राष्ट्र की विश्व जनसंख्या संभावना रिपोर्ट 2017 का अनुमान है कि भारत 2024 तक चीन को पीछे छोड़कर सबसे अधिक आबादी वाला देश बन सकता है और 2030 तक इसकी जनसंख्या 1.5 अरब तक पहुँच सकती है।

- 1901-1951 के बीच औसत वार्षिक वृद्धि दर 1.33% से अधिक नहीं रही, जो एक मामूली वृद्धि दर थी। वास्तव में,

1911 और 1921 के बीच -0.03% की ऋणात्मक वृद्धि दर रही। ऐसा 1918-19 के दौरान फैली इन्फ्लूएंजा महामारी के कारण हुआ था, जिसमें लगभग 1.25 करोड़ लोग या देश की कुल जनसंख्या के 5% लोग मारे गए थे। ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता के बाद जनसंख्या वृद्धि दर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई और 1961-1981 के दौरान यह 2.2%

तक पहुँच गई। तब से, यद्यपि वार्षिक वृद्धि दर में कमी आई है, यह विकासशील देशों में सबसे अधिक वृद्धि दरों में से एक बनी हुई है। 2011 की जनगणना के अनुसार, वार्षिक वृद्धि दर 1.3% है।

2011 की जनगणना (जनसंख्या की एक दशकीय आधिकारिक गणना) के आंकड़ों के अनुसार:

- भारतीय जनसंख्या में 62.31 करोड़ पुरुष और 58.74 करोड़ महिलाएं शामिल हैं।
- कुल जनसंख्या का 68.85 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में रहता था, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह 31.15 प्रतिशत था।
- जनसंख्या घनत्व 382 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है।
- महिलाओं का लिंग अनुपात प्रति 1000 पुरुषों पर 943 महिलाएं है।
- बालिकाओं का लिंग अनुपात 1000 पुरुषों पर 919 है।
- 0-6 वर्ष आयु वर्ग की जनसंख्या कुल जनसंख्या का 13.6 प्रतिशत है।
- भारत ने 2001 और 2011 की जनगणना के बीच दस वर्षों में अपनी कुल जनसंख्या में 18.19 करोड़ की वृद्धि की, जो लगभग 17.7 प्रतिशत की दशकीय वृद्धि दर है। ग्रामीण और शहरी जनसंख्या क्रमशः 12.3 और 31.8 प्रतिशत (दशकीय) की दर से बढ़ी। स्वतंत्रता के बाद पहली बार जनसंख्या वृद्धि दर 20 प्रतिशत से कम रही। पुरुष और महिला जनसंख्या क्रमशः 17.1 और 18.3 प्रतिशत (दशकीय) की दर से बढ़ी। शहरी महिला जनसंख्या 34 प्रतिशत (दशकीय) की दर से बढ़ी, जबकि शहरी पुरुष जनसंख्या वृद्धि 29.8 प्रतिशत (दशकीय) रही। ग्रामीण क्षेत्रों में, जहाँ पुरुष जनसंख्या 12.1 प्रतिशत (दशकीय) की दर से बढ़ी, वहीं महिला जनसंख्या 12.5 प्रतिशत (दशकीय) की दर से बढ़ी।

जनसंख्या वृद्धि के निर्धारकों को निम्नलिखित व्यापक श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:

भारतीय जनसंख्या की आयु संरचना

- भारत की आबादी बहुत युवा है - यानी ज़्यादातर भारतीय युवा हैं, और औसत आयु भी ज़्यादातर अन्य देशों की तुलना में कम है। कुल जनसंख्या में 15 वर्ष से कम आयु वर्ग का हिस्सा 1971 के अपने उच्चतम स्तर 42% से घटकर 2001 में 35% रह गया है। 15-60 आयु वर्ग का हिस्सा 53% से थोड़ा बढ़कर 59% हो गया है, जबकि 60+ आयु वर्ग का हिस्सा बहुत कम है, लेकिन इसी अवधि में इसमें वृद्धि (5% से 7% तक) शुरू हो गई है। लेकिन अगले दो दशकों में भारतीय जनसंख्या की आयु संरचना में काफ़ी बदलाव आने की उम्मीद है। इस परिवर्तन का अधिकांश हिस्सा आयु स्पेक्ट्रम के दो छोरों पर होगा - जैसा कि तालिका 2 से पता चलता है, 0 - 14 आयु समूह की हिस्सेदारी लगभग 11% कम हो जाएगी (2001 में 34% से 2026 में 23% तक) जबकि 60 से अधिक आयु समूह की हिस्सेदारी लगभग 5% बढ़ जाएगी (2001 में 7% से 2026 में लगभग 12% तक)।

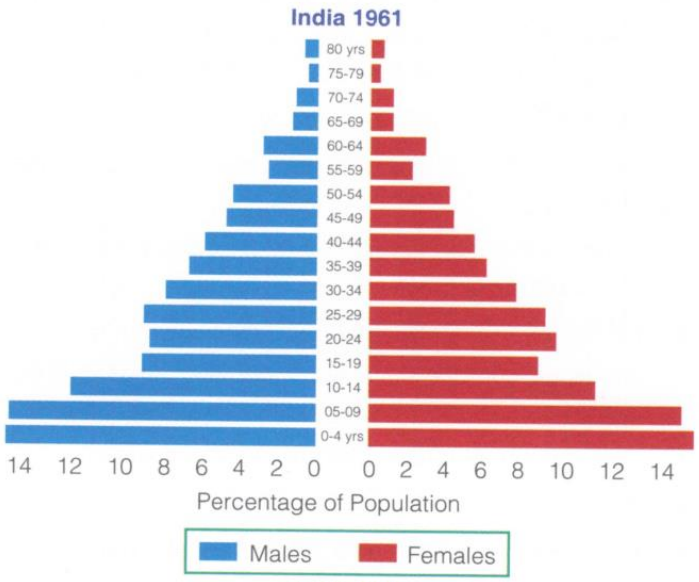

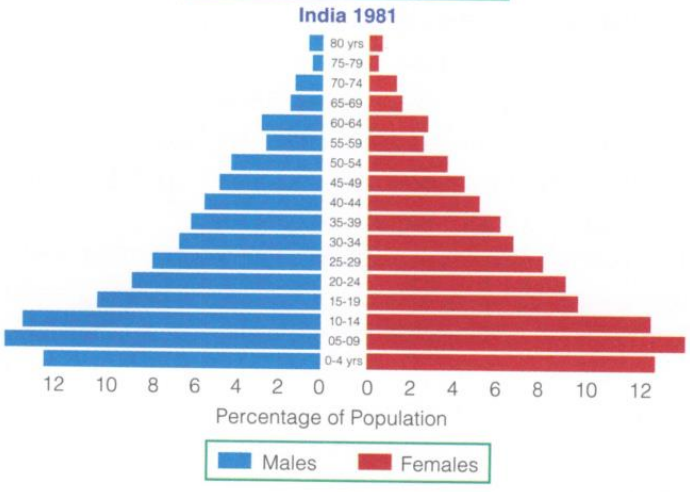

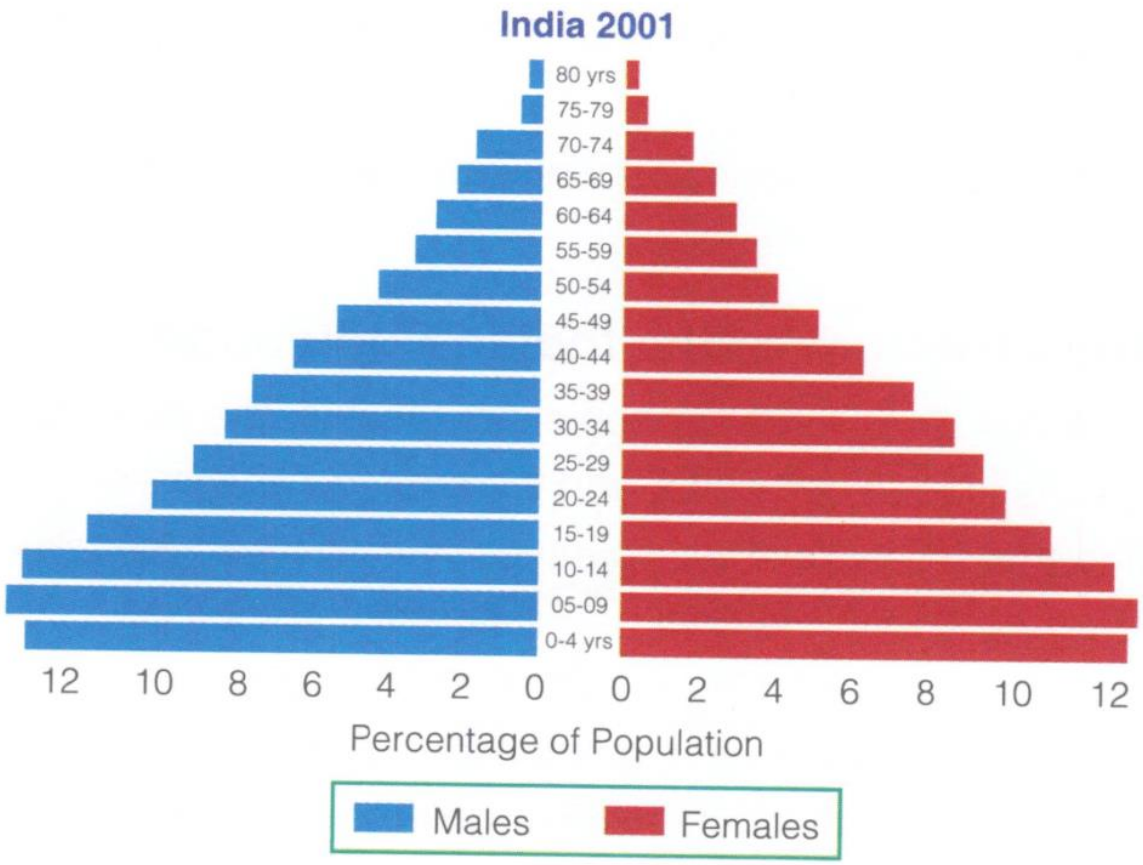

India 2001
80 yrs
75-79
70-74
65-69
60-64
55-59
50-54
45-49
40-44
35-39
30-34
25-29
20-24
15-19
10-14
05-09
0-4 yrs
12 10 8 6 4 2 0 0 2 4 6 8 10 12
Percentage of Population
Males
Females

India 2026
80 yrs
75-79
70-74
65-69
60-64
55-59
50-54
45-49
40-44
35-39
30-34
25-29
20-24
15-19
10-14
05-09
0-4 yrs
8 6 4 2 0 0 2 4 6 8
Percentage of Population
Males
Females

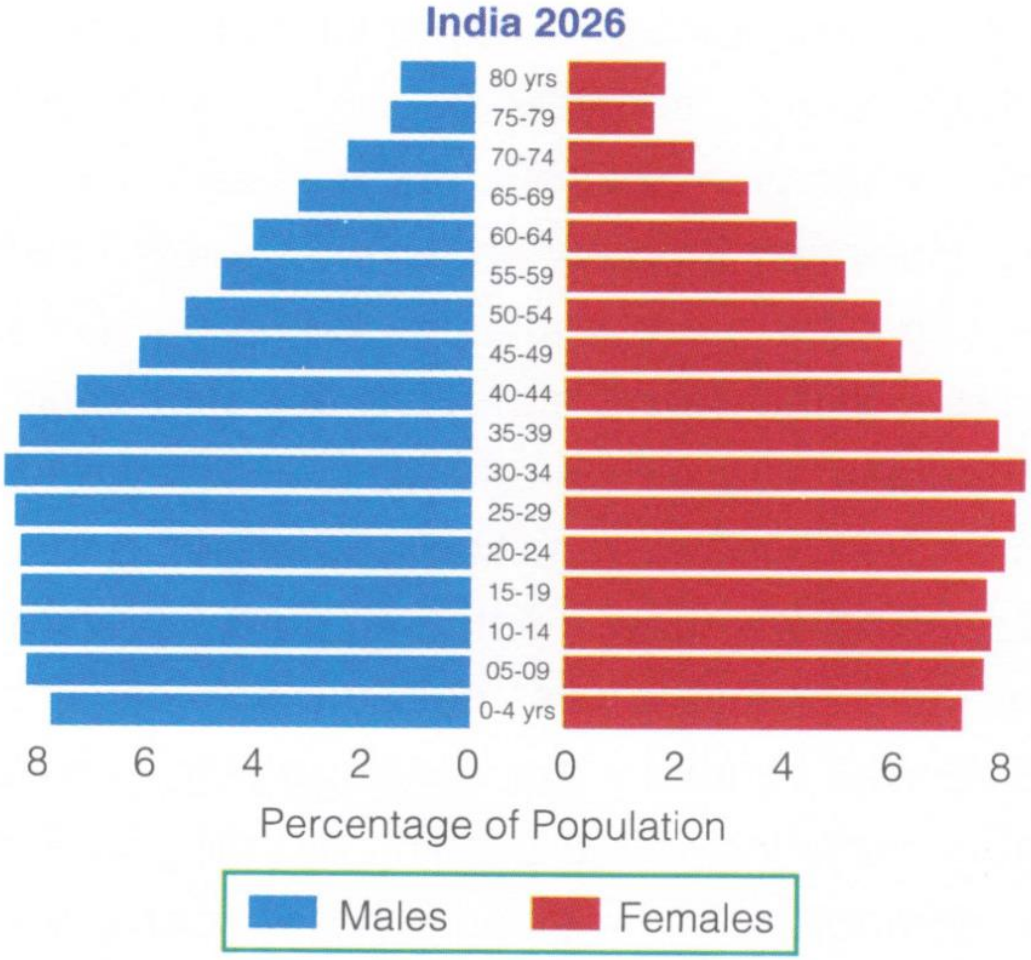

जनसंख्या वृद्धि के घटक

- 1921 तक, जन्म दर और मृत्यु दर दोनों ऊँची थीं, उसके बाद मृत्यु दर में तेज़ी से गिरावट आई, लेकिन जन्म दर में मामूली गिरावट आई। जनसांख्यिकीविदों ने जनसांख्यिकीय परिवर्तन के सबसे महत्वपूर्ण कारकों के रूप में तीन कारकों को सूचीबद्ध किया है:

जन्म दर

- जन्म दर का सबसे आम संकेतक अपरिष्कृत जन्म दर है। इसे आमतौर पर प्रति 1000 जीवित जन्मों की संख्या के रूप में व्यक्त किया जाता है। जनसांख्यिकीय संक्रमण सिद्धांत के अनुसार, किसी देश के अल्पविकसित से विकासशील चरण तक जन्म दर उच्च रहती है। 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत में यह लगभग 21.8% है।

जन्म दर में गिरावट की दर कम करने में योगदान देने वाले कारक हैं:

- शीघ्र विवाह की प्रथाएँ.
- लड़के को प्राथमिकता। पितृसत्तात्मक मूल्यों का प्रभुत्व।
- महिलाओं की निर्भरता.
- निरक्षरता की उच्च दर.

मृत्यु - संख्या

- मृत्यु दर या मृत्यु दर को अपरिष्कृत मृत्यु दर, जन्म के समय जीवन प्रत्याशा, शिशु मृत्यु दर और मातृ मृत्यु दर के आधार पर मापा जाता है। यदि मृत्यु दर जन्म दर से कम है, तो जनसंख्या में पूर्ण वृद्धि होगी। 1921 तक, अपरिष्कृत मृत्यु दर काफी अधिक थी, लगभग 40-50 प्रति हज़ार जनसंख्या। 1911-21 से 1971-21 तक, 60 वर्षों की अवधि में औसत वार्षिक मृत्यु दर 48.6 प्रति हज़ार से घटकर 14.9 प्रति हज़ार हो गई। और 2011 की जनगणना में यह लगभग 7 थी।
- चिकित्सा उपचार में सुधार, व्यापक टीकाकरण कार्यक्रमों और स्वच्छता में सुधार के प्रयासों के कारण अकाल और महामारी संबंधी बीमारियों पर बेहतर नियंत्रण से महामारी को नियंत्रित करने और इस प्रकार मृत्यु दर में कमी लाने में मदद मिली है। जनसंख्या वृद्धि के लिए ज़िम्मेदार मुख्य कारकों में से एक यह है कि मृत्यु दर में गिरावट के साथ-साथ जन्म दर में भी कमी नहीं आई है।

उपजाऊपन

प्रजनन दर, आमतौर पर 15-49 वर्ष की आयु वर्ग की प्रति 1000 महिलाओं पर जीवित जन्मों की संख्या को दर्शाती है। यह जनसंख्या वृद्धि या गिरावट का निर्धारण करने में मदद करती है। भारत के विभिन्न राज्यों में प्रजनन दर में व्यापक भिन्नता देखी गई है। तमिलनाडु और केरल जैसे राज्य अपनी प्रजनन दर को क्रमशः 2.1 और 1.8 तक कम करने में सफल रहे हैं। तमिलनाडु की प्रजनन दर 2.1 है, जो प्रतिस्थापन स्तर (अपने और अपने जीवनसाथी के प्रतिस्थापन के लिए आवश्यक) भी है। लेकिन साथ ही, बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे राज्य भी हैं, जिनकी कुल प्रजनन दर अभी भी उच्च है और लगभग 4 के आसपास है।

प्रवास

- प्रवास को मोटे तौर पर निवास के स्थायी या अर्ध-स्थायी परिवर्तन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। प्रवास देश में जनसंख्या के वितरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और पर्यावरण में आर्थिक, सामाजिक और जनसांख्यिकीय शक्तियों के प्रति मानव की प्रतिक्रिया है। प्रवास के चार प्रकार हैं: ग्रामीण से ग्रामीण, ग्रामीण से शहरी, शहरी से शहरी और शहरी से ग्रामीण।

प्रवासन निम्नलिखित कारकों के कारण हो सकता है:

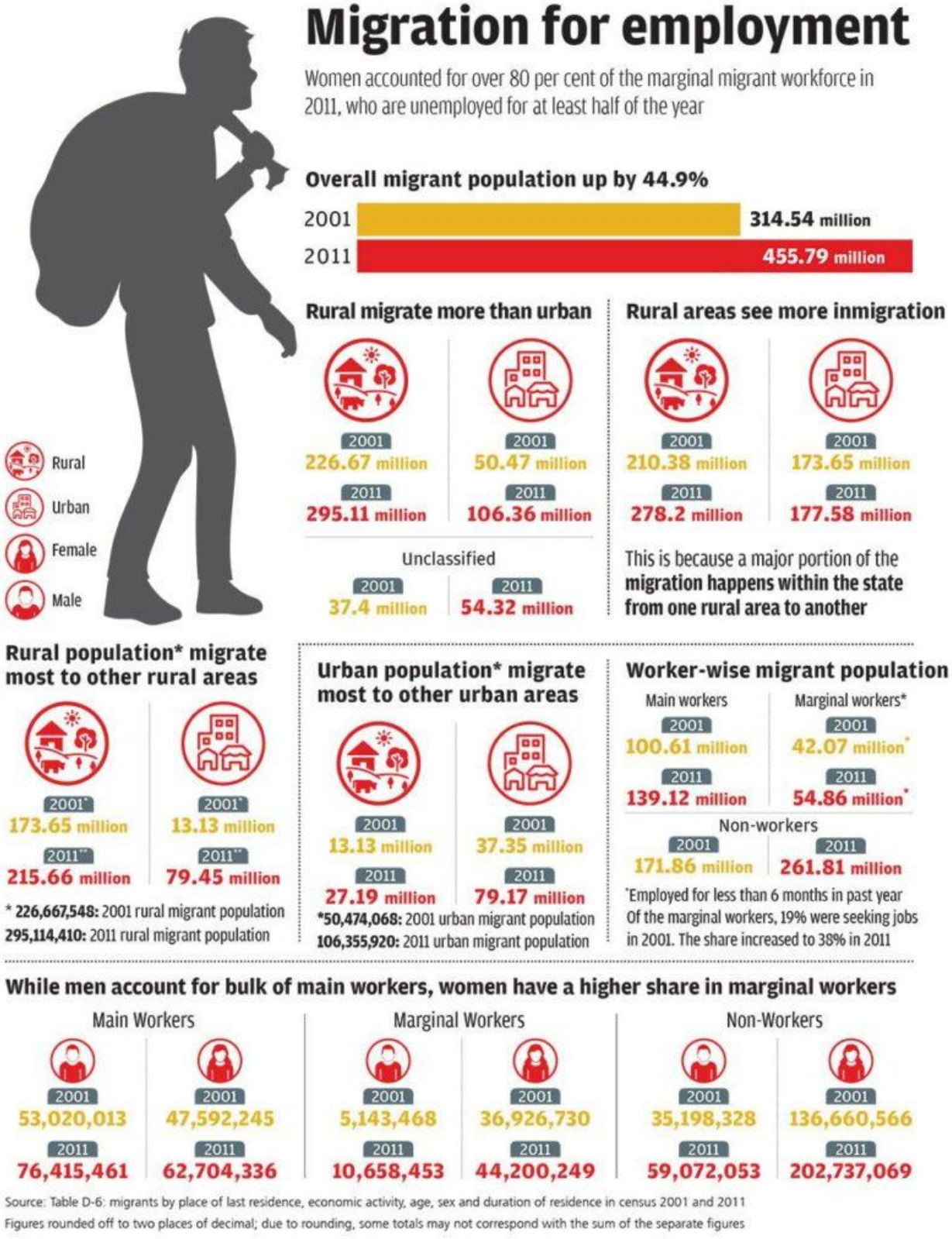

- **आर्थिक कारक:**
- इससे प्रतिकर्षण और अपकर्षण कारक उत्पन्न हो सकते हैं। गरीबी, कम उत्पादकता, बेरोजगारी, प्राकृतिक संसाधनों का ह्रास कुछ प्रतिकर्षण कारक हैं। इसी प्रकार, अवसर जैसे प्रतिकर्षण कारक भी बेहतर रोजगार, बेहतर कार्य परिस्थितियाँ और जीवन की बेहतर सुविधाओं के स्रोत हो सकते हैं। भारत के मामले में एक और कारक प्रतिकर्षण कारक देखा जाता है, जैसे-जैसे शहरों में बेरोजगारी और सीमांत रोजगार बढ़ता है, यह उन्हें पीछे धकेलता है।
- **राजनीतिक कारक:**
- महाराष्ट्र में कुछ राजनीतिक दल भूमिपुत्र नीति अपनाते हैं जिसके कारण जबरन पलायन होता है। तमिलनाडु और कुछ अन्य जगहों पर भी ऐसी ही नीतियाँ देखने को मिलती हैं।

- **सामाजिक कारक:**
- इसमें विवाह-प्रेरित प्रवास भी शामिल है। कभी-कभी जातिगत और सांप्रदायिक हिंसा भी पीड़ितों को नए स्थानों पर जाने के लिए मजबूर कर देती है।

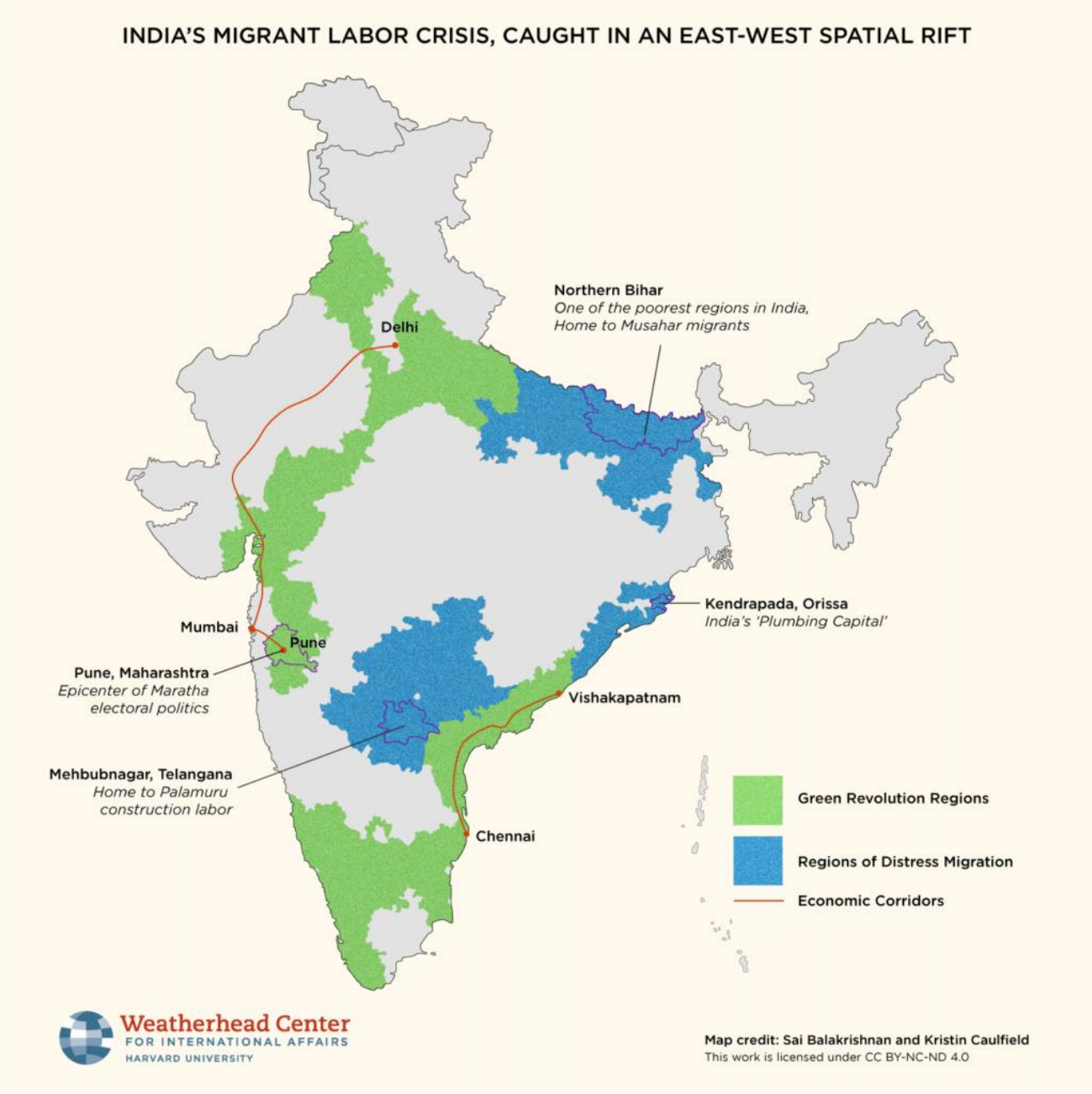

भारत में प्रवासन के रुझान

प्रवासन धाराएँ चार प्रकार की होती हैं:

- **ग्रामीण से ग्रामीण:**
- यदि अधिकांश प्रवासी महिलाएँ थीं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि विवाह ही इस प्रवास का प्रमुख कारण था। सामान्यतः, लगभग आधे पुरुष अंतर्राज्यीय प्रवासी ग्रामीण-से-ग्रामीण श्रेणी के होते हैं। इनमें से अधिकांश प्रवासी उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और राजस्थान जैसे पिछड़े राज्यों से हैं। यह स्पष्ट है कि प्रवासी ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि फार्मों या अन्य प्रतिष्ठानों में बेहतर नौकरियों की तलाश में अपने मूल स्थान से चले गए।
- **• ग्रामीण से शहरी:**
- यह मुख्यतः राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, आंध्र प्रदेश और केरल जैसे अविकसित राज्यों से आता है। प्रवासियों का रुझान पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली, चंडीगढ़ और अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह जैसे अपेक्षाकृत विकसित क्षेत्रों की ओर रहा है। भारत के अधिकांश प्रमुख महानगरीय शहरों में वर्तमान में भारी प्रवासन

और उसके परिणामस्वरूप जनसंख्या वृद्धि देखी जा रही है, क्योंकि इन शहरों में रोजगार के अवसर उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए, दिल्ली जैसे शहर प्रवासियों की भारी आमद से बुरी तरह प्रभावित हैं।

- **शहरी से शहरी:**

▪ आम तौर पर, संसाधन संपन्न लोग उच्च शिक्षा या औपचारिक क्षेत्र में रोज़गार के अवसरों का लाभ उठाने के लिए दूसरे दर्जे के शहरों से दूसरे दर्जे के शहरों की ओर रुख करते हैं। इसी तरह, शहरी प्रदूषण ने भी भारत में उलटे प्रवास की प्रवृत्ति को जन्म दिया है - शहर से ग्रामीण इलाकों या दूसरे दर्जे के शहरों की ओर। हालाँकि यह गाँव से शहर की ओर लगातार बढ़ते प्रवाह की तुलना में एक मामूली सी बात है, फिर भी हाल के वर्षों में कुछ बड़े कदम सुर्खियों में रहे हैं, जैसे कि कोस्टा रिका के राजदूत का दक्षिण भारत से दिल्ली की हवा के कारण बीमार पड़ जाना।

- **शहरी से ग्रामीण:**

▪ इसे रिवर्स माइग्रेशन भी माना जा सकता है। भारत में, सरकारी सहयोग और विभिन्न संगठनों की पहलों के कारण, पिछले एक दशक में रिवर्स माइग्रेशन ने गति पकड़ी है।

- सांसद आदर्श ग्राम योजना देश के एक-एक गाँव को बेहतर बनाने की एक पहल है। ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधाएँ प्रदान करने की अवधारणा हमारे दिवंगत राष्ट्रपति डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम द्वारा भारत में ग्रामीण आर्थिक विकास के लिए प्रस्तावित की गई थी।
- स्वदेश फाउंडेशन जैसे गैर-सरकारी संगठनों को रायगढ़ जिले के 6 ब्लॉकों के 2000 गाँवों में अपने व्यापक हस्तक्षेप से बढ़त हासिल है। उनके समग्र विकास मॉडल ने हज़ारों घरों में पानी की आपूर्ति और शौचालयों की सुविधा प्रदान की है। स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में उनके हस्तक्षेप ने सामान्य जागरूकता के स्तर को उन्नत किया है और उनके भौगोलिक क्षेत्र में जीवन स्तर में काफी सुधार किया है।

इस प्रकार, रिवर्स माइग्रेशन की प्रवृत्ति अनुत्पादक भूमि के अधिकतम उपयोग को बढ़ावा देगी, जिससे गांव स्वतंत्र इकाई बन जाएंगे।

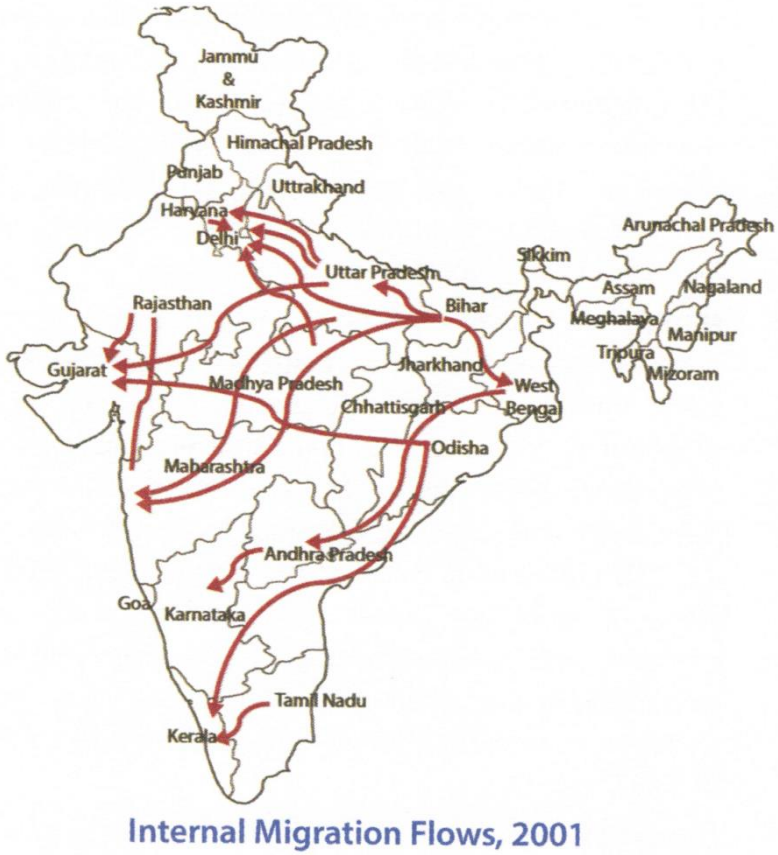

Internal Migration Flows, 2001

अंतर्राष्ट्रीय प्रवास की प्रवृत्ति

- भारत का प्रवास इतिहास दुनिया के सबसे विविध और जटिल प्रवासन इतिहासों में से एक रहा है, जिसमें ब्रिटिश उपनिवेशों में शुरुआती गिरमिटिया मज़दूरी की स्थिति से लेकर उत्तरी अमेरिका में वर्तमान उच्च कुशल प्रवासियों और मध्य पूर्व में कम कुशल प्रवासियों तक शामिल है। भारत बाहरी श्रम प्रवास प्रवाह को नियंत्रित करता है, जिसके लिए 1983 का प्रवासन अधिनियम आवश्यक कानूनी ढाँचा प्रदान करता है। श्रम मंत्रालय के प्रवासी संरक्षक कार्यालय को कानून द्वारा विदेशी रोज़गार चाहने वाले भारतीय नागरिकों की तैनाती को विनियमित करने का अधिकार प्राप्त है।
- राज्य के हस्तक्षेप का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि नागरिक स्वीकार्य परिस्थितियों में विदेश में कानूनी रूप से वैध रोज़गार प्राप्त करें।

यह मुख्यतः न्यूनतम रोज़गार मानक निर्धारित करके और रोज़गार अनुबंधों का सत्यापन करके; एजेंटों को लाइसेंस देकर भर्ती को विनियमित करके, कुछ श्रेणियों के प्रवासियों, विशेष रूप से उन प्रवासियों के लिए, जिन्हें अपने हितों की रक्षा करने में कम सक्षम माना जाता है, उत्प्रवास मंज़ूरी जारी करके, और रोज़गार अनुबंधों के उल्लंघन और भर्ती के दुरुपयोग से संबंधित जन शिकायतों का निपटारा करके प्राप्त किया जाता है।

भारत से दो अलग-अलग प्रकार के श्रमिक प्रवास हो रहे हैं

- तकनीकी कौशल और पेशेवर विशेषज्ञता वाले लोग स्थायी प्रवासी के रूप में अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, यूरोपीय संघ और ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों में प्रवास करते हैं। कुशल प्रवासी अपनी योग्यता के अनुरूप नौकरियों की तलाश में विकसित देशों का रुख करते हैं। कुशल श्रमिक आमतौर पर अमेरिका, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया और यूरोपीय संघ जैसे देशों में स्वास्थ्य सेवा, प्रबंधन, वित्तीय सेवाओं या सूचना प्रौद्योगिकी से जुड़ी नौकरियों में काम करते हैं।
- अकुशल और अर्ध-कुशल श्रमिक मुख्यतः मध्य पूर्व के तेल निर्यातक देशों में अस्थायी अनुबंधों पर प्रवास करते हैं। बाजार के निचले स्तर पर आने वाले प्रवासियों में अधिकतर अकुशल दिहाड़ी मजदूर या वे लोग शामिल हैं जो छोटी-मोटी आजीविका के साधन जैसे गाड़ी या रिक्शा के मालिक हैं या किराए पर लेते हैं और स्व-रोज़गार करते हैं। अकुशल श्रमिक निर्माण और खुदरा व्यापार में नौकरियों की तलाश में मध्य पूर्व, खासकर सऊदी अरब और संयुक्त अरब अमीरात, की ओर रुख करते हैं क्योंकि इस क्षेत्र में श्रमिकों की कमी के कारण ये अर्थव्यवस्थाएँ अधिक रोजगार प्रदान करती हैं। ये आर्थिक रूप से सुदृढ़ देश हैं जो अकुशल श्रमिकों को भारत की तुलना में बेहतर जीवन स्तर और आय प्रदान करते हैं।

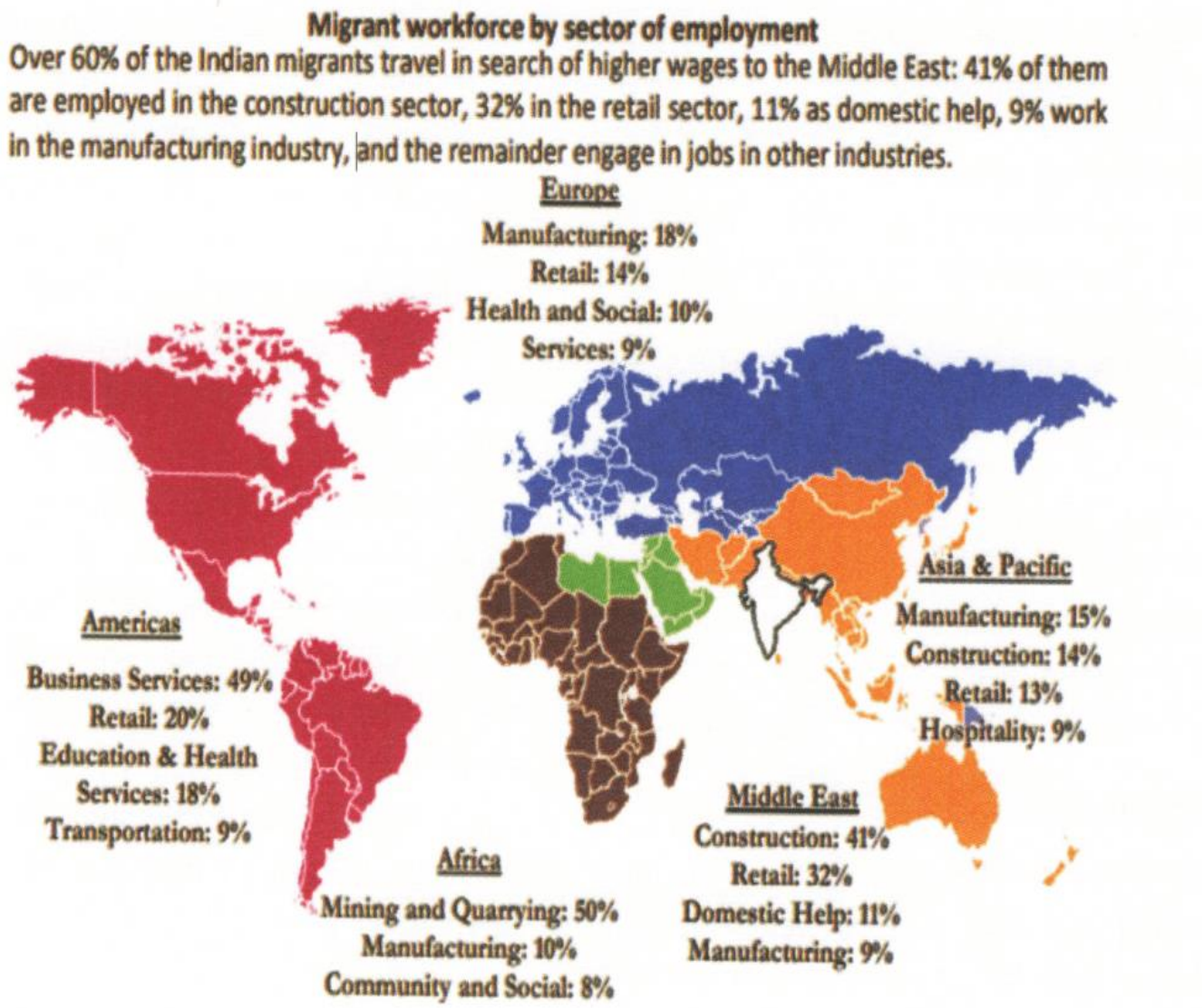

अंतर्राष्ट्रीय प्रवास के लाभ और लागत					
व्यक्ति		स्रोत देश		गंतव्य देश	
सकारात्मक	नकारात्मक	सकारात्मक	नकारात्मक	सकारात्मक	नकारात्मक
रोज़गार	प्राप्तकर्ता देश में अल्प-रोज़गार	प्रेषण: शिक्षा और स्थानीय विकास पर प्रभाव	प्रतिभा पलायन, विकास में बाधा	आर्थिक वृद्धि और विकास	कम कुशल नौकरियों के लिए प्रतिस्पर्धा
वेतन सुधार	दुर्व्यवहार के अधीन	नौकरियां पैदा करने का दबाव कम हुआ	श्रम की कमी	वृद्धावस्था और कार्यशील जनसंख्या में गिरावट पर ध्यान दें	विकसित देशों में मजदूरी पर दबाव
कल्याण वृद्धि	प्रवासन से संबंधित महंगा / विनियमन			कौशल की कमी को पूरा करना	
कौशल और शिक्षा पर बेहतर रिटर्न					

जनसंख्या नीति

- यूएनईपी जनसंख्या नीति को जनसंख्या के आकार, संरचना और वितरण या विशेषताओं को प्रभावित करने के प्रयास के रूप में परिभाषित करता है। भारत को दुनिया का पहला ऐसा देश होने का गौरव प्राप्त है जहाँ पूरी तरह से सरकार द्वारा समर्थित परिवार नियोजन कार्यक्रम है। यह कोई रातोंरात विकास नहीं है। इसकी नींव बीसवीं सदी के आरंभ में रखी गई थी।

भारत की जनसंख्या नीति का उद्देश्य जीवन की गुणवत्ता में सुधार और व्यक्तिगत खुशी में वृद्धि करना है। जनसंख्या नीति के उद्देश्य हैं:

- सामाजिक रूप से वांछनीय दिशाओं में जनसंख्या वृद्धि की दर और पैटर्न को प्रभावित करना।
- मृत्यु दर में कमी.
- घटती जन्म दर
- बढ़ती जनसंख्या के दुष्परिणामों के बारे में जनता में जागरूकता पैदा करना।
- आवश्यक गर्भनिरोधकों की खरीद।

परिवार नियोजन

- विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, परिवार नियोजन एक सोच और जीवन जीने का तरीका है जिसे व्यक्ति और दंपत्ति स्वेच्छा से, ज्ञान, दृष्टिकोण और ज़िम्मेदारी भरे निर्णयों के आधार पर अपनाते हैं ताकि परिवार समूह के स्वास्थ्य और कल्याण को बढ़ावा दिया जा सके और इस प्रकार देश के सामाजिक विकास में प्रभावी योगदान दिया जा सके। परिवार नियोजन पर बढ़ते ध्यान के कारण, 2017 में लगभग 13 करोड़ महिलाएं गर्भनिरोधक के आधुनिक तरीकों का इस्तेमाल कर रही हैं।
- परिवार के स्तर पर, परिवार नियोजन का अर्थ है केवल वांछित संख्या में बच्चे पैदा करना। इस प्रकार परिवार नियोजन का तात्पर्य परिवार के संसाधनों के अनुसार उचित संख्या तक परिवार को सीमित रखना और बच्चों के बीच उचित अंतराल रखना है। परिवार नियोजन अपनाने के लिए, स्पष्ट रूप से, गर्भधारण को नियंत्रित करने के लिए दंपत्ति द्वारा किए गए सचेत प्रयासों की आवश्यकता होती है।

  एक सामाजिक आंदोलन के रूप में, परिवार नियोजन का तात्पर्य लोगों के एक समूह द्वारा एक अनुकूल वातावरण बनाकर लोगों की संतानोत्पत्ति प्रथाओं में परिवर्तन लाने के लिए एक संगठित प्रयास से है।
- परिवार नियोजन कार्यक्रम में गतिविधियों का एक समन्वित समूह शामिल होता है, जिसे एक निश्चित अवधि तक चलाया जाता है और जिसका उद्देश्य महिलाओं के प्रजनन व्यवहार में बदलाव लाना होता है। परिवार नियोजन कार्यक्रम का उद्देश्य महिलाओं और उनके बच्चों की स्वास्थ्य स्थिति में सुधार लाना और/या जन्म दर को कम करके देश की जनसंख्या वृद्धि दर को कम करना हो सकता है। जनसंख्या नियंत्रण नीति वाले अधिकांश देश परिवार नियोजन के स्वास्थ्य संबंधी पहलुओं पर भी ज़ोर देते हैं।

  परिवार नियोजन कार्यक्रम के विभिन्न घटक हैं:
- सूचना, शिक्षा और संचार गतिविधियाँ,
- गर्भनिरोधक: आपूर्ति और सेवाएँ,
- कार्मिकों का प्रशिक्षण,
- अनुसंधान, और
- प्रशासनिक अवसंरचना.

  भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम का उद्देश्य परिवार का कल्याण है।

उभरते मुद्दे

उम्र बढ़ने

- जनसंख्या के वृद्ध होने का अर्थ है जनसंख्या में वृद्ध लोगों, यानी 60 वर्ष से अधिक आयु के लोगों, के अनुपात में वृद्धि। जापान जैसे देश भारी दबाव का सामना कर रहे हैं क्योंकि उनकी आबादी का एक बड़ा हिस्सा अब वृद्धावस्था की ओर बढ़ रहा है और निर्भरता अनुपात बढ़ रहा है। भारत भी धीरे-धीरे उसी दिशा में बढ़ रहा है, 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत में 60 वर्ष से अधिक आयु के 10 करोड़ से अधिक लोग हैं।

लिंग अनुपात

- लिंग अनुपात जनसंख्या में लैंगिक संतुलन का एक महत्वपूर्ण सूचक है । भारतीय जनगणना में लिंग अनुपात को प्रति 1000 पुरुषों पर महिलाओं की संख्या के रूप में परिभाषित किया जाता है, जबकि विश्व स्तर पर यह प्रति 1000 महिलाओं पर पुरुषों की संख्या है। यह समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों को दर्शाता है। कम लिंग अनुपात समाज में लड़कों के प्रति प्राथमिकता को दर्शाता है।

  यद्यपि 2001 की तुलना में 2011 में समग्र लिंगानुपात में 7 अंकों की वृद्धि हुई है, लेकिन बाल लिंगानुपात में 13 अंकों की गिरावट आई है, जो कि बहुत चिंता का विषय है।

भारत में खराब लिंगानुपात के लिए जिम्मेदार कारक:

- **भ्रूण हत्या:** धार्मिक या सांस्कृतिक मान्यताओं के कारण गर्भ में ही कन्या भ्रूण हत्या या बालिकाओं की हत्या, विशेष रूप से लड़के की चाहत के कारण।
- **शिशुहत्या:** शिशु अवस्था में बालिकाओं की उपेक्षा के कारण शिशु मृत्यु दर बढ़ जाती है या कभी-कभी जन्म के समय बालिकाओं की मृत्यु हो जाती है।
- **गरीबी:** गरीबी घटते लिंगानुपात के लिए ज़िम्मेदार कारकों में से एक है। तमिलनाडु जैसे कम गरीबी वाले राज्यों में लिंगानुपात ज़्यादा है। लड़कों को प्राथमिकता दिए जाने और गरीबी के कारण महिलाओं और बालिकाओं को पौष्टिक भोजन और स्वस्थ जीवन से वंचित रखा जाता है। महिलाओं के ख़िलाफ़ हिंसा: महिलाओं को अक्सर विभिन्न प्रकार की हिंसा का सामना करना पड़ता है, जिसमें दहेज हत्या, ऑनर किलिंग, यौन हिंसा आदि शामिल हैं।
- **प्रवासन:** प्रवासन भी एक कारक के रूप में उभर रहा है। कमाने वाले पुरुष अक्सर अपने मूल स्थानों को छोड़कर चले जाते हैं, और परिवार में महिलाओं को पीछे छोड़ देते हैं। इससे शहरी क्षेत्रों में लिंगानुपात में असंतुलन पैदा होता है।
- राज्य-स्तरीय बाल लिंगानुपात चिंता का एक बड़ा कारण है क्योंकि हरियाणा और पंजाब जैसे भारत के सबसे समृद्ध क्षेत्रों में देश में सबसे कम लिंगानुपात है। छह राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में प्रति 1000 महिलाओं पर 900 से कम बाल लिंगानुपात है। चुनिंदा गर्भपात की समस्या गरीबी, अज्ञानता या संसाधनों की कमी के बजाय मुख्यतः एक सामाजिक-सांस्कृतिक मुद्दा है। हरियाणा में मेवात और फतेहाबाद जैसे अपेक्षाकृत पिछड़े क्षेत्रों में राज्य के बाकी हिस्सों की तुलना में बेहतर लिंगानुपात है।

समाज पर खराब लिंगानुपात का प्रभाव कई गुना है:

- जनसांख्यिकीय विकृति के कारण अस्वस्थ सामाजिक मिश्रण।
- यौन हिंसा और तस्करी की बढ़ती घटनाएं।
- बहुविवाह के उदाहरण.
- हरियाणा के कुछ भागों में रिपोर्ट के अनुसार, दुल्हनों का आयात और महिलाओं की मानव तस्करी की घटनाएं घटित हो रही हैं।
- दहेज हत्या जैसी अन्य सामाजिक बुराइयों को बढ़ावा देता है।

घटते लिंगानुपात को रोकने के लिए सरकारी पहल:

- पीसीपीएनडीटी अधिनियम (गर्भाधान पूर्व एवं प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम) पारित किया गया है, जो लिंग निर्धारण को अवैध बनाता है।
- State specific schemes like cash incentive, Apni Beti Apna Dhan, Laadli in Haryana, education made free till graduation.
- भारत सरकार ने बालिकाओं और उनकी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना शुरू की है।
- वित्त मंत्रालय ने सुकन्या समृद्धि योजना शुरू की है, जो 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' अभियान के एक भाग के रूप में बालिकाओं के लिए एक छोटी जमा योजना है, ताकि उनकी उच्च शिक्षा के खर्चों की आवश्यकता को पूरा किया जा सके।
- तकनीकी समाधानों का प्रयोग किया जा रहा है, उदाहरण के लिए हरियाणा, महाराष्ट्र जैसे राज्यों में प्रसव पूर्व लिंग निर्धारण को रोकने के लिए अल्ट्रासाउंड मशीनों के साथ साइलेंट ऑब्जर्वर उपकरण लगाया जा रहा है।

हालाँकि, ये उपाय बहुत कारगर साबित नहीं हुए हैं, उदाहरण के लिए, पीसीपीएनडीटी अधिनियम के तहत अब तक बहुत कम मामलों में सज़ा हो पाई है। लोगों को जागरूक करने के लिए एक जन जागरूकता अभियान और सांस्कृतिक मूल्यों में बदलाव की आवश्यकता है ताकि हमारे समाज में महिलाओं के साथ समान व्यवहार हो और उनके लिंगानुपात में सुधार हो सके।

बाल एवं शिशु मृत्यु दर

- शिशु मृत्यु दर (IMR) को सामान्यतः प्रति 1000 जन्मे बच्चों पर 0-1 वर्ष की आयु के बच्चों की मृत्यु दर के रूप में लिया जाता है। नवजात मृत्यु दर (NNM) और प्रसवोत्तर मृत्यु दर (PNM) IMR के घटक हैं। भारत 2015 तक IMR को आधा करने के अपने सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों (MDG) के लक्ष्य को पूरा करने में विफल रहा है। भारत में शिशु मृत्यु दर की ग्रामीण-शहरी दरों में भारी अंतर है। लगभग दो-तिहाई शिशु मृत्यु दर चार सप्ताह से कम उम्र के शिशुओं में होती है।

कारण

उच्च शिशु मृत्यु दर के लिए विभिन्न कारण जिम्मेदार हैं:

- **महिला स्वायत्तता:**
  - कई भारतीय राज्यों में महिलाओं को विवाह की आयु तय करने की स्वायत्तता प्राप्त नहीं है और विवाहित होने पर वे जन्म देने की आयु या यहां तक कि बच्चों के जन्म के बीच अंतराल भी तय नहीं कर सकती हैं, जिसका नवजात शिशु के स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव पड़ता है।
- **महिला साक्षरता:**
  - ग्रामीण क्षेत्रों में महिला शिक्षा अभी भी कम प्राथमिकता पर है। इसलिए, नई माताओं और गर्भवती महिलाओं को गर्भावस्था और प्रसवोत्तर देखभाल की बुनियादी जानकारी का अभाव है। इसके अलावा, वे शिशु की बीमारियों के ख़तरे के संकेतों से भी अनजान हैं और इसलिए तुरंत मदद नहीं ले पातीं।
- **सुविधाओं तक पहुंच:**
  - दूसरा प्रमुख कारण यह है कि भारत में अभी भी कई महिलाओं को स्वच्छ जल, पौष्टिक भोजन और नियमित चिकित्सा सहायता पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं है।
- **परिवहन बुनियादी सुविधाओं:**
  - यहां तक कि किसी राज्य की परिवहन अवसंरचना भी शिशु मृत्यु दर को कम करने में भूमिका निभा सकती है, क्योंकि जब बच्चा बीमार होता है तो उसे अस्पताल पहुंचने में जितना अधिक समय लगता है, मृत्यु का जोखिम उतना ही अधिक होता है।
- **खराब सरकारी खर्च:**
  - दुनिया भर में, स्वास्थ्य पर सरकारी प्रति व्यक्ति खर्च और शिशु मृत्यु दर के बीच एक संबंध है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, भारत का खर्च उप-सहारा अफ्रीका से पीछे है।

- **कुपोषण:**
- भारत में महिलाओं में कुपोषण की उच्च दर शिशु मृत्यु दर का एक और प्रमुख कारण है। एनीमिया से पीड़ित माँ कम वज़न वाले बच्चे को जन्म देती है और देश में प्रसवपूर्व देखभाल का भारी अभाव है। 24% से 37% भारतीय शिशुओं का जन्म के समय वज़न 2500 ग्राम से कम होता है और विश्व स्वास्थ्य संगठन के दिशानिर्देशों के अनुसार, इन शिशुओं की मृत्यु दर का ख़तरा ज़्यादा होता है।
- **खराब टीकाकरण:**
- भारत में बच्चे खराब टीकाकरण के कारण डिप्थीरिया, काली खांसी, खसरा, पोलियो आदि जैसी कई बीमारियों से पीड़ित हैं। भारत में अकेले डायरिया से 30% बच्चों की मृत्यु होती है।

नतीजे

उच्च शिशु मृत्यु दर के कई परिणाम होते हैं:

- ये पिछड़ेपन और गरीबी के स्पष्ट संकेतक हैं।
- दम्पति इस उम्मीद में अधिक संख्या में बच्चे पैदा कर सकते हैं कि उनमें से कुछ ही जीवित बचेंगे। बच्चों की मृत्यु दर का माताओं के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- यह उन गरीब महिलाओं के लिए भी आर्थिक बोझ बन जाता है जो असंगठित क्षेत्र में श्रम शक्ति का हिस्सा हैं।
- वर्तमान में नमूना पंजीकरण बुलेटिन के अनुसार भारत में 2016 में 8% की गिरावट आई है और यह 2015 के 37 से घटकर 34 हो गई है। यह दर्शाता है कि सरकार के दृष्टिकोण ने लाभांश दिखाना शुरू कर दिया है और कम प्रदर्शन करने वाले राज्यों पर विशेष ध्यान देने से लाभ मिल रहा है।

प्रजनन स्वास्थ्य

- प्रजनन स्वास्थ्य, प्रजनन प्रणाली से संबंधित सभी मामलों में पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कल्याण की स्थिति है। इसका तात्पर्य है कि लोग एक संतोषजनक और सुरक्षित यौन जीवन जी सकें, प्रजनन करने की क्षमता रख सकें, और यह तय करने की स्वतंत्रता रख सकें कि उन्हें कब, कैसे और कितनी बार प्रजनन करना है।
- अपने यौन और प्रजनन स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए, लोगों को सटीक जानकारी और अपनी पसंद की सुरक्षित, प्रभावी, किफ़ायती और स्वीकार्य गर्भनिरोधक विधि तक पहुँच की आवश्यकता है। उन्हें यौन संचारित संक्रमणों से खुद को बचाने के लिए सूचित और सशक्त होना चाहिए। और जब वे बच्चे पैदा करने का फैसला करती हैं, तो महिलाओं को ऐसी सेवाओं तक पहुँच मिलनी चाहिए जो उन्हें एक स्वस्थ गर्भावस्था, सुरक्षित प्रसव और स्वस्थ बच्चे के लिए मदद कर सकें।
- प्रजनन स्वास्थ्य एक महत्वपूर्ण सामाजिक और जनसांख्यिकीय संकेतक है जिसका मातृ मृत्यु दर, नवजात मृत्यु दर और समग्र स्वास्थ्य से गहरा संबंध है। मातृ मृत्यु दर, गरीबों तक प्रभावी नैदानिक स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच का एक महत्वपूर्ण संकेतक है और देश की प्रगति का आकलन करने के लिए एक समग्र उपाय है।
- भारत में कुपोषण, प्रौढ़ शिक्षा की कमी, विवाह की आयु और चिकित्सा सुविधाओं का अभाव, खराब प्रजनन स्वास्थ्य के प्रमुख कारक हैं। राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000 में प्रजनन स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान दिया गया है और इसमें किशोरों की यौन और प्रजनन संबंधी आवश्यकताओं को स्वीकार किया गया है। सरकार ने किशोरियों के प्रजनन स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देने के लिए किशोरी शक्ति योजना, नेहरू युवा केंद्र आदि जैसी कई योजनाएँ शुरू की हैं।

निर्भरता अनुपात

- निर्भरता अनुपात जनसंख्या के उस हिस्से की तुलना करने का एक उपाय है जो आश्रितों से बना है जो बुजुर्ग लोग हैं जो काम करने के लिए बहुत बूढ़े हैं, बच्चे जो काम करने के लिए बहुत छोटे हैं और जनसंख्या के अन्य वर्ग जो कुछ शारीरिक दुर्बलता के कारण काम करने में सक्षम नहीं हैं। इस प्रकार, निर्भरता अनुपात मोटे तौर पर 15 से नीचे और 60 से अधिक की आबादी के बराबर है जो 15-60 आयु वर्ग की आबादी से विभाजित है और अनुपात

आमतौर पर प्रतिशत में व्यक्त किया जाता है। उच्च निर्भरता अनुपात चिंता का कारण है क्योंकि कामकाजी उम्र के लोगों के अपेक्षाकृत छोटे अनुपात के लिए आश्रितों के अपेक्षाकृत बड़े अनुपात के लिए प्रदान करने का बोझ उठाना मुश्किल हो जाता है। भारत के मामले में 15-64 वर्ष की आयु के प्रति 100 लोगों पर 0-14 और 65+ आयु वर्ग की आबादी का अनुपात लगभग 52.2 है

उच्च जनसंख्या के कारण

- **जनसांख्यिकी:** चिकित्सा स्थितियों में प्रगति के कारण स्वास्थ्य स्थितियों में सुधार और रोगों पर नियंत्रण के कारण मृत्यु दर में कमी आई है, लेकिन जन्म दर में बहुत अधिक कमी नहीं आई है।
- **आर्थिक:** आर्थिक रूप से कमजोर राज्य अक्सर जनसंख्या वृद्धि में अग्रणी होते हैं, जो इस सिद्धांत को प्रमाणित करता है कि परिवार की आर्थिक स्थिति बच्चों की संख्या के व्युत्क्रमानुपाती होती है।
- **शिक्षा:** इसका प्रजनन दर से गहरा संबंध है। कम शिक्षित परिवारों को नवीनतम परिवार नियोजन तकनीकों के बारे में कम जानकारी होती है या वे अनभिज्ञ होते हैं।
- **सामाजिक:** भारत जैसे पितृसत्तात्मक समाजों में पुत्र प्राप्ति की इच्छा एक सामान्य सामाजिक प्रथा है, जिसके कारण जन्म दर उच्च एवं विषम हो सकती है।
- **प्राकृतिक आपदाएँ:** भारत ने विज्ञान में प्रगति की है और इससे 1911-21 के विपरीत किसी भी प्राकृतिक आपदा को रोकने में मदद मिली है।
- **विवाह की आयु:** विवाह की कम आयु को भी जन्म दर में वृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारक माना जाता है।
- **सांस्कृतिक:** विभिन्न क्षेत्रों और धर्मों में गर्भनिरोधक के उपयोग के विरुद्ध सांस्कृतिक बाधाएं भी जनसंख्या के आकार को प्रभावित कर सकती हैं।

अधिक जनसंख्या के प्रभाव

- अत्यधिक जनसंख्या हमारे अस्तित्व के लिए एक गंभीर खतरा है। भारत में वर्तमान में 1.2 अरब लोग रहते हैं और यदि पर्याप्त उपाय किए गए तो सदी के मध्य तक स्थिर होने से पहले इसके 1.8 अरब तक बढ़ने की उम्मीद है। इससे संसाधनों का असमान वितरण, खराब जीवन स्तर, स्वास्थ्य संबंधी बुनियादी ढाँचे की विफलता आदि जैसी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ पैदा होती हैं। अत्यधिक जनसंख्या के कारण कार्यशील संस्थान निष्क्रिय हो जाते हैं, देश के बुनियादी ढाँचे में सुधार की सभी योजनाएँ विफल हो जाती हैं, और सामाजिक कल्याण संबंधी पहल अप्रभावी हो जाती हैं।

सामाजिक

- **अपराध:**
  - जनसंख्या विस्फोट का गरीबी से सीधा संबंध है और संसाधनों की कमी तथा रोज़गार के अवसरों की कमी के कारण बेरोजगारी बढ़ती है। बेरोजगारी के कारण शिक्षित युवाओं में निराशा और गुस्सा बढ़ता है, जो सामाजिक अपराधों, जैसे डकैती, भिक्षावृत्ति, वेश्यावृत्ति, हत्या आदि की ओर आकर्षित होते हैं। आज देश के विभिन्न हिस्सों, जैसे जम्मू-कश्मीर, में हम जो आतंकवादी गतिविधियाँ देख रहे हैं, वे शिक्षित बेरोज़गार युवाओं की निराशा का ही प्रतिबिंब हैं।
- **अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक विभाजन:**
  - कुछ समुदायों में अधिक जनसंख्या के कारण अल्पसंख्यकों पर उनका प्रभुत्व तथा पहचान के नष्ट होने का भय उत्पन्न हो सकता है।

  इस प्रकार यह धर्म के आधार पर सामाजिक ताने-बाने में दरार पैदा कर सकता है और सांप्रदायिकता को बढ़ावा दे सकता है।

आर्थिक

- **बेरोजगारी:**

- अधिक जनसंख्या के परिणामस्वरूप श्रम शक्ति की एक विशाल सेना उत्पन्न होती है, लेकिन पूँजीगत संसाधनों की कमी के कारण संपूर्ण कार्यशील जनसंख्या को लाभकारी रोजगार प्रदान करना कठिन हो जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रच्छन्न बेरोजगारी और शहरी क्षेत्रों में खुली बेरोजगारी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

- **संसाधनों की कमी:**
- अत्यधिक जनसंख्या सीधे तौर पर प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन और पर्यावरण के ह्रास और क्षरण की ओर ले जाती है। भारत में जनसंख्या ज्यामितीय रूप से बढ़ी है, जबकि संसाधन या तो स्थिर हैं या अंकगणितीय रूप से बढ़े हैं, जिससे संसाधनों की कमी हो रही है।

- **असमान आय वितरण:**
- अधिक जनसंख्या सरकार की निवेश आवश्यकताओं और पूंजी निर्माण को प्रभावित करती है, जिससे सरकार के समग्र विकास कार्य प्रभावित होते हैं। बेरोज़गारी, खाद्यान्नों का असमान वितरण और बढ़ती गरीबी, धन के असमान वितरण में वृद्धि के मुख्य कारण हैं, जिससे स्थिति और भी जटिल हो जाती है।

- **गरीबी:**
- बेरोजगारी, आय का असमान वितरण और संसाधनों की कमी, ये सभी मिलकर लोगों को गरीबी की ओर ले जाते हैं।

राजनीतिक

- किसी देश के आर्थिक और सामाजिक पहलू उसकी राजनीति को प्रभावित करते हैं। बढ़ती बेरोजगारी, गरीबी और धन का असमान वितरण देश की कानून-व्यवस्था को प्रभावित करता है। इसके अलावा, अशिक्षा के कारण राजनीतिक दल जातिवाद की राजनीति करते हैं और देश के विघटन का कारण बनते हैं।

पर्यावरण

- बढ़ती जनसंख्या भूमि पर दबाव डाल रही है और प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता कम होती जा रही है। जनसंख्या विस्फोट के कारण प्रदूषण, जैव विविधता का ह्रास, ग्लोबल वार्मिंग आदि के रूप में पर्यावरणीय क्षरण हो रहा है। वन और कृषि भूमि तेज़ी से घट रही है। बढ़ती जनसंख्या का प्रभाव दिल्ली जैसे महानगरों में पहले से ही देखा जा रहा है, जो वायु प्रदूषण से जूझ रहे हैं।

स्वास्थ्य

- अत्यधिक जनसंख्या लोगों के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों में से एक है। जनसंख्या वृद्धि के कारण शहरी भीड़भाड़ और पर्यावरणीय परिवर्तन जैसी समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं, जिसके परिणामस्वरूप कई संक्रामक रोग उभरे हैं। जनसंख्या वृद्धि, स्वास्थ्य देखभाल प्रणालियों और सुविधाओं का विस्तार करने में सरकारों की अक्षमता को और बढ़ा देती है।

जनसांख्यिकी: लाभ या आपदा

- भारत की 1.1 अरब की आबादी में 51% लोग 25 साल से कम उम्र के हैं और दो तिहाई 35 साल से कम उम्र के हैं। ऐसा माना जाता है कि भारत का 'युवाओं का उभार', जो 2050 तक रहने वाला है, इसकी सबसे बड़ी संपत्ति (जनसांख्यिकीय लाभांश) बन सकता है - या एक जनसांख्यिकीय आपदा अगर सरकार अपने बढ़ते कार्यबल के लिए शिक्षा और नौकरियां प्रदान करने में विफल रहती है। भारत उस "टिपिंग पॉइंट" पर पहुंच गया है जहां बड़ी संख्या में युवा श्रमिक श्रम बल में प्रवेश कर बचत और निवेश को बढ़ाकर बड़े आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। चीन ने 1980 के दशक की शुरुआत में उस बिंदु पर पहुंचकर एक बड़ी आर्थिक छलांग लगाई थी। अब बीजिंग की एक-संतान नीति के परिणामस्वरूप बढ़ती जनसंख्या 2030 तक इसकी वृद्धि को धीमा कर सकती है।

आर्थिक सर्वेक्षण 2016-17: भारतीय जनसांख्यिकी पर मुख्य बातें

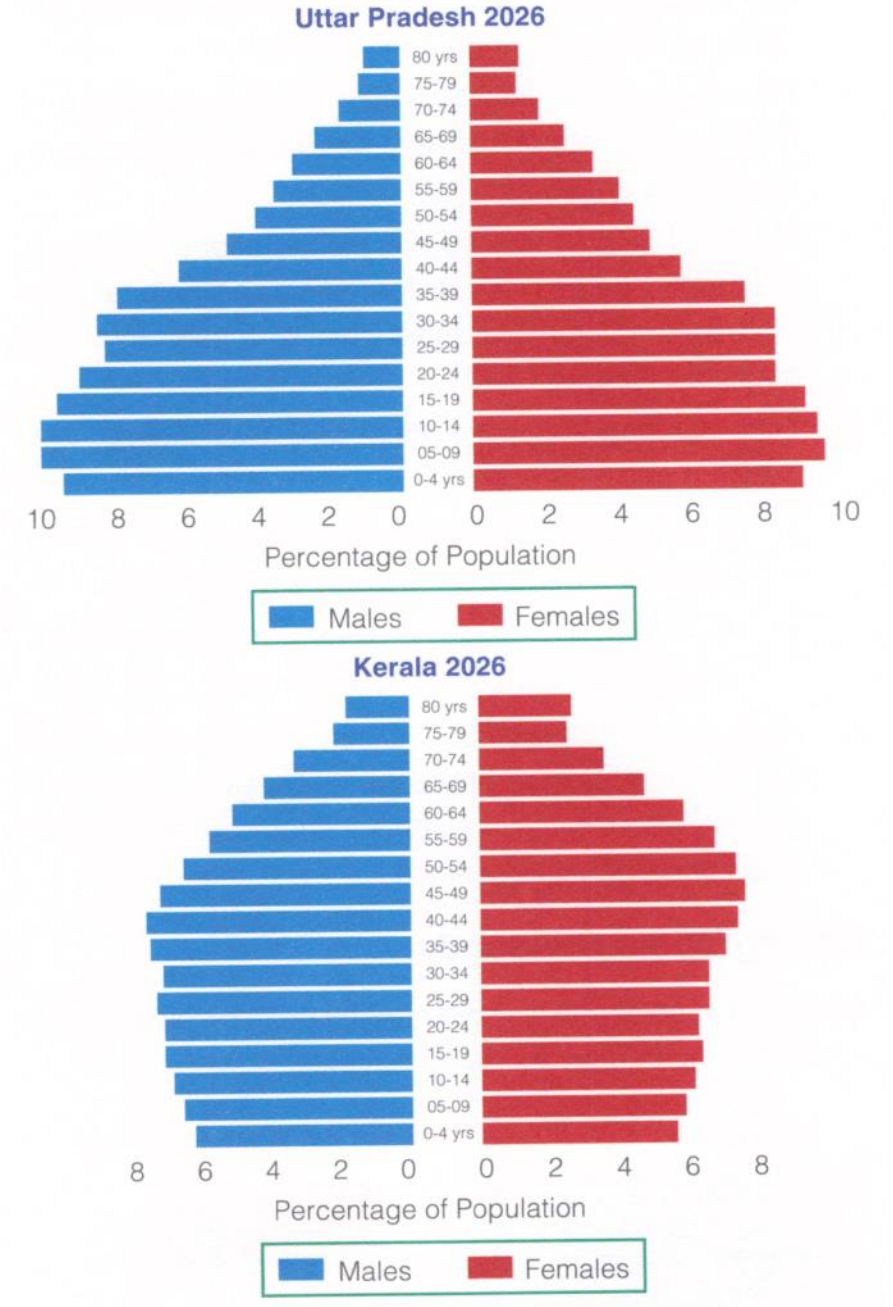

- भारत का जनसांख्यिकीय चक्र ब्राजील, कोरिया और चीन से लगभग 10-30 वर्ष पीछे है, जो दर्शाता है कि अगले कुछ दशक भारत के लिए उनके प्रति व्यक्ति आय स्तर तक पहुंचने का अवसर प्रस्तुत करते हैं।
- भारत में कार्यशील आयु (WA) और गैर-कार्यशील आयु (NWA) का अनुपात 1.7 के शिखर पर पहुँचने की संभावना है, जो ब्राज़ील और चीन की तुलना में काफ़ी कम है, क्योंकि दोनों देशों में कम से कम 25 वर्षों तक यह अनुपात 1.7 से अधिक रहा है। भारत अन्य देशों की तुलना में काफ़ी लंबे समय तक अपने शिखर के क़रीब रहेगा। इसके विकास पर निम्नलिखित प्रभाव होंगे:
  - भारत को केवल जनसांख्यिकीय लाभांश के आधार पर पूर्वी एशियाई देशों की तरह वृद्धि में उछाल या मंदी की उम्मीद नहीं करनी चाहिए।
  - साथ ही, भारत लंबे समय तक (जनसांख्यिकीय लाभांश के कारण) विकास के उच्च स्तर को बनाए रखने में सक्षम हो सकता है।
- प्रायद्वीपीय भारत (पश्चिम बंगाल, केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश) और आंतरिक राज्यों (मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और बिहार) के बीच एक स्पष्ट अंतर है। प्रायद्वीपीय राज्यों में कामकाजी आयु वर्ग की आबादी में तीव्र वृद्धि और गिरावट के साथ एक ऐसा पैटर्न दिखाई देता है जो चीन और कोरिया के करीब है।
- प्रायद्वीपीय और आंतरिक राज्यों के WA/NWA अनुपात में यह विभाजन उनके TFR के स्तरों में अंतर के कारण देखा जा सकता है।
- भारत के लिए जनसांख्यिकीय लाभांश का शिखर सम्पूर्ण भारत के लिए 2020 के प्रारम्भ में होगा; प्रायद्वीपीय भारत के लिए 2020 के आसपास, जबकि आंतरिक भारत के लिए यह शिखर 2040 के आसपास होगा।
- इस प्रकार, जनसांख्यिकी की दृष्टि से, दो भारत हैं, जिनकी नीतिगत चिंताएं अलग-अलग हैं:
  - भारत में शीघ्र ही वृद्धावस्था शुरू हो जाएगी, जहां बुजुर्गों और उनकी आवश्यकताओं पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता होगी;
  - एक युवा भारत जहां शिक्षा, कौशल और रोजगार के अवसर प्रदान करने पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए।
- यद्यपि, भारत के भीतर विविधता के कारण इनमें से कुछ चिंताओं को अधिक श्रम गतिशीलता के माध्यम से दूर करने का लाभ मिलता है, जिससे जनसांख्यिकीय असंतुलन में कमी आएगी।

जनसांख्यिकीय विभाजन

यदि भारत की जनसांख्यिकी द्वारा प्रस्तुत अद्वितीय अवसर का उपयोग किया जाए तो इसके निम्नलिखित लाभ हो सकते हैं:

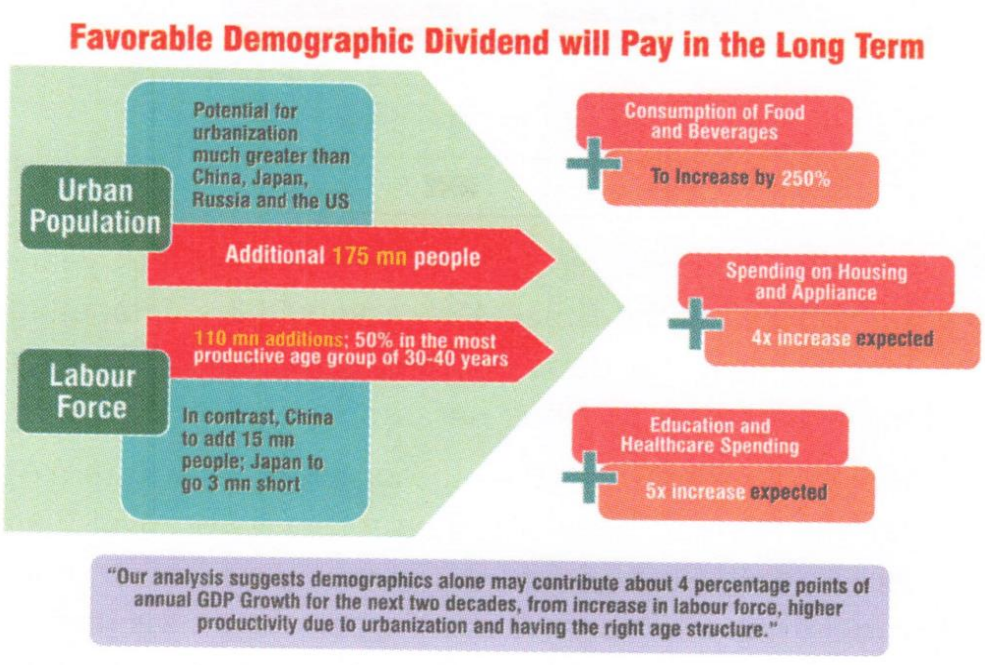

- युवाओं की ऊर्जा और जीवंतता भारत की अर्थव्यवस्था, विज्ञान और प्रौद्योगिकी को अग्रणी बनाएगी, क्योंकि युवाओं में जोखिम लेने और नवीन विचारों की क्षमता है।
- भारत की कुल जनसंख्या में कार्यशील आयु वर्ग की जनसंख्या का हिस्सा 2050 तक लगभग 65% होने की उम्मीद है।
- यह देखा गया है कि जिन राज्यों में कार्यशील आयु वर्ग की जनसंख्या में वृद्धि अधिक है, वहां अन्य राज्यों की तुलना में तेजी से विकास हुआ है।
- ऐसा माना जाता है कि जनसांख्यिकीय लाभांश भारत की प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि में प्रति वर्ष 2% अंक जोड़ सकता है।
- निर्भरता अनुपात कम होगा और इस प्रकार भारत को बड़ी श्रम शक्ति से बचत और निवेश का लाभ मिलेगा।

जनसांख्यिकीय आपदा

- हालाँकि, अगर आर्थिक लाभ समावेशी नहीं हैं, रोज़गार प्रदान करने में सक्षम नहीं हैं और युवाओं के जीवन स्तर को ऊपर उठाने में सक्षम नहीं हैं, तो सामाजिक समरसता बुरी तरह प्रभावित हो सकती है। शिक्षा, रोज़गार के अवसरों और स्वास्थ्य सेवा की कमी जनसांख्यिकीय लाभांश पर पूर्वोक्त चर्चा में मौजूद इस उज्ज्वल तस्वीर को धुंधला कर सकती है। एक अकुशल, कम उपयोग वाली, निराश युवा आबादी आर्थिक विकास को पटरी से उतार सकती है जिससे जनसांख्यिकीय आपदा आ सकती है जो सद्भाव को कमज़ोर कर सकती है और हिंसा को जन्म दे सकती है।
- शिक्षा के मोर्चे पर रिपोर्ट कार्ड बेहद खराब है और साक्षरता दर उप-सहारा अफ्रीका सहित कई विकासशील देशों से भी पीछे है। शिक्षा व्यवस्था भ्रष्टाचार में डूबी हुई है और शिक्षकों की अनुपस्थिति दर 25% है जो दुनिया में युगांडा के बाद दूसरे स्थान पर है। प्रथम की रिपोर्ट के अनुसार, पाँचवीं कक्षा के केवल लगभग 50% छात्र ही दूसरी कक्षा की किताबें पढ़ पाते हैं और बुनियादी जोड़-घटाव में भी फेल हो जाते हैं।
- इसी प्रकार, स्वास्थ्य संबंधी बुनियादी ढांचा खराब है और कुपोषित बच्चों की संख्या लगभग 48% है, जो कल इस जनसांख्यिकीय लाभांश का हिस्सा बनने जा रहे हैं।
- भारत ने पिछले कुछ वर्षों में आठ उद्योगों में संगठित क्षेत्र में सबसे कम नौकरियाँ पैदा की हैं। 2017 में असंगठित क्षेत्र की नौकरियों का योगदान बढ़कर 93% हो जाएगा और नौकरीपेशा लोगों में से 60% को पूरे साल कोई रोज़गार नहीं मिला, जो दीर्घकालिक अल्प-रोज़गार का संकेत देता है।
- ऑटोमेशन हमारे श्रम बल के लिए अगला बड़ा ख़तरा बनता जा रहा है, जैसा कि मैकिन्से ने बताया है कि 50-60% आईटी कार्यबल अप्रासंगिक हो जाएगा। इसका असर अभी से दिखने लगा है क्योंकि हमारा अग्रणी आईटी क्षेत्र लोगों की छंटनी कर रहा है और भर्तियाँ रोक रहा है। इसके अलावा, अमेरिका में नौकरी की तलाश में भारतीयों की संख्या में दस गुना वृद्धि हुई है।
- कंपनी का गठन सबसे धीमी गति से हो रहा है तथा इसकी दर 2009 जैसी ही है, तथा मौजूदा कंपनियां 2% की दर से बढ़ रही हैं, जो कई वर्षों में सबसे कम है।
- ऐसा माना जा रहा है कि 2045 तक हम उत्पादक से ज़्यादा अनुत्पादक उत्पादन करेंगे और बेरोज़गारों से ज़्यादा बेरोज़गार होंगे। हम पिछले दो दशकों से 'जनसांख्यिकीय लाभांश' की स्थिति में हैं और अगले दो दशकों में हम 'जनसांख्यिकीय दुःस्वप्न' की स्थिति में प्रवेश करने वाले हैं।

इस जनसांख्यिकीय लाभांश को जनसांख्यिकीय आपदा में न बदलने के लिए, एकमात्र उपाय सेवाओं और विनिर्माण क्षेत्र में अधिक रोज़गार सुनिश्चित करना है, और शिक्षा प्रणाली में सुधार की दिशा में आगे बढ़ना होगा। कम रोज़गार सृजन के दुष्परिणाम हिंसक विरोध प्रदर्शनों की संख्या में वृद्धि, आतंकवाद में वृद्धि और अन्य कानून-व्यवस्था की स्थिति के रूप में पहले से ही स्पष्ट हैं।

जनसंख्या और गरीबी

- जनसंख्या की तीव्र वृद्धि लोगों की गरीबी को बढ़ाती है क्योंकि जनसंख्या वृद्धि राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर से अधिक होती है। जनसंख्या वृद्धि न केवल गरीबी उन्मूलन में कठिनाई पैदा करती है, बल्कि प्रति व्यक्ति आय को भी कम करती है जिससे गरीबी बढ़ती है। प्रति व्यक्ति आय में इस कमी का भारी बोझ गरीब लोगों पर पड़ता है। इसके विपरीत, जैसा कि पहले बताया गया है, गरीबी भी जनसंख्या विस्फोट का कारण बनती है।

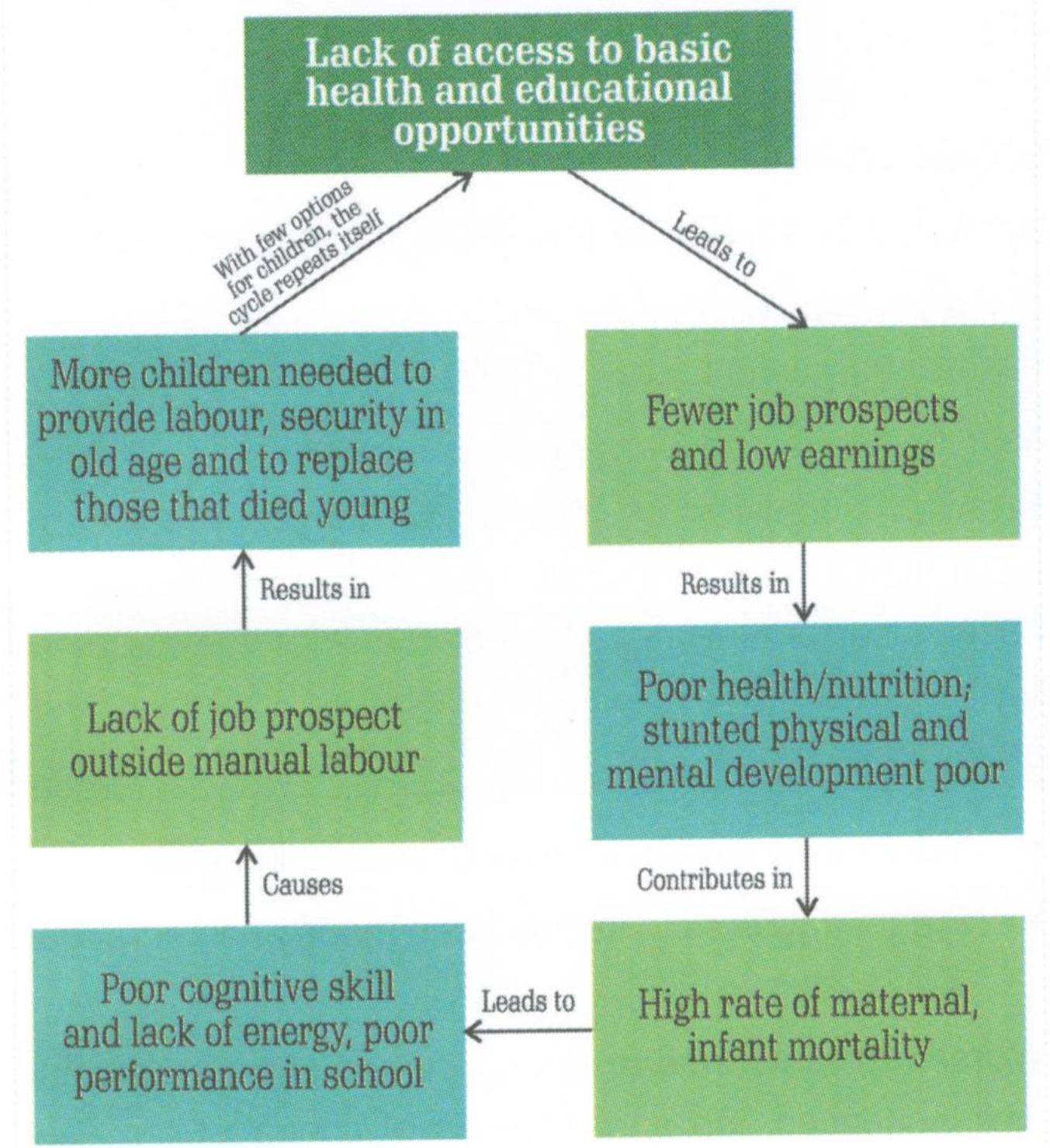

- स्वास्थ्य सेवा और शिक्षा तक कम पहुँच के कारण, अगली पीढ़ी के लिए भी यही चक्र दोहराए जाने की संभावना है। गरीबी उनके सामाजिक-आर्थिक विकास को प्रभावित करती है, जिसे जनसंख्या वृद्धि के प्रमुख कारणों में से एक माना जाता है।

जनसंख्या नियंत्रण

- परिवार नियोजन: परिवार नियोजन का तात्पर्य परिवार के संसाधनों के अनुसार परिवार के सदस्यों की संख्या को सीमित रखना और परिवारों के बीच उचित अंतराल रखना है। परिवार नियोजन कार्यक्रम में गतिविधियों का एक

समन्वित समूह शामिल होता है जो एक निश्चित अवधि तक चलता रहता है और महिलाओं के प्रजनन व्यवहार में बदलाव लाता है। इसका उद्देश्य महिलाओं और उनके बच्चों के स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार लाना और जन्म दर को कम करके देश की जनसंख्या वृद्धि दर को कम करना है।

परिवार नियोजन के घटकों में शामिल हैं:

- सूचना, शिक्षा और संचार गतिविधियाँ
- गर्भनिरोधक: आपूर्ति और सेवाएँ
- कार्मिकों का प्रशिक्षण.
- अनुसंधान
- प्रशासनिक अवसंरचना
- 1977 से भारतीय परिवार कार्यक्रम को परिवार कल्याण कार्यक्रम के रूप में जाना जाता है, जिसमें समस्या के प्रति कल्याणकारी दृष्टिकोण पर अधिक जोर दिया जाता है।

भारत में जनसंख्या नीति

- भारत में आधी सदी से भी ज़्यादा समय से एक आधिकारिक जनसंख्या नीति लागू है। वास्तव में, भारत शायद 1952 में इस तरह की नीति की स्पष्ट घोषणा करने वाला पहला देश था। जनसंख्या नीति ने राष्ट्रीय परिवार नियोजन कार्यक्रम के रूप में ठोस रूप धारण किया। इस कार्यक्रम के व्यापक उद्देश्य एक ही रहे हैं - जनसंख्या वृद्धि की दर और स्वरूप को सामाजिक रूप से वांछनीय दिशाओं में प्रभावित करने का प्रयास करना। शुरुआती दिनों में, इसका सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य विभिन्न जन्म नियंत्रण विधियों को बढ़ावा देकर जनसंख्या वृद्धि की दर को धीमा करना, जन स्वास्थ्य मानकों में सुधार लाना और जनसंख्या एवं स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों के बारे में जन जागरूकता बढ़ाना था।
- राष्ट्रीय आपातकाल (1975-76) के दौरान परिवार नियोजन कार्यक्रम को गहरा धक्का लगा। इस दौरान सामान्य संसदीय और कानूनी प्रक्रियाएँ स्थगित कर दी गईं और सरकार द्वारा सीधे जारी किए गए (संसद द्वारा पारित किए बिना) विशेष कानून और अध्यादेश लागू रहे। इस दौरान सरकार ने जनसंख्या वृद्धि दर को कम करने के प्रयासों को तेज़ करने के लिए सामूहिक नसबंदी का एक ज़बरदस्ती कार्यक्रम शुरू किया। यहाँ नसबंदी से तात्पर्य पुरुष नसबंदी (पुरुषों के लिए) और महिला नसबंदी (महिलाओं के लिए) जैसी चिकित्सा प्रक्रियाओं से है जो गर्भधारण और प्रसव को रोकती हैं। बड़ी संख्या में, ज़्यादातर गरीब और असहाय लोगों की जबरन नसबंदी की गई और निचले स्तर के सरकारी अधिकारियों (जैसे स्कूल शिक्षक या कार्यालय कर्मचारी) पर इस उद्देश्य से आयोजित शिविरों में लोगों को नसबंदी के लिए लाने का भारी दबाव था। इस कार्यक्रम का व्यापक विरोध हुआ और आपातकाल के बाद चुनी गई नई सरकार ने इसे छोड़ दिया।
- आपातकाल के बाद राष्ट्रीय परिवार नियोजन कार्यक्रम का नाम बदलकर राष्ट्रीय परिवार कल्याण कार्यक्रम कर दिया गया और अब दबाव डालने वाले तरीकों का इस्तेमाल बंद कर दिया गया। अब इस कार्यक्रम के सामाजिक-जनसांख्यिकीय उद्देश्यों का एक व्यापक दायरा है। वर्ष 2000 की राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के तहत नए दिशानिर्देश तैयार किए गए।
- **राष्ट्रीय जनसंख्या नीति:** भारत ने 2000 में एक राष्ट्रीय नीति तैयार की थी जिसमें प्राप्त किए जाने वाले कुछ सामाजिक-जनसांख्यिकीय लक्ष्यों को सूचीबद्ध किया गया था। इस नीति में अधूरी मांगों को पूरा करने के लिए कुछ तात्कालिक उद्देश्यों की पहचान की गई थी ताकि जनसंख्या स्थिरीकरण और अन्य लक्ष्य हासिल किए जा सकें।

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति (एनपीपी), 2000

- इस नीति का उद्देश्य जनसंख्या नियंत्रण के क्षेत्र में शिक्षा, पंचायती राज संस्थाओं, महिला सशक्तिकरण और सामुदायिक पहल को एकीकृत करना है। इसमें परिवार नियोजन शब्द के स्थान पर परिवार कल्याण शब्द का प्रयोग किया गया है।

उद्देश्य:

- तत्काल उद्देश्य गर्भनिरोधक, स्वास्थ्य देखभाल बुनियादी ढांचे और स्वास्थ्य कर्मियों की अपूर्ण आवश्यकताओं को पूरा करना और बुनियादी प्रजनन और बाल स्वास्थ्य देखभाल के लिए एकीकृत सेवा प्रदान करना है।
- मध्यम अवधि का उद्देश्य 2010 तक कुल प्रजनन दर को प्रतिस्थापन स्तर पर लाना है।
- दीर्घकालिक उद्देश्य 2045 तक स्थिर जनसंख्या प्राप्त करना।

व्यापक लक्ष्य:

- बुनियादी प्रजनन और बाल स्वास्थ्य सेवाओं, आपूर्ति और बुनियादी ढांचे की अपूर्ण आवश्यकताओं को पूरा करके शिशु मृत्यु दर को 30 तक कम करना, बाल, प्रजनन स्वास्थ्य।
- 14 वर्ष की आयु तक स्कूली शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य बनायी जाए तथा प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर लड़के और लड़कियों दोनों के लिए स्कूल छोड़ने की दर को 20 प्रतिशत से नीचे लाया जाए।
- मातृ मृत्यु दर को 100 तक कम करना।
- सभी टीकाकरण से रोकथाम योग्य रोगों के विरुद्ध बच्चों का सार्वभौमिक टीकाकरण प्राप्त करना।
- 80% संस्थागत प्रसव और 100% प्रशिक्षित पेशेवरों द्वारा प्रसव तथा जन्म, मृत्यु, विवाह और गर्भावस्था का 100% पंजीकरण प्राप्त करना।
- इसमें 2045 तक स्थिर जनसंख्या का लक्ष्य रखा गया था (जिसे बाद में 2065 तक बढ़ा दिया गया)
- गर्भनिरोधकों की उपलब्धता में सुधार और स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण सेवाओं को मज़बूत करना। इसकी कई कारणों से आलोचना की गई है क्योंकि यह छोटे परिवार के मानदंड के लिए नकद आधारित प्रोत्साहन प्रदान करता है, लेकिन मौद्रिक प्रोत्साहन सामाजिक मानदंडों पर आधारित आदतों और व्यवहारों को नहीं बदलते। इसके अलावा, एनपीपी-2000 में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका पर ज़ोर दिया गया था, लेकिन उनकी भूमिका क्या होगी, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है। इसने किसी भी प्रकार के दबाव को अस्वीकार कर दिया, लेकिन कई राज्य सरकारों ने अपनी दबाव नीति जारी रखी। दबाव का इस्तेमाल ज़्यादातर हतोत्साहन के रूप में किया जाता है। राज्य सरकारों द्वारा लगाए गए हतोत्साहन अक्सर गरीब और महिला विरोधी होते हैं।

सरकारी योजनाएँ:

- जनसंख्या स्थिरीकरण के लिए सरकार ने मुख्य रूप से परिवार नियोजन गतिविधियों पर ध्यान केंद्रित किया है। सरकार के प्रयासों के कारण, देश की दशकीय वृद्धि दर 1991-2001 की अवधि के 21.54% से घटकर 2001-11 में 17.64% हो गई है। परिवार कल्याण कार्यक्रम परिवार नियोजन प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण घटक हैं और पिछले कुछ वर्षों में विभिन्न परिवार कल्याण कार्यक्रम शुरू किए गए हैं:
- जननी सुरक्षा योजना जिसका उद्देश्य नकद सहायता प्रदान करके संस्थागत प्रसव को बढ़ावा देकर मातृ एवं नवजात मृत्यु दर को कम करना है।
- एकीकृत बाल विकास योजना छह वर्ष से कम आयु के बच्चों के समग्र विकास, टीकाकरण देखभाल और पोषण तथा गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माताओं के लिए उचित पोषण और स्वास्थ्य शिक्षा को बढ़ावा देती है।
- सार्वभौमिक टीकाकरण कार्यक्रम.
- प्रधानमंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा योजना का उद्देश्य तृतीयक स्तर की स्वास्थ्य सेवा की उपलब्धता और सामर्थ्य में असंतुलन को दूर करना है।
- Indira Gandhi Matritva Sahyog Yojana.
- आशा कार्यकर्ताओं द्वारा लाभार्थियों के घर पर गर्भ निरोधकों की होम डिलीवरी की योजना।
- जन्मों में अंतराल सुनिश्चित करने के लिए आशा कार्यकर्ताओं हेतु योजना।

- गर्भावस्था परीक्षण किट को आशा किट का अभिन्न अंग बनाया गया है।

महिला सशक्तिकरण:

महिलाओं को उनकी शिक्षा, नौकरी और गर्भनिरोधक के तरीकों के बारे में विकल्प देना, जनसंख्या नियंत्रण के लिए नसबंदी, गर्भपात और अन्य ज़बरदस्ती के तरीकों जैसे जबरन और 'त्वरित समाधान' के बजाय ज़्यादा व्यावहारिक विकल्प साबित हुआ है। आर्थिक सर्वेक्षण (2015) ने आर्थिक विकास के लिए महिला सशक्तिकरण का आह्वान किया।

महिला सशक्तिकरण के सकारात्मक बाह्य प्रभाव:

- इससे बाल विवाह की समस्या का समाधान होगा जो देश में उच्च प्रजनन दर के पीछे प्रमुख कारणों में से एक है।
- शिक्षा से प्रजनन दर में कमी आएगी और महिलाओं को बच्चों के बीच अंतराल की आवश्यकता को समझने में मदद मिलेगी।
- महिलाओं को सशक्त बनाना तथा प्रसव जैसे मामलों में उनकी राय लेना एक स्वस्थ और जागरूक समाज सुनिश्चित करेगा।
- महिला सशक्तिकरण से भारतीय समाज में व्याप्त पितृसत्तात्मक मानसिकता के विरुद्ध महिलाओं को आवाज मिलेगी।

शिक्षा:

- शिक्षा व्यक्ति और समाज की रीढ़ है। एक बार शिक्षित होने पर लोग बढ़ती जनसंख्या से जुड़े मुद्दों को समझ जाते हैं। खासकर महिलाओं की शिक्षा चमत्कार कर सकती है। सैंपल रजिस्ट्रेशन ऑफिस द्वारा 2010 में किए गए सर्वेक्षण के अनुसार:
  - निरक्षर महिलाओं की प्रजनन दर लगभग 3.4 थी।
  - साक्षर महिलाओं की प्रजनन दर 2.2 थी।
  - 10वीं तक पढ़ी महिलाओं की प्रजनन दर 1.9 थी।
  - 12वीं तक पढ़ी महिलाओं की प्रजनन दर 1.6 थी।

अधिक जनसंख्या पर शिक्षा के सकारात्मक बाह्य प्रभाव:

- साक्षरता दर का जनसंख्या के सामाजिक-आर्थिक विकास के साथ सीधा संबंध है, जो बेहतर जीवन स्तर और जनसंख्या नियंत्रण को बेहतर ढंग से समझने में मदद करता है।
- शिक्षा के कारण अक्सर विवाह देर से होते हैं, जिससे प्रजनन क्षमता कम हो जाती है और परिणामस्वरूप बच्चों की संख्या कम हो जाती है।
- महिला सशक्तिकरण के लिए शिक्षा एक प्रमुख आवश्यकता है जो जनसंख्या नियंत्रण में मदद करती है।

इस प्रकार, शिक्षा जनसंख्या नियंत्रण के संबंध में उदार निर्णय लेने में लोगों को सशक्त बनाने और इसके विरुद्ध रूढ़िवादी मानसिकता को दूर करने में सहायक होती है। लोगों को अधिक बच्चे पैदा करने के दुष्परिणामों के बारे में भी जागरूक करने की आवश्यकता है।

दत्तक ग्रहण:

- एक अनुमान के अनुसार, भारत में 3 करोड़ से ज़्यादा अनाथ बच्चे हैं। इन बच्चों के तस्करी या अवैध कामों में धकेले जाने का ख़तरा बना रहता है, और शिक्षा की कोई गुंजाइश नहीं होती। इन बच्चों को गोद लेने से, बढ़ती जनसंख्या की समस्या से निपटने के अलावा, इन बच्चों को माता-पिता का प्यार और बेहतर भविष्य भी मिल सकता है।

सामाजिक उपाय:

जनसंख्या विस्फोट एक सामाजिक समस्या है जो समाज में गहराई से जड़ें जमा चुकी है, इसलिए ऐसी गहरी जड़ें जमा चुकी बुराइयों को दूर करने के लिए सामाजिक प्रयासों की आवश्यकता है।

- भारत में बाल विवाह की बुराई को रोकने के लिए कानून द्वारा लड़कियों के लिए कानूनी विवाह तय किया गया है, जिसके प्रभावी कार्यान्वयन की आवश्यकता है।
- महिलाओं को सशक्त बनाने से उन्हें अपनी प्रजनन दर के संबंध में निर्णय लेने में मदद मिलेगी।
- महिलाओं को शिक्षित करने से जनसंख्या के साक्षरता स्तर और निर्णय लेने की उनकी क्षमता में सुधार करने में मदद मिलेगी।
- सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना ताकि लोगों को बुढ़ापे में दूसरों पर निर्भर न रहना पड़े। इसके अलावा, बेरोज़गारी और अन्य कारक भी अधिक बच्चे पैदा करने की इच्छा को रोकते हैं।
- लोगों को विभिन्न सरकारी उपायों और गर्भनिरोधक विधियों आदि के बारे में जागरूक करने की आवश्यकता है।
- महिला नसबंदी से ध्यान हटाने की जरूरत है, जो कुल नसबंदी का लगभग 97% है, तथा पुरुष नसबंदी को बढ़ावा देने की जरूरत है, जो कम आक्रामक और कम दर्दनाक है।

आर्थिक उपाय:

आर्थिक उपाय आर्थिक सशक्तिकरण में सहायक होंगे जिससे जीवन स्तर में सुधार होगा और समग्र सामाजिक विकास में मदद मिलेगी। इस प्रकार यह लोगों को अधिक जागरूक बनाता है और उन्हें अधिक जनसंख्या के दुष्प्रभावों के बारे में समझाता है।

कुछ आर्थिक उपाय इस प्रकार हैं:

- ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों की आवश्यकता है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में छिपे हुए रोजगार पर रोक लगाने की आवश्यकता है।
- आज भी कृषि में आधे से अधिक कार्यबल कार्यरत है, अतः कृषि के विकास से बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार उपलब्ध कराने में मदद मिलेगी।
- जीवन स्तर में सुधार बड़े परिवार के मानदंड के लिए बाधक है, क्योंकि उच्च जीवन स्तर वाले लोग छोटा परिवार रखना पसंद करते हैं।
- शहरीकरण को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है क्योंकि इससे प्रजनन दर को कम करने में मदद मिलती है।
- विकास की कमी से गरीबी, निरक्षरता, भेदभाव, जागरूकता की कमी, चिकित्सा सुविधाओं का अभाव बढ़ता है, जिससे जनसंख्या वृद्धि बढ़ती है।

इस प्रकार आर्थिक उपाय प्रजनन दर को कम करने में सहायक होंगे तथा उच्च जनसंख्या के विरुद्ध प्रोत्साहन के रूप में कार्य करेंगे।

निष्कर्ष

- बढ़ती जनसंख्या दुनिया भर में एक गंभीर समस्या बनती जा रही है और इससे सामाजिक, पर्यावरणीय और मानव स्वास्थ्य संबंधी प्रतिकूल समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। जनसंख्या वृद्धि दर किसी देश में जन्म दर, मृत्यु दर और प्रवासन पर निर्भर करती है और देश में तेज़ी से बढ़ रही है। जैसे-जैसे अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्र अधिक संसाधनों की माँग करते हैं, खाद्य उत्पादन के लिए वनों की कटाई, शहरों में भीड़भाड़ और भयानक बीमारियों का प्रसार होता है।
- स्वतंत्रता के बाद से सरकार द्वारा जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने के लिए कई योजनाएँ और कार्यक्रम शुरू किए गए हैं और जनसंख्या वृद्धि दर को कम करने में कुछ हद तक सफलता भी मिली है। उन विशेष क्षेत्रों में, जहाँ अभी भी जनसंख्या वृद्धि दर अधिक है, अधिक केंद्रित दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है।

गरीबी और विकास संबंधी मुद्दे

- मानव इतिहास के आरंभ से ही गरीबी की समस्या उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व पर आधारित किसी भी प्रकार के वर्ग या समाज की अंतर्निहित और सतत विशेषता रही है।
- इसे एक सामाजिक घटना के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसमें समाज का एक वर्ग अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताएं जैसे भोजन, घर, स्वच्छ पेयजल, आश्रय, शौचालय आदि भी प्राप्त करने में असमर्थ है। जब समाज का एक बड़ा हिस्सा जीवन के न्यूनतम स्तर (मामूली निर्वाह स्तर) से वंचित होता है, तो उस समाज को बड़े पैमाने पर गरीबी से ग्रस्त कहा जाता है।
- इसके अलावा, गरीबी एक ऐसी स्थिति या दशा है जिसमें किसी व्यक्ति या समुदाय के पास समाज में स्वीकार्य माने जाने वाले न्यूनतम जीवन स्तर और खुशहाली का आनंद लेने के लिए वित्तीय संसाधनों और आवश्यक वस्तुओं का अभाव होता है।

- इसके अलावा, गरीबी को, उदाहरण के लिए, खराब स्वास्थ्य, शिक्षा या कौशल के निम्न स्तर, काम करने में असमर्थता या अनिच्छा, विघटनकारी या अव्यवस्थित व्यवहार की उच्च दर और अदूरदर्शिता से जोड़ा गया है। हालाँकि ये विशेषताएँ अक्सर गरीबी में पाई जाती हैं, लेकिन गरीबी की परिभाषा में इन्हें शामिल करने से इनके और अपनी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने में असमर्थता के बीच का संबंध अस्पष्ट हो जाएगा।
- गरीब लोग वंचित परिवेश में रहते हैं। पर्याप्त भोजन और पोषण के अभाव में, कई गरीब लोग कुपोषण से पीड़ित हैं। स्वच्छ पेयजल के अभाव में, उन्हें या तो प्यासा रहना पड़ता है या गंदा पानी पीना पड़ता है। छोटे बच्चों से बाल मजदूरी भी करवाई जाती है। उचित स्वच्छता और शौचालयों के अभाव में, उन्हें खुले मैदानों में शौच करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। पेट विहीन लोगों के पास खुले में रहने के अलावा कोई विकल्प नहीं है।

भारत में गरीबी: एक ऐतिहासिक विवरण

- भारत में औपनिवेशिक काल के दौरान गरीबी बहुत ज़्यादा थी। कई अकालों और महामारियों ने लाखों लोगों की जान ले ली। आज़ादी के बाद से ही आबादी का एक बड़ा हिस्सा गंभीर संकट में जी रहा है। 1956-57 में, जब अच्छी फसल हुई थी, भारत की गरीबी दर 65% पाई गई।
- गरीबी का मूल औपनिवेशिक विरासत में निहित है, जिसने भारतीय अर्थव्यवस्था को 1750 के दशक में वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद के 25% से घटाकर 2% से भी कम कर दिया। कृषि से लेकर उद्योग तक, सभी क्षेत्रों में व्यवस्थित शोषण और भेदभावपूर्ण निर्यात-आयात ने भारतीय अर्थव्यवस्था को जर्जर कर दिया। 1900-1947 के

दौरान अत्यंत कम विकास दर ने भारतीयों के सामाजिक-आर्थिक जीवन को तहस-नहस कर दिया, जिससे कई स्थानिक, अकाल और सूखे की स्थिति पैदा हुई और लाखों लोगों की जान चली गई।

- मानव इतिहास में ऐसी लूट अभूतपूर्व थी। इसने आने वाली पीढ़ियों को त्रस्त कर दिया, जिससे आज़ादी के समय 90% तक गरीबी फैल गई, और उसके बाद भी, आबादी को अभावों से उबारने के लिए हर संभव प्रयास करना पड़ा।
- ब्रिटिश पूंजीवाद और उसकी व्यापारिक बाजार अर्थव्यवस्था से प्रेरित भय मनोविकृति ने भारत को समाजवादी सिद्धांत अपनाने पर मजबूर कर दिया, जो समतावाद सुनिश्चित करने के बजाय उल्टा साबित हुआ। "सीमित प्रवेश वाला समाजवाद और बिना निकास वाला बाजारवाद" की गहरी जड़ें जमाए बैठी धारणा के कारण, 1990 के दशक के बाद के आर्थिक सुधार भी अपेक्षित रूप से लागू नहीं हो सके।
- फिर भी, यह नहीं कहा जा सकता कि गरीबी उन्मूलन में उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई है। 1990 के दशक की शुरुआत में 45% गरीबी रेखा से नीचे की आबादी से वर्तमान में 22% तक पहुँचना इतने विशाल देश के लिए कोई कम उपलब्धि नहीं है। जब तक भारत वांछित सतत विकास लक्ष्य 1 को प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक इसी तरह के निरंतर प्रयासों को और आगे बढ़ाने की आवश्यकता है।

गरीबी के कारण

ऐतिहासिक-आर्थिक

धीमी आर्थिक वृद्धि और विकास

- खराब सरकारी नीतियों के कारण धीमी आर्थिक वृद्धि वाले देश में व्यापक गरीबी व्याप्त है। स्थिर या धीमी गति से होने वाला आर्थिक विकास भी गरीबी का कारण बनता है। ऐतिहासिक रूप से धीमी आर्थिक वृद्धि भारत में गरीबी के प्रमुख कारणों में से एक रही है।

बढ़ती बेरोजगारी

- यदि जनसंख्या वृद्धि और रोज़गार का अनुपात असंतुलित हो, तो इससे लोगों में बेरोज़गारी पैदा हो सकती है और यह गरीबी का एक प्रमुख कारण है। किसी भी देश में तेज़ी से बढ़ती और अनियंत्रित जनसंख्या, बेरोज़गारी से जुड़ी गरीबी का सबसे बड़ा ख़तरा है।

कृषि उत्पादन में गिरावट

- यह अप्रत्याशित मौसम के कारण हो सकता है। कृषि उत्पादन में कमी से मुद्रास्फीति की कुछ गंभीर समस्याएँ पैदा होती हैं। कोई भी देश मज़बूत कृषि ढांचे के बिना आर्थिक रूप से संतुलित नहीं रह सकता। वार्षिक कृषि उपज किसी देश की अर्थव्यवस्था के एक बड़े हिस्से को नियंत्रित करती है और गरीबी को दूर रखने के लिए अधिशेष की आवश्यकता होती है।

बुनियादी ढांचे की कमी

- बुनियादी ढाँचागत विकास आर्थिक विकास को भी गति देता है और इस प्रकार किसी भी स्थान की गरीबी की स्थिति को निर्धारित करता है। बुनियादी ढाँचे की कमी विकास और रोज़गार सृजन को सीधे प्रभावित करती है, जिससे उत्पादकता कम होती है और गरीबी बढ़ती है।

विषम औद्योगीकरण

- उद्योग, विशेष रूप से आसपास के स्थानीय लोगों के लिए, रोजगार के व्यापक अवसर प्रदान करते हैं। किसी एक राज्य या स्थान में उद्योगों का संकेन्द्रण उस विशेष स्थान पर रोजगार को बढ़ाता है, लेकिन वंचित क्षेत्रों को घोर गरीबी का सामना करना पड़ता है। अपर्याप्त औद्योगीकरण वाले क्षेत्र गरीबी का कारण बनते हैं क्योंकि उस क्षेत्र में रोजगार के अवसर अपर्याप्त हो जाते हैं। असंगठित क्षेत्र की अंशकालिक नौकरियों की तुलना में उद्योग अच्छे वेतन वाली नौकरियां भी प्रदान करते हैं।

आवश्यक वस्तुओं की कमी

- बुनियादी ज़रूरतों के उत्पादन में किसी भी तरह की कमी देशव्यापी गरीबी का कारण बनती है। खाद्य और गैर-खाद्य आवश्यक वस्तुओं की कमी से बचने के लिए हमेशा 'अतिरिक्त उत्पादन' किया जाना चाहिए।

संसाधनों का अभाव

- संसाधनों का प्राकृतिक वंचन, साथ ही जबरन या परिस्थितिजन्य वंचन, गरीबी का कारण बन सकता है। उचित संसाधनों और अवसरों का अभाव लोगों को उनकी इच्छित जीवनशैली और रोज़गार के विकल्पों से वंचित कर उन्हें गरीबी की ओर धकेलता है। उदाहरण के लिए, वनवासियों का वनों से अलगाव उन्हें गरीबी की ओर धकेलता है।

धन और आय का संकेंद्रण

- धन और संसाधनों के असमान संकेंद्रण वाले देश में, समान वितरण वाले देश की तुलना में तीव्र गरीबी का खतरा कहीं अधिक होता है। असमान संकेंद्रण एक चरम स्थिति को जन्म देता है जहाँ कुछ लोग अत्यधिक धनी होते हैं और कई लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने को मजबूर होते हैं। ऐसा असंतुलन किसी भी देश की समग्र अर्थव्यवस्था और विकास के लिए अच्छा नहीं है।

कम उपयोग किए गए प्राकृतिक संसाधन

- प्राकृतिक संसाधन हमें ईश्वर की देन हैं और प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर स्थान को धन्य माना जाता है। इसलिए, किसी भी स्थान के प्राकृतिक संसाधनों की पूरी तरह से खोज और उनका दोहन करके उनका पूर्ण आर्थिक लाभ जन कल्याण के लिए प्राप्त किया जाना आवश्यक है। यह सुनिश्चित करना सरकार की प्राथमिकता होनी चाहिए कि प्राकृतिक संसाधनों के कम उपयोग के कारण किसी भी स्थान पर गरीबी की गुंजाइश न रहे।

उच्च मुद्रास्फीति

- आर्थिक मुद्रास्फीति न केवल गरीबों को बल्कि समाज के मध्यम वर्ग को भी प्रभावित करती है। इसका मतलब है कि ज़्यादा लोग सीमांत गरीबी रेखा के नीचे आ जाएँगे। उच्च मुद्रास्फीति किसी भी राष्ट्र के लिए बेहद हानिकारक होती है और समाज के सभी वर्गों को प्रभावित करती है। किसी देश में कम विकास दर के साथ उच्च मुद्रास्फीति बड़े पैमाने पर रोज़गार के नुकसान का कारण बन सकती है और लोगों को गरीबी की ओर धकेल सकती है।

सामाजिक-राजनीतिक

अस्पृश्यता जैसी सामाजिक बुराइयाँ

- अस्पृश्यता एक अनुचित सामाजिक प्रथा है जो आज भी हमारे देश के कुछ पिछड़े इलाकों में व्याप्त है और कुछ निचली जातियों के लोगों को उनके लोकतांत्रिक अधिकारों से वंचित करती है। उन्हें समाज से बहिष्कृत कर गरीबी की ओर धकेला जाता है। उन्हें सामान्य रोज़गार के अवसरों का लाभ उठाने की अनुमति नहीं है और उन्हें मैला ढोने जैसे अमानवीय काम करने के लिए मजबूर किया जाता है।

जातिवाद

- जाति व्यवस्था समाज में लोगों को (उनके काम के आधार पर) अलग करती है और उन्हें अपनी जाति से बाहर जाकर रोज़गार पाने की इजाज़त नहीं देती। उदाहरण के लिए, किसी निम्न जाति के व्यक्ति को व्यापारी या कारोबारी बनने की इजाज़त नहीं दी जाती। यह व्यवस्था गरीबों को और गरीब और अमीरों को और अमीर बनाती है। यह असंतुलित और अनुचित व्यवस्था गरीबी का एक और प्रमुख कारण है।

सत्ता का दुरुपयोग

- जब सत्ता का दुरुपयोग होता है, तो उसका दृष्टिकोण हमेशा अभिजात वर्ग के पक्ष में होता है और वह कभी भी दलितों और गरीबों की मदद नहीं करती। एक भ्रष्ट सरकार हमेशा समाज के गरीब वर्ग को यथास्थिति में रखना चाहती है ताकि जनता पर अधिक नियंत्रण बना रहे। भ्रष्ट देशों में गरीबी का यह एक प्रमुख कारण है।

व्यापक अज्ञानता और निरक्षरता

- अशिक्षा गरीबी का एक और बड़ा कारण है। अशिक्षित लोग अपनी पूरी क्षमता का उपयोग नहीं कर पाते और इस प्रकार उनकी कमाई के रास्ते सीमित हो जाते हैं। वे प्रतिस्पर्धी समाज में शिक्षित लोगों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाते और इसलिए गरीबी में ही रहते हैं। अशिक्षा लोगों में अज्ञानता भी पैदा करती है। वे आधुनिक समाज द्वारा प्रदान किए जाने वाले सभी संभावित अवसरों से अनभिज्ञ रह जाते हैं और अपना जीवन अभावग्रस्तता में बिताते हैं।

अधिक जनसंख्या

- किसी भी स्थान पर अधिक जनसंख्या रोजगार क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा को बढ़ाती है। बहुत अधिक लोग बहुत कम के पीछे भागते हैं, जिससे अभाव पैदा होता है, परिणामस्वरूप गरीबी बढ़ती है, प्रतिस्पर्धा बढ़ती है और अवसर घटते हैं, जिससे श्रम उत्पादकता और मजदूरी दोनों कम हो जाती है।

अवसरों की असमानता

- समाज में किसी भी कारण से व्याप्त असमानता गरीबी का कारण बन सकती है। उपलब्ध अवसर समाज में सभी को समान रूप से प्रदान किए जाने चाहिए। असमानता के कारण समाज के कमज़ोर वर्गों के अवसरों का अनुचित हनन होता है, जिससे वे और अधिक असुरक्षित हो जाते हैं।

भौगोलिक

उच्च जनसंख्या घनत्व

- किसी क्षेत्र का जनसंख्या घनत्व भी उसके गरीबी के ग्राफ को निर्धारित करता है। घनी आबादी वाले क्षेत्रों में संसाधनों की कमी और अत्यधिक बोझ होता है, इसलिए गरीबी के मामले में उन्हें लाल रंग से चिह्नित किया जाता है।

मिट्टी की उर्वरता

- किसी भी देश के सभी क्षेत्रों में मिट्टी की उर्वरता एक समान नहीं होती और जगह-जगह अलग-अलग होती है। उपजाऊ क्षेत्रों में कृषि उपज प्रचुर मात्रा में होती है, जबकि बंजर भूमि स्वाभाविक रूप से गरीबी की ओर धकेल दी जाती है।

उपजाऊ भूमि का असमान वितरण

- भौगोलिक दृष्टि से, उपजाऊ भूमि असमान रूप से वितरित है और यह प्राकृतिक रूप से बंजर भूमि में गरीबी का एक प्रमुख कारण भी है। उपजाऊ भूमि स्थानीय लोगों के लिए पर्याप्त कृषि रोजगार उत्पन्न करती है और उन्हें जीविकोपार्जन के लिए नौकरी के अवसरों की तलाश नहीं करनी पड़ती। बंजर भूमि स्थानीय लोगों को कृषि क्षेत्र से पूरी तरह वंचित कर देती है और इस रोजगार के अवसर को छीन लेती है, जो अशिक्षित ग्रामीणों के बीच रोजगार के लोकप्रिय विकल्पों में से एक है।

परिवर्तनीय कृषि उत्पादन

- कृषि उत्पादन मौसम और साल-दर-साल बदलता रहता है। एक अच्छा साल अच्छी पैदावार का कारण बनता है, जबकि सूखा और अन्य प्राकृतिक आपदाएँ कभी-कभी उत्पादन को सीमित कर सकती हैं। यह परिवर्तनशीलता कठिन समय में गरीबी का कारण भी बनती है।

पानी की बाढ़

- बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाएँ कृषि भूमि को पूरी तरह नष्ट कर सकती हैं और कृषि उपज पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती हैं। इससे सामान्य जीवनशैली बाधित होगी और देश में गरीबी की स्थिति पैदा होगी।

सूखा

- गरीबी का एक और कारण सूखा है। लंबे समय तक सूखा पड़ने से कृषि भूमि और समग्र कृषि उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अधिकांश देशों में, विशेष रूप से वर्षा पर निर्भर सिंचाई खेती में, सूखा गरीबी का एक स्थायी कारण है।

मौसमी वर्षा का अभाव

- मौसमी वर्षा में कोई भी असामान्यता गंभीर गरीबी की समस्याएँ पैदा कर सकती है। पूर्वानुमानित वर्षा के अभाव में कृषि उत्पादन में बाधा उत्पन्न होती है और परिणामस्वरूप मुद्रास्फीति से संबंधित गरीबी उत्पन्न होती है।

प्रशासनिक

कुशासन

- खराब प्रशासन के कारण संसाधनों का पूरा उपयोग नहीं हो पाता और लालफीताशाही के कारण कई परियोजनाएँ अटक जाने से कई अवसर नष्ट हो जाते हैं। खराब कारोबारी माहौल निवेश और रोज़गार सृजन में बाधा डालता है।

उचित शिक्षा और कौशल का अभाव

- बढ़ती अर्थव्यवस्था के लिए शिक्षा निश्चित रूप से आवश्यक है, लेकिन प्रासंगिक शिक्षा उससे भी ज़्यादा महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए, छात्रों को किताबी ज्ञान के बजाय तकनीकी और व्यावसायिक कौशल ज़्यादा दिए जाने चाहिए, जिससे उन्हें तकनीकी नौकरियाँ पाने में मदद मिलेगी और आम जनता में बेरोज़गारी कम होगी और गरीबी कम होगी।

बढ़ती प्रतिस्पर्धा

- जिस समाज में योग्यता का स्तर ऊँचा होता है, उसे नौकरी पाने के मामले में बढ़ती प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। इससे शिक्षित आबादी में भी प्रतिस्पर्धा बढ़ती है और परिणामस्वरूप बेरोजगारी बढ़ती है। इस सरकार को बढ़ते शिक्षा मानकों के अनुसार, विशेष रूप से शहरों में, पर्याप्त रोजगार के अवसर पैदा करने चाहिए।

अधिक मांग और कम आपूर्ति

- गरीबी मुक्त राष्ट्र के निर्माण के लिए मांग-आपूर्ति के संबंध को संतुलित रखना होगा। संतुलित मांग-आपूर्ति की कुंजी जनसंख्या नियंत्रण और संसाधनों का अधिकतम उपयोग है। गरीबी मुक्त राष्ट्र के लिए मानव संसाधन प्रबंधन से कोई बच नहीं सकता।

खुलापन और अनुकूलनशीलता

- ग्रामीण आबादी आमतौर पर पिछड़ी मानसिकता की होती है और आधुनिकीकरण के साथ तालमेल बिठाने से इनकार करती है। इससे उनकी आर्थिक स्थिति में बदलाव लाने और गरीबी उन्मूलन में कोई खास मदद नहीं मिलती। गरीबी को जड़ से खत्म करने के लिए आम जनता की खुली सोच और अनुकूलनशीलता एक महत्वपूर्ण गुण है। जन जागरूकता कार्यक्रम चलाना सरकार की प्रमुख जिम्मेदारी है।

शहरों की ओर बड़े पैमाने पर पलायन

- शहरों में भीड़भाड़ को सीमित करना ज़रूरी है। यह तभी संभव है जब ग्रामीणों का शहरों की ओर बड़े पैमाने पर पलायन रोका जाए। ज़्यादातर ग्रामीण लोग बेहतर रोज़गार की तलाश में अपने गाँव छोड़कर शहरों की ओर पलायन करते हैं। अगर सरकार ग्रामीण इलाकों का पर्याप्त विकास कर सके और ग्रामीण आबादी को अच्छे रोज़गार के साथ-साथ शिक्षा के अवसर भी उपलब्ध करा सके, तो वे संतुष्ट रहेंगे और अपने गाँवों में ही रहेंगे। इससे शहरी इलाकों में बोझ कम होगा और शहरी गरीबी का अनुपात भी कम होगा।

गरीबी माप

- गरीबी और गरीबी रेखा का निर्धारण हमेशा से एक जटिल और विवादास्पद कार्य रहा है। आकलन में अपनाई गई विधियाँ, जैसे आय आधारित विधि या व्यय आधारित विधि, न्यूनतम जीवन स्तर या सम्मानजनक जीवन स्तर या संदर्भ अवधि के लिए गरीबी रेखा की टोकरी, आदि, वर्षों से पूर्ण गरीबी या सापेक्ष गरीबी के लक्ष्यीकरण के संबंध में हमेशा बहस का विषय रही हैं। इस मुद्दे को सुलझाने के लिए पिछले कुछ वर्षों में कई समितियाँ गठित की गई हैं, जिनका विवरण नीचे दिया गया है।

गरीबी आकलन समितियाँ

पूर्व स्वतंत्रता

- **भारत में गरीबी और गैर-ब्रिटिश शासन:** गरीबी का सबसे पहला आकलन दादाभाई नौरोजी ने अपनी पुस्तक 'भारत में गरीबी और गैर-ब्रिटिश शासन' में किया था। उन्होंने 1867-68 के मूल्यों के आधार पर प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष 16 रुपये से 35 रुपये तक की गरीबी रेखा तैयार की थी। उनके द्वारा प्रस्तावित गरीबी रेखा 'आटा या चावल, दाल, मटन, सब्ज़ियाँ, घी, वनस्पति तेल और नमक' से युक्त 'निर्वाह आहार' की औसत लागत पर आधारित थी।
- **राष्ट्रीय योजना समिति (एनपीसी):** 1938 में, तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष सुभाष चंद्र बोस द्वारा गठित राष्ट्रीय योजना समिति (एनपीसी) ने प्रति व्यक्ति प्रति माह 15 रुपये से 20 रुपये तक की गरीबी रेखा का अनुमान लगाया। पिछली पद्धति की तरह, एनपीसी ने भी अपनी गरीबी रेखा 'पोषण संबंधी आवश्यकताओं पर आधारित न्यूनतम जीवन स्तर' के आधार पर तैयार की।
- **बॉम्बे योजना:** बाद में 1944 में, 'बॉम्बे योजना' के लेखकों ने प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष 75 रुपये की गरीबी रेखा का सुझाव दिया।

पोस्ट-आजादी

- **योजना आयोग का कार्य समूह:** यह पहली बार योजना आयोग द्वारा 1962 में जीविका चलाने के लिए आवश्यक व्यय के न्यूनतम स्तर का अनुमान लगाने के लिए बनाया गया था। इसने भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद द्वारा 'संतुलित आहार' पर सिफारिश का उपयोग करते हुए ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 100 रुपये / माह (20 रुपये / व्यक्ति) और शहरी क्षेत्रों के लिए 125 रुपये / माह (25 रुपये / व्यक्ति) के रूप में पांच के परिवार के लिए 'राष्ट्रीय न्यूनतम उपभोग व्यय' की सिफारिश की। लेकिन इसने स्वास्थ्य और शैक्षिक व्यय को यह मानते हुए बाहर रखा कि इसे राज्य द्वारा प्रदान किया जाना है।
  वाईके अलघ के तहत टास्क फोर्स: 1962 की गरीबी रेखा का उपयोग 1960 और 1970 के दशक के दौरान राष्ट्रीय और राज्य दोनों स्तरों पर किया गया था। लेकिन इसने अपने कम आंकड़ों को तीव्र बहस में शामिल किया। इसलिए, गरीबी रेखा की समीक्षा के लिए योजना आयोग द्वारा 1979 में डॉ वाईके अलघ के तहत एक नया टास्क फोर्स बनाया गया था। इसने पोषण विशेषज्ञ समूह की सिफारिश पर अखिल भारतीय ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के लिए अलग-अलग 'औसत कैलोरी आवश्यकताओं' का अनुमान लगाया, जिसके परिणामस्वरूप शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के लिए अलग-अलग 'गरीबी रेखा की टोकरी' बनी। अनुमानित कैलोरी मान ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति प्रति दिन 2400 किलो कैलोरी और शहरी क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति प्रति दिन 2100 किलो कैलोरी निर्धारित किया गया था।
  लकड़ावाला विशेषज्ञ समूह (1993): इस पैनल ने गरीबी रेखा को फिर से परिभाषित नहीं किया और अल्गाह विशेषज्ञ समूह द्वारा परिभाषित तंत्र को बनाए रखा। बल्कि इसने आधार वर्ष 1973-74 के लिए 'अखिल भारतीय गरीबी रेखा' को 'राज्य विशिष्ट गरीबी रेखा' में विभाजित कर दिया। बाद के वर्षों के लिए 'ग्रामीण राज्य विशिष्ट गरीबी रेखा' के लिए 'उपभोक्ता मूल्य सूचकांक-कृषि श्रम' और 'शहरी राज्य विशिष्ट गरीबी रेखा' के लिए 'सीपीआई-औद्योगिक श्रमिक' को ध्यान में रखते हुए इन 'राज्यों की ग्रामीण और शहरी गरीबी रेखाओं' को अद्यतन किया गया। इसके बाद, 2005 में स्वर्गीय प्रो. सुरेश तेंदुलकर की अध्यक्षता में गठित विशेषज्ञ समूह द्वारा विभिन्न राज्यों के गरीबी अनुपातों के 'जनसंख्या आधारित भारित औसत' के माध्यम से अखिल भारतीय गरीबी अनुपात (ग्रामीण और शहरी) निकाला गया।
  इसने 'एकसमान संदर्भ अवधि' के स्थान पर 'मिश्रित संदर्भ अवधि' को अपनाया। पिछली पद्धतियों में, एक 'एकसमान संदर्भ अवधि' का उपयोग किया जाता था जिसमें सभी खाद्य और गैर-खाद्य वस्तुओं के लिए सर्वेक्षण से ठीक पहले के 30 दिन शामिल होते थे। लेकिन तेंदुलकर समूह ने 5 गैर-खाद्य वस्तुओं, जैसे कपड़े, जूते, टिकाऊ वस्तुएँ, शिक्षा और संस्थागत चिकित्सा व्यय, के लिए 'संदर्भ अवधि' को पिछले एक वर्ष में बदल दिया। अन्य मदों के लिए इसने 30 दिनों का संदर्भ बरकरार रखा। इसे 'मिश्रित संदर्भ अवधि' कहा जाता है।
- तेंदुलकर समिति ने पिछली शहरी गरीबी रेखा की टोकरी के आधार पर एक समान टोकरी (ग्रामीण और शहरी दोनों के लिए) का इस्तेमाल किया। ये बदलाव आधार वर्ष 2004-05 और उसके बाद के लिए किए गए थे। इसके परिणामस्वरूप पिछली गरीबी रेखाएँ नई गरीबी रेखाओं के साथ अतुलनीय हो गईं क्योंकि वे एक समान संदर्भ अवधि और ग्रामीण और शहरी भारत के लिए अलग टोकरियों पर आधारित थीं। गरीबी रेखा का गठन 'शहरी क्षेत्रों के लिए 32 रुपये प्रति व्यक्ति प्रति माह' और ग्रामीण क्षेत्रों के लिए '26 रुपये प्रति व्यक्ति प्रति माह' के रूप में किया गया था।
  सी. रंगराजन विशेषज्ञ समूह (2012): हालाँकि इसने गरीबी रेखा के उद्देश्य के लिए 'पाँच सदस्यों वाले परिवार के मासिक व्यय' का इस्तेमाल किया, जो ग्रामीण क्षेत्रों में 4860 रुपये और शहरी क्षेत्रों में 7035 रुपये निकला और फिर इसे पाँच से विभाजित किया गया। यह तर्क दिया जाता है कि घर का खर्च व्यक्तियों की तुलना में अधिक उपयुक्त है। एक साथ रहने से खर्च कम हो जाता है क्योंकि घर का किराया, बिजली आदि जैसे खर्च घर के सदस्यों

में विभाजित हो जाते हैं फिर, 'मिश्रित संदर्भ अवधि' के स्थान पर इसने 'संशोधित मिश्रित संदर्भ अवधि' की सिफारिश की जिसमें विभिन्न मदों के लिए संदर्भ अवधि इस प्रकार ली गई:

- कपड़े, जूते, शिक्षा, संस्थागत चिकित्सा देखभाल और टिकाऊ वस्तुओं के लिए 365 दिन,
- खाद्य तेल, अंडा, मछली और मांस, सब्जियां, फल, मसाले, पेय पदार्थ, जलपान, प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ, पान, तंबाकू और नशीले पदार्थ, और
- शेष खाद्य वस्तुओं, ईंधन और प्रकाश, विविध वस्तुओं और सेवाओं (गैर-संस्थागत चिकित्सा सहित), किराए और करों के लिए 30 दिन।

इन अनुमानों के अनुसार, 2011-12 में 30.9% ग्रामीण आबादी और 26.4% शहरी आबादी गरीबी रेखा से नीचे थी। अखिल भारतीय अनुपात 29.5% था।

विश्व बैंक के अनुसार, 2005 के अंतर्राष्ट्रीय मूल्य पर मापी गई और पीपीपी (क्रय शक्ति समता) का उपयोग करके स्थानीय मुद्रा में समायोजित 1.25 अमेरिकी डॉलर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन की गरीबी रेखा के आधार पर, भारतीय जनसंख्या का 23.6% या लगभग 276 मिलियन लोग गरीबी रेखा के अंतर्गत आते हैं। अंतर्राष्ट्रीय गरीबी रेखा, सबसे गरीब पंद्रह देशों (प्रति व्यक्ति उपभोग के संदर्भ में) की राष्ट्रीय गरीबी रेखाओं के औसत के रूप में निर्धारित की जाती है। एशियाई विकास बैंक की भी अपनी गरीबी रेखा है जो वर्तमान में 1.51 अमेरिकी डॉलर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन है।

बहुआयामी गरीबी

- बहुआयामी गरीबी सूचकांक (एमपीआई) 2010 में ऑक्सफोर्ड गरीबी और मानव विकास पहल (ओपीएचआई) और संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा विकसित किया गया था और यह आय-आधारित सूचियों से परे गरीबी का निर्धारण करने के लिए विभिन्न कारकों का उपयोग करता है। एमपीआई ने एचडीआई (मानव विकास सूचकांक) का स्थान ले लिया है।
- विकास की तरह गरीबी भी बहुआयामी है - लेकिन गरीबी के मुख्य मौद्रिक मापों में इसे पारंपरिक रूप से नजरअंदाज कर दिया जाता है।
- एमपीआई पारंपरिक आय-आधारित गरीबी मापों का पूरक है, क्योंकि यह उन गंभीर अभावों को दर्शाता है जिनका सामना प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा, स्वास्थ्य और जीवन स्तर के संबंध में करता है।

एमपीआई की गणना के लिए निम्नलिखित दस संकेतकों का उपयोग किया जाता है:

शिक्षा (प्रत्येक संकेतक को समान रूप से 1/6 अंक दिया गया है)

- स्कूली शिक्षा के वर्ष: यदि परिवार के किसी भी सदस्य ने पांच वर्ष की स्कूली शिक्षा पूरी नहीं की है तो उसे वंचित कर दिया जाएगा।
- बच्चे की स्कूल उपस्थिति: यदि कोई स्कूली आयु का बच्चा कक्षा 8 तक स्कूल नहीं जाता है तो उसे वंचित कर दिया जाएगा।

स्वास्थ्य (प्रत्येक संकेतक को समान रूप से 1/6 पर भारित किया गया है)

- बाल मृत्यु दर: यदि परिवार में किसी बच्चे की मृत्यु हो गई हो तो वंचित।
- पोषण: यदि कोई वयस्क या बच्चा, जिसके लिए पोषण संबंधी जानकारी उपलब्ध है, कुपोषित है तो उसे पोषण से वंचित रखा जाएगा।

जीवन स्तर (प्रत्येक संकेतक को 1/18 पर समान रूप से भारित किया गया है)

- बिजली: यदि घर में बिजली नहीं है तो वंचित।
- स्वच्छता: यदि घर की स्वच्छता सुविधा में सुधार नहीं किया गया तो वंचित होना पड़ेगा।
- पेयजल: यदि घर में सुरक्षित पेयजल उपलब्ध नहीं है या सुरक्षित पेयजल घर से आने-जाने की दूरी 30 मिनट से अधिक पैदल दूरी पर है तो वंचित माना जाएगा।

- फर्श: यदि घर में मिट्टी, रेत या गोबर का फर्श है तो वंचित।
- खाना पकाने का ईंधन: यदि घर में गोबर, लकड़ी या कोयले से खाना पकाया जाता है तो इससे वंचित रहना पड़ता है।
- संपत्ति स्वामित्व: यदि परिवार के पास एक से अधिक रेडियो, टीवी, टेलीफोन, बाइक, मोटरबाइक या रेफ्रिजरेटर नहीं है और कार या ट्रक नहीं है तो संपत्ति स्वामित्व से वंचित।

किसी व्यक्ति को गरीब तब माना जाता है जब वह भारित संकेतकों के कम से कम एक तिहाई से वंचित हो। गरीबी की तीव्रता उन संकेतकों के अनुपात को दर्शाती है जिनमें वह वंचित है।

- एमपीआई का उपयोग गरीबी में रहने वाले लोगों की एक व्यापक तस्वीर बनाने के लिए किया जा सकता है, और यह देशों, क्षेत्रों और दुनिया भर में तथा देशों के भीतर जातीय समूह, शहरी/ग्रामीण स्थान, साथ ही अन्य प्रमुख घरेलू और सामुदायिक विशेषताओं के आधार पर तुलना करने की अनुमति देता है।
- ये विशेषताएं एमपीआई को सबसे कमजोर लोगों - गरीबों में भी सबसे गरीब - की पहचान करने के लिए एक विश्लेषणात्मक उपकरण के रूप में उपयोगी बनाती हैं, जिससे देशों के भीतर और समय के साथ गरीबी के पैटर्न का पता चलता है, नीति निर्माताओं को संसाधनों को लक्षित करने और नीतियों को अधिक प्रभावी ढंग से डिजाइन करने में सक्षम बनाता है।

तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य: एमपीआई और एचडीआई

- जबकि एचडीआई और एमपीआई दोनों ही तीन व्यापक आयामों स्वास्थ्य, शिक्षा और जीवन स्तर का उपयोग करते हैं, एचडीआई गरीबी के प्रत्येक आयाम के लिए केवल एक संकेतक का उपयोग करता है, जबकि एमपीआई प्रत्येक के लिए एक से अधिक संकेतकों का उपयोग करता है।
- हालाँकि, मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) इस प्रकार अधिक सार्वभौमिक रूप से लागू होता है, फिर भी इसके संकेतकों की अपेक्षाकृत कम संख्या इसे पूर्वाग्रह के प्रति अधिक संवेदनशील बनाती है। वास्तव में, कुछ अध्ययनों में पाया गया है कि यह प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के प्रति कुछ हद तक पक्षपाती है। इसलिए, अन्य विकास मानदंडों की अनदेखी करने के लिए मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) की आलोचना की गई है।
- इस प्रकार, बहुआयामी गरीबी आकलन का उद्देश्य गरीबी के गैर-आय आधारित आयामों को मापना है, ताकि गरीबी और अभाव की सीमा का अधिक व्यापक मूल्यांकन किया जा सके।

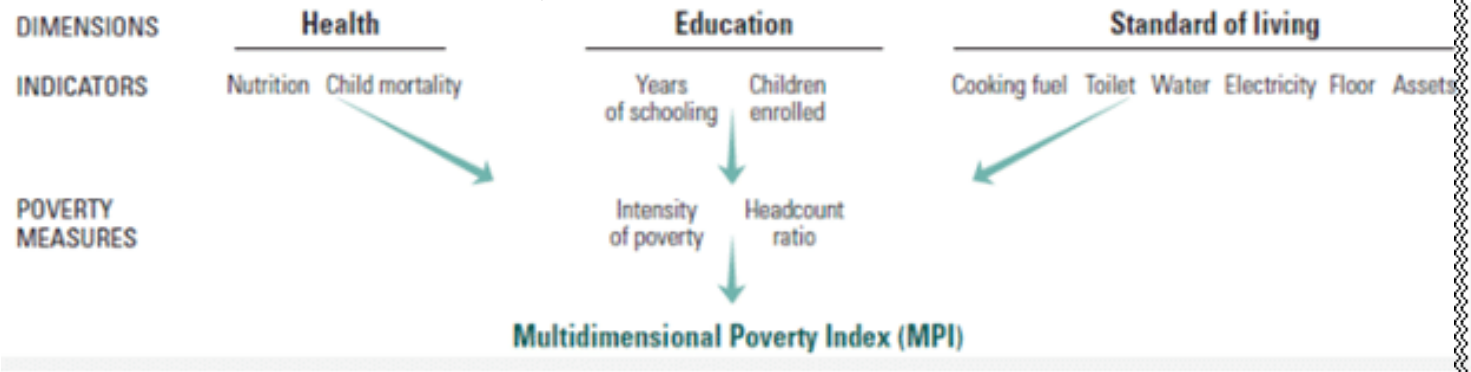

- एसडीजी को बेहतर ढंग से प्रतिबिंबित करने के लिए संशोधित एमपीआई में संभावित अतिरिक्त संकेतकों में कार्य, आवास, हिंसा, सामाजिक सुरक्षा, स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता, स्वास्थ्य प्रणाली की कार्यप्रणाली, किशोर विवाह या गर्भावस्था, ठोस अपशिष्ट निपटान, जन्म पंजीकरण, इंटरनेट पहुंच, कृषि परिसंपत्तियां और आर्थिक झटकों तथा प्राकृतिक आपदाओं से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के प्रति परिवार की संवेदनशीलता और कार्य की गुणवत्ता, तथा सशक्तिकरण या मनोवैज्ञानिक कल्याण शामिल हो सकते हैं।

गरीबी और संबंधित मुद्दे

कुपोषण

- गरीबी भूख और कुपोषण (छिपी हुई भूख) का मुख्य कारण है। पोषक तत्वों के अपर्याप्त सेवन से कुपोषण होता है, जिससे शारीरिक और मानसिक विकास बाधित होता है। बचपन में कुपोषण से रोग प्रतिरोधक क्षमता पर गंभीर असर पड़ता है और आगे चलकर भी उत्पादकता कम होती है। नवीनतम वैश्विक पोषण रिपोर्ट 2017 के अनुसार, पाँच वर्ष से कम आयु के 38% बच्चे बौनेपन (अपनी उम्र के हिसाब से बहुत कम लंबाई) के शिकार हैं; पाँच वर्ष से कम आयु के 21% बच्चे कमजोर (अपनी लंबाई के हिसाब से बहुत कम वजन) के शिकार हैं; प्रजनन आयु की 51% महिलाएँ और 75% बच्चे एनीमिया से पीड़ित हैं, जिसका माँ और बच्चे के स्वास्थ्य पर दीर्घकालिक प्रभाव पड़ता है। गरीबों के पास एकमात्र संपत्ति यानी उनका शरीर ही है, जो कुपोषण से प्रभावित होता है और उन्हें गरीबी के दुष्चक्र में फँसाता है।

बेरोजगारी

- गरीब लोग रोज़गार/काम की तलाश में गाँवों से शहरों और एक शहर से दूसरे शहर में जाते हैं। चूँकि वे ज़्यादातर अशिक्षित और अकुशल होते हैं, इसलिए उनके लिए रोज़गार के अवसर बहुत कम उपलब्ध होते हैं। बेरोज़गारी के कारण, कई गरीब लोग भीख माँगने और खुले आसमान के नीचे सोने को मजबूर हैं। जो लोग थोड़े बेहतर हालात में हैं, वे भी संसाधनों की कमी के कारण अपने कौशल को निखारने में असफल रहते हैं और अंततः कम वेतन वाली नौकरियों में फँस जाते हैं। भारत में कृषि लगभग आधी आबादी को रोज़गार देती है, लेकिन सकल घरेलू उत्पाद में इसका योगदान केवल लगभग 15% है, जिसके परिणामस्वरूप कृषि क्षेत्र पर अत्यधिक बोझ पड़ता है, जिससे कृषि उत्पादकता कम होती है और छिपी हुई बेरोज़गारी बढ़ती है।

निरक्षरता

- निरक्षर आबादी में गरीब लोगों की हिस्सेदारी ज़्यादा है। जब लोग जीवन की बुनियादी ज़रूरतों से वंचित रह जाते हैं, तो शिक्षा बेहद मुश्किल हो जाती है। शिक्षा और कौशल की कमी आधुनिक अर्थव्यवस्था में कुशल रोज़गार और भविष्य में बेहतर रोज़गार की संभावनाओं के सभी द्वार बंद कर देती है। अंततः, वे अकुशल या शारीरिक श्रम या असम्मानजनक मैला ढोने का काम करने को मजबूर हो जाते हैं।

गरीबी का स्त्रीकरण

- महिलाएँ गरीबी की सबसे ज़्यादा शिकार हैं। गरीबी पुरुषों की तुलना में महिलाओं को ज़्यादा प्रभावित करती है। गरीब महिलाओं की कुल संख्या गरीब पुरुषों की कुल आबादी से ज़्यादा है। इसके कारणों में कम आय, लैंगिक असमानता, लैंगिक वेतन असमानता, विरासत में वित्तीय या संपत्ति के अधिकारों का अभाव आदि शामिल हैं। वे उचित आहार, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा से काफ़ी हद तक वंचित हैं। संपत्ति के अधिकारों का अभाव उन्हें आर्थिक रूप से परिवार के पुरुष सदस्यों पर निर्भर बनाता है।
- विशेषकर तलाकशुदा, परित्यक्ता और विधवा महिलाओं की हालत बेहद खराब है। वे भिखारी या दरिद्रता में जीवन जीने को मजबूर हैं।

स्वास्थ्य, स्वच्छता और सफाई

- गरीब लोगों को न तो स्वच्छता और उचित सफाई व्यवस्था के बारे में पर्याप्त जानकारी होती है और न ही उसे बनाए रखने के साधन। उन्हें उचित स्वच्छता न बनाए रखने के हानिकारक परिणामों की भी जानकारी नहीं होती। स्वच्छ पेयजल, स्वच्छता और उचित सफाई व्यवस्था की उपलब्धता भी उनके स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। स्वास्थ्य सेवा महंगी होने के कारण, वे खराब स्वास्थ्य, कम उत्पादकता और वेतन हानि के दुष्चक्र में फंस जाते हैं।

कमजोर नागरिक समाज

- कमज़ोर नागरिक समाज और सरकारी धन पर एनजीओ की निर्भरता के कारण, वे गरीबों के मुद्दों की उचित पैरवी नहीं कर पाते। इसके अलावा, एनजीओ के एजेंडे पर बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ कब्ज़ा कर लेती हैं, जो अपने हितों की पूर्ति के लिए उन्हें धन मुहैया कराती हैं।

अपराध और सामाजिक तनाव

- गरीबी की पहचान अक्सर आय असमानता और अमीरों और गरीबों के बीच राष्ट्रीय संपत्ति के असमान वितरण से होती है। कुछ अमीर लोगों के हाथों में धन का संकेंद्रण सामाजिक अशांति और अपराधों को जन्म देता है। धन का निष्पक्ष या समान वितरण लोगों के जीवन स्तर में समग्र सुधार लाता है।

बाल श्रम, आधुनिक गुलामी और बंधुआ मजदूरी

- गरीबी बच्चों को स्कूल छोड़कर अपने परिवार के लिए पैसे कमाने के लिए मजबूर करती है। मासूम बच्चों को लंबे समय तक अनुपयुक्त कामकाजी परिस्थितियों में काम करने के लिए मजबूर किया जाता है, जिससे उनके स्वास्थ्य पर गंभीर असर पड़ता है। बाल श्रम निषेध कानूनों के बावजूद, हम अक्सर छोटे बच्चों को सड़क किनारे ढाबों पर, घरेलू नौकरों के रूप में, या हानिकारक उद्योगों आदि में काम करते हुए पाते हैं।
- कई गरीब परिवार ऐसे भी हैं जो इतने कर्ज में डूबे हैं कि उन्हें उचित वेतन और अच्छी कामकाजी परिस्थितियों के बिना बंधुआ मजदूरों की तरह काम करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। गरीबी ने उन्हें आधुनिक गुलाम बना दिया है - जिनके पास न कोई अधिकार है और न ही कोई आवाज।

भारत के विकास पर प्रभाव

- गरीब लोग दलित और वंचित वर्ग हैं। उन्हें उचित पोषण और आहार नहीं मिलता। आज़ादी के 65 साल बाद भी उनकी स्थिति में पर्याप्त सुधार नहीं हुआ है।

शहरी भारत में गरीबी

- अधिकांश विकासशील और विकासशील देशों की तरह, शहरी आबादी में भी लगातार वृद्धि हो रही है। गरीब लोग रोज़गार/वित्तीय गतिविधियों और बेहतर जीवन की तलाश में ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों और कस्बों की ओर पलायन करते हैं।
- अनुमान है कि 8 करोड़ से ज़्यादा शहरी लोगों की आय गरीबी रेखा (बीपीएल) से नीचे है। इसके अलावा, लगभग 4.5 करोड़ शहरी लोग ऐसे हैं जिनकी आय गरीबी रेखा के करीब है।
- शहरी गरीबों की आय का स्तर बेहद अस्थिर है। उनमें से एक बड़ी संख्या या तो अस्थायी मज़दूर हैं या स्व-रोज़गार में लगे हैं।
- उनकी अस्थिर आय के कारण बैंक और वित्तीय संस्थान उन्हें ऋण देने से हिचकिचाते हैं। भारत के सभी शहरी गरीब लोगों का लगभग 40% हिस्सा पाँच राज्यों में रहता है: उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, ओडिशा और मध्य प्रदेश।
- चार महानगरों (दिल्ली, कोलकाता, चेन्नई और मुंबई) की कुल जनसंख्या का लगभग 35% हिस्सा झुग्गी-झोपड़ियों में रहता है।
- झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाले लोगों का एक बड़ा हिस्सा निरक्षर है। शहरी गरीबी की समस्या से निपटने के लिए उठाए गए कदमों से अपेक्षित परिणाम नहीं मिले हैं। शहरों को एक टिकाऊ और रहने योग्य स्थान बनाने के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

ग्रामीण भारत में गरीबी

- कहा जाता है कि ग्रामीण भारत भारत का हृदय है। वास्तव में, ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों का जीवन घोर गरीबी से भरा है। तमाम प्रयासों के बावजूद, गरीब ग्रामीणों की स्थिति संतोषजनक नहीं है। सामाजिक-आर्थिक और जाति जनगणना (2011) की रिपोर्ट निम्नलिखित तथ्य उजागर करती है:

- **अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति:** सभी ग्रामीण परिवारों में से लगभग 18.46 प्रतिशत अनुसूचित जाति से संबंधित हैं, और लगभग 10.97 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति से संबंधित हैं।
- **आय का प्रमुख स्रोत:** ग्रामीण लोगों के लिए शारीरिक श्रम और खेती-बाड़ी आय के प्रमुख स्रोत हैं। लगभग 51 प्रतिशत परिवार आर्थिक रूप से शारीरिक श्रम में लगे हुए हैं और लगभग 30 प्रतिशत परिवार खेती-बाड़ी में लगे हुए हैं।
- **वंचित:** जनगणना के अनुसार लगभग 48.5 प्रतिशत ग्रामीण परिवार वंचित हैं।
- **संपत्ति:** केवल 11.04 प्रतिशत परिवारों के पास रेफ्रिजरेटर है, जबकि लगभग 29.69 प्रतिशत ग्रामीण घरों में वाहन (दोपहिया वाहन, नाव आदि सहित) है।
- **आयकर:** केवल 4.58 प्रतिशत ग्रामीण परिवार आयकर का भुगतान करते हैं।
- **भूमि स्वामित्व:** लगभग 56 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों के पास भूमि नहीं है।
- **ग्रामीण घरों का आकार:** लगभग 54 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों के घर एक या दो कमरों के हैं। इनमें से लगभग 13 प्रतिशत एक कमरे के घर में रहते हैं।

विकास और प्रगति

विकासोन्मुखी दृष्टिकोण

- शुरुआत में, भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में उत्पादन और प्रति व्यक्ति आय बढ़ाकर समग्र रूप से देश की अर्थव्यवस्था के विकास पर ज़ोर दिया गया था। यह माना गया था कि तीव्र आर्थिक विकास का लाभ स्वतः ही

गरीब लोगों तक पहुँचेगा और उन्हें अधिक रोज़गार के अवसर, उच्च आय और अधिक मज़दूरी प्रदान करके उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाएगा। सरकार ने 1952 में सामुदायिक विकास परियोजना (सीडीपी) शुरू की। इस परियोजना के तहत किसी विशेष क्षेत्र के पूरे समुदाय को एक समरूप इकाई के रूप में लिया गया था। आर्थिक विकास पर ज़ोर दिया गया था। इस परियोजना में कृषि, पशुपालन, ग्रामीण और लघु उद्योगों, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, सामाजिक शिक्षा आदि में सुधार जैसे कार्यक्रम शामिल थे।

- इसके अलावा, विभिन्न भूमि सुधार उपायों जैसे कि जमींदारी प्रथा का उन्मूलन, काश्तकारी सुधार, भूमि स्वामित्व की अधिकतम सीमा तथा छोटे भूस्वामियों और भूमिहीन लोगों को अधिशेष भूमि का वितरण आदि के माध्यम से भू-स्वामित्व के स्वरूप में परिवर्तन लाने का प्रयास किया गया।
- इसके अलावा, उन्नीस साठ के दशक में, गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम उन जगहों और फसलों पर केंद्रित थे जहाँ इनसे उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हो सकती थी। इन महत्वपूर्ण कार्यक्रमों में क्रमशः 1960 और 1964 में शुरू किए गए गहन कृषि जिला कार्यक्रम (IADP) और गहन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम (IAAP) शामिल थे।
- साठ के दशक के मध्य से, सरकार ने मुख्य रूप से उच्च उपज देने वाली किस्मों (एफटीवाईवी) के बीज, रासायनिक उर्वरक, ट्रैक्टर, जल पंप आदि के उपयोग के रूप में आधुनिक प्रौद्योगिकी को अपनाकर कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए समृद्ध किसानों और बड़े भूस्वामियों की मदद की है।
- समय के साथ यह महसूस किया गया कि इन विकास कार्यक्रमों का लाभ मुख्यतः ग्रामीण आबादी के विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग को ही मिला है। भूमि सुधार उपायों का प्रभाव भी बहुत सीमित रहा। गरीबों की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। बल्कि, ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में उनकी संख्या में वृद्धि हुई।

सामाजिक न्याय के साथ विकास

- जब यह देखा गया कि विकासोन्मुखी दृष्टिकोण विकास के लाभों को गरीबों तक पहुंचाने में असफल रहा है, तो पंचवर्षीय योजनाओं में सामाजिक न्याय पर विशेष जोर दिया जाने लगा।
- सत्तर के दशक की शुरुआत से ही विकास का मूलमंत्र सामाजिक न्याय के साथ विकास बन गया। पिछड़े क्षेत्रों और आबादी के पिछड़े तबके, जैसे छोटे और सीमांत किसान, भूमिहीन मजदूर और विशेष रूप से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोगों के लाभ के लिए विशेष कार्यक्रम शुरू किए गए।

समावेशी विकास

- जब विकास का लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुँचता है, तो ऐसे विकास को समावेशी विकास कहा जाता है। लेकिन भारत में ट्रिकल डाउन ग्रोथ मॉडल लोगों को गरीबी से बाहर निकालने में विफल रहा है, बल्कि इसने आर्थिक सुधारों के बाद अमीर और गरीब के बीच की खाई को और चौड़ा कर दिया है। इससे अत्यधिक गरीबी वाले क्षेत्र पैदा हुए हैं, जहाँ जीवन स्तर निराशाजनक है और बुनियादी सेवाओं तक पहुँच बहुत कम या बिल्कुल नहीं है।
- विश्व आर्थिक मंच द्वारा जारी 'समावेशी वृद्धि एवं विकास रिपोर्ट 2017' में समावेशी विकास सूचकांक में भारत को 79 विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में 60वां स्थान दिया गया है, जो पड़ोसी देशों चीन और पाकिस्तान से भी नीचे है।

सतत विकास

- सतत विकास वह विकास है जो भविष्य की पीढ़ियों की अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता से समझौता किए बिना वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करता है।
- बदलती सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, तकनीकी और पारिस्थितिक स्थितियां प्राकृतिक संसाधन आधार पर नये दबाव डालेंगी और इसके दुरुपयोग या अति प्रयोग की संभावना हमेशा बनी रहेगी।
- इस प्रकार, स्थायित्व के लिए एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता है जिसमें प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण यथासंभव स्थानीय समुदायों के पास हो, जो उन संसाधनों पर निर्भर हैं; और समुदाय के भीतर निर्णय

प्रक्रिया यथासंभव सहभागी, खुली और लोकतांत्रिक हो। जितना अधिक ऐसा होगा, हम उतना ही अधिक सतत विकास की ओर बढ़ेंगे क्योंकि गरीब विकास की कीमत चुकाते हैं और अमीर बिना किसी लागत के पूरा लाभ उठाते हैं।

- सतत विकास लक्ष्यों में पहले दो लक्ष्यों के रूप में भूख और गरीबी को समाप्त करने के संकल्प के साथ यह नागरिक समाज के लिए एक बड़ी सफलता रही है।
- **लक्ष्य 1:** हर जगह गरीबी के सभी रूपों को समाप्त करना
- **लक्ष्य 2:** भुखमरी को समाप्त करना, खाद्य सुरक्षा और बेहतर पोषण प्राप्त करना तथा टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देना।

- जलवायु परिवर्तन से गरीब लोग सबसे अधिक प्रभावित होते हैं और सतत विकास की दिशा में उठाए गए कदम उन्हें इस दुख से बाहर निकालने में काफी मददगार साबित होंगे।
- सतत विकास की दिशा में सरकार द्वारा उठाए गए कदम इस प्रकार हैं:

1. पेरिस समझौते का अनुसमर्थन
2. भारत में स्वच्छ विकास तंत्र परियोजनाएं
3. जलवायु परिवर्तन पर राज्य कार्य योजनाएँ
4. कोयला उपकर और राष्ट्रीय स्वच्छ ऊर्जा कोष
5. जलवायु परिवर्तन के लिए राष्ट्रीय अनुकूलन कोष

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा लोकप्रिय बनाया गया नारा "सबका साथ सबका विकास", जिसका अर्थ है "सामूहिक प्रयास, समावेशी विकास", भारत के राष्ट्रीय विकास एजेंडे की आधारशिला है।

वित्तीय समावेशन

- आज़ादी के 70 साल बाद भी, भारतीय आबादी का एक बड़ा हिस्सा बैंकिंग सेवाओं से वंचित है। इस समस्या के कारण निम्न आय वर्ग के लोगों में वित्तीय अस्थिरता और निजी साहूकारों पर निर्भरता बढ़ी है, क्योंकि उनकी वित्तीय उत्पादों और सेवाओं तक पहुँच नहीं है।

- गरीबों के पास कोई विकल्प न होने के कारण वे बहुत ऊंची ब्याज दरों पर साहूकारों से उधार लेने को मजबूर हो जाते हैं और हमेशा के लिए कर्ज में डूब जाते हैं।
- सरकार ने जन धन योजना का शुभारम्भ मुख्य रूप से तीन सबसे महत्वपूर्ण तात्कालिक आवश्यकताओं के लिए भारतीय ग्रामीण और अर्ध-ग्रामीण क्षेत्रों के वित्तीय समावेशन पर ध्यान केंद्रित करते हुए किया:
- पैसे बचाने की आदत डालने के लिए एक मंच बनाना ।
- औपचारिक ऋण अवसर उपलब्ध कराना।
- सार्वजनिक सब्सिडी और कल्याणकारी कार्यक्रमों में खामियों और खामियों को दूर करना।

बिना किसी अतिरिक्त शुल्क वाले खातों की शुरुआत, बिज़नेस कॉरेस्पोंडेंट के माध्यम से गैर-शाखा ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सेवा, भुगतान बैंक आदि ने भारत में वित्तीय समावेशन को बढ़ावा दिया है। किसान क्रेडिट कार्ड और ओवरड्राफ्ट सुविधाओं ने भी किसानों के बीच ऋण लेने को औपचारिक रूप दिया है।

क्षमता दृष्टिकोण

- क्षमता दृष्टिकोण को पहली बार 1980 के दशक में भारतीय अर्थशास्त्री और दार्शनिक अमर्त्य सेन ने व्यक्त किया था।
- क्षमता दृष्टिकोण को व्यक्तियों की उस प्रकार के जीवन को प्राप्त करने की क्षमता के नैतिक महत्व पर ध्यान केंद्रित करने के विकल्प द्वारा परिभाषित किया जाता है, जिसे वे महत्व देते हैं।
- किसी व्यक्ति की अच्छा जीवन जीने की क्षमता को मूल्यवान 'व्यक्तित्व और कार्यों' के समूह के संदर्भ में परिभाषित किया जाता है, जैसे कि अच्छे स्वास्थ्य में रहना या दूसरों के साथ प्रेमपूर्ण संबंध रखना, जिन तक उसकी वास्तविक पहुंच हो।
- क्षमता दृष्टिकोण सीधे तौर पर उस जीवन स्तर पर केंद्रित होता है जिसे व्यक्ति वास्तव में प्राप्त करने में सक्षम होता है। जीवन स्तर का विश्लेषण 'कार्यक्षमता' और 'क्षमता' की मूल अवधारणाओं के संदर्भ में किया जाता है।
- कार्यकलाप 'होने और करने' की अवस्थाएँ हैं, जैसे कि सुपोषित होना, आश्रय होना। इन्हें उन वस्तुओं से अलग किया जाना चाहिए जिनका उपयोग इन्हें प्राप्त करने के लिए किया जाता है (जैसे 'साइकिल चलाना' और 'बाइक रखना' अलग-अलग हैं)।
- क्षमता उन मूल्यवान कार्यों के समूह को संदर्भित करती है जिन तक किसी व्यक्ति की प्रभावी पहुँच होती है। इस प्रकार, किसी व्यक्ति की क्षमता विभिन्न प्रकार के जीवन के बीच - विभिन्न प्रकार के कार्यों के संयोजनों के बीच चयन करने की व्यक्ति की प्रभावी स्वतंत्रता का प्रतिनिधित्व करती है - जिसका वह मूल्यांकन करने का कारण रखता है। यह विश्लेषण को जीवन के विशिष्ट पहलुओं से संबंधित कार्यों के समूह पर केंद्रित करने की अनुमति देता है, उदाहरण के लिए, साक्षरता, स्वास्थ्य या राजनीतिक स्वतंत्रता की क्षमताएँ।)
- 'गरीबी' को अच्छे जीवन जीने की क्षमता से वंचित होने के रूप में समझा जाता है, और 'विकास' को क्षमता विस्तार के रूप में समझा जाता है।

वैश्वीकरण और गरीबी: एक आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य

- बढ़ते एकीकरण के रूप में वैश्वीकरण, हालाँकि व्यापार और निवेश एक महत्वपूर्ण कारण है जिसके कारण हाल के दशकों में गरीबी और वैश्विक असमानता को कम करने में इतनी प्रगति हुई है। लेकिन अक्सर अनदेखी की जाने वाली इस प्रगति का यही एकमात्र कारण नहीं है, राष्ट्रीय नीतियाँ, सुदृढ़ संस्थाएँ और राजनीतिक स्थिरता भी मायने रखती हैं।
- वैश्वीकरण के दौर में गरीबी में दीर्घकालिक गिरावट के ज़रिए कल्याण में वृद्धि देखी गई है। 1973 में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली आबादी का अनुपात 55 प्रतिशत था, जिसके बाद से इसमें लगातार गिरावट आई है।

- वैश्वीकरण अभूतपूर्व पैमाने पर वस्तुओं और सेवाओं के सृजन, उत्पादन, वितरण और उपभोग को जन्म देता है। इस प्रक्रिया का उद्देश्य मुक्त अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश और पूँजी बाज़ार प्रवाह के माध्यम से लोगों, उद्यमों और देशों की आर्थिक गतिविधियों को बढ़ाना है। पूँजी की कमी वाली अर्थव्यवस्था के लिए, इसका अर्थ है निवेश के नए रास्ते खोलना और अप्रयुक्त प्राकृतिक संसाधनों और निहित ऊर्जाओं का उपयोग करना।
- निर्यात वृद्धि और विदेशी निवेश के आगमन ने गरीबी को कम किया है। जिन क्षेत्रों में निर्यात या विदेशी निवेश बढ़ रहा है, वहाँ गरीबी कम हुई है। भारत में, विदेशी निवेश के लिए खुलापन गरीबी में कमी से जुड़ा है। पूँजी बाजार का तीव्र विकास वैश्वीकरण की वर्तमान प्रक्रिया की महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक रहा है।
- भारत में वैश्वीकरण का अर्थव्यवस्था की समग्र विकास दर पर अनुकूल प्रभाव पड़ा है। जीडीपी वृद्धि में तेज़ी ने भारत की वैश्विक स्थिति को बेहतर बनाने में मदद की है। साक्ष्य इस बात की ओर ज़ोर देते हैं कि निर्यात वृद्धि और विदेशी निवेश के आगमन ने मेक्सिको से लेकर भारत और पोलैंड तक, हर जगह गरीबी को कम किया है।
- यद्यपि वैश्वीकरण के कई लाभ हैं, लेकिन वर्तमान परिदृश्य में इसके साथ कई आशंकाएँ भी जुड़ी हैं। पहली बड़ी चिंता यह है कि वैश्वीकरण के कारण देशों के बीच और देशों के भीतर आय का वितरण और भी असमान हो जाएगा। दूसरी चिंता यह है कि वैश्वीकरण के कारण राष्ट्रीय संप्रभुता का ह्रास होगा और उन देशों के लिए स्वतंत्र घरेलू नीतियों का पालन करना लगातार कठिन होता जा रहा है।
- वैश्वीकरण ने अब तक बाज़ारों को खोल दिया है और ग्रामीण आबादी को उपभोक्ता के रूप में पहुँचाया है। ब्रांडेड उत्पाद, टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएँ, संरक्षित खाद्य पदार्थ सुविधाजनक छोटे पैक में उपलब्ध कराए गए हैं। इन्हें मोबाइल उपभोक्ताओं के रूप में लक्षित किया गया है और आकर्षक पैकेज उनके घर-द्वार पर उपलब्ध कराए गए हैं।
- लेकिन जब तक ग्रामीण आबादी को सेवा प्रदाताओं, श्रमिकों या बहुराष्ट्रीय कंपनियों की उत्पादन श्रृंखला के लिए मध्यवर्ती वस्तुओं/इनपुट के उत्पादकों के रूप में उत्पादन प्रक्रिया में शामिल नहीं किया जाता, तब तक उनकी गरीबी केवल बढ़ेगी और किसी भी स्थिति में कम नहीं होगी।
- यदि हमें उन्हें ऋणग्रस्तता या भ्रष्टाचार के अपराधी बनने से बचाना है तो उनकी आय, उनकी आय प्राप्तियों को उनकी उपभोग मांग के साथ बढ़ाना होगा।
- अन्यथा, वैश्वीकरण अपने वर्तमान स्वरूप में सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के आंकड़ों को बढ़ाएगा, लेकिन आम जनता का कल्याण नहीं। निरपेक्ष गरीबी कुछ हद तक कम हो सकती है और कम हुई भी है, लेकिन आय वितरण और रोज़गार के अवसरों में बढ़ती असमानताओं के कारण सापेक्ष गरीबी बढ़ेगी।

गरीबी की राजनीति: गरीबीवाद

- "गरीबीवाद" शब्द का इस्तेमाल इंडियन एक्सप्रेस के संपादक शेखर गुप्ता ने अपने संपादकीय में यूपीए सरकार के "समाजवादी" और "कल्याणकारी" विश्वदृष्टिकोण के लिए एक अपमानजनक शब्द के रूप में किया था। गरीबीवाद का मुख्य सिद्धांत है, गरीबी मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, और मैं यह सुनिश्चित करने के लिए हर संभव प्रयास करूँगा कि आपको यह अधिकार मिले।
- इसका तात्पर्य यह है कि गरीबी पर केन्द्रित तथा हस्तक्षेपकारी कार्यक्रमों वाली आर्थिक नीति पूंजीवाद विरोधी है, और इसलिए परिभाषा के अनुसार गरीब विरोधी है।
- पूंजीवाद का वर्तमान मॉडल, जो अमेरिकी हितों से प्रेरित है और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक जैसी संस्थाओं द्वारा क्रियान्वित किया जा रहा है, बेहद दोषपूर्ण है। इसने पूंजीवाद को, जो स्वाभाविक रूप से लोकतांत्रिक और लोकतंत्रीकरणकारी है, कुछ प्रभावशाली लोगों के हितों को बढ़ावा देने के साधन में बदल दिया है।
- विकास पर एकतरफा ज़ोर देने से अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक असंतुलन पैदा हुआ है और कई देशों में असमानताएँ बढ़ी हैं, जिससे सामाजिक अस्थिरता का ख़तरा पैदा हुआ है। पूंजीवाद का मौजूदा मॉडल उस तरह से नतीजे नहीं

दे रहा है जैसा उसे मिलना चाहिए था। अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा गरीब देशों की आर्थिक समस्याओं के लिए अपनाया गया एक ही तरीका नासमझी भरा और कभी-कभी उल्टा भी साबित होता है।

- **अर्थशास्त्री स्टिग्लिट्ज़** इस बात पर जोर देते हैं कि जो देश वैश्वीकरण की प्रक्रिया को नियंत्रित करने और उसे अपनी परिस्थितियों के अनुरूप ढालने में सक्षम रहे हैं, वे विकास और असमानता के बीच संतुलन बनाए बिना ही समृद्ध हुए हैं।
- इसलिए, पूंजीवाद के वर्तमान मॉडल में ऐसे सुधारों की आवश्यकता है जो गरीबों को सुरक्षा प्रदान करें और शिक्षा व कौशल विकास के माध्यम से उनकी क्षमता का निर्माण करें, न कि कल्याणकारी या गरीबी-विरोधी राजनीतिक बयानबाजी। श्रम कानूनों का ध्यान श्रम की सुरक्षा पर नहीं, बल्कि उत्पादन की सुरक्षा पर होना चाहिए।
- यदि उत्पादन को संरक्षित किया जाता है तो श्रम स्वतः ही सुरक्षित हो जाएगा और उत्पादन के संरक्षण को पूंजीपति और गरीब विरोधी संरक्षण समझने की भूल नहीं की जानी चाहिए।
- अत्यधिक हस्तक्षेप और राज्य समाजवाद ने सार्वजनिक क्षेत्र को अप्रतिस्पर्धी बना दिया है और राजकोष पर बोझ बढ़ा दिया है, जिससे बहुमूल्य संसाधन छिन गए हैं, जिन्हें बुनियादी ढाँचे के विकास में निवेश किया जा सकता था जिससे गरीबों को बेहतर लाभ मिल सकता था। सब्सिडी की राजनीति के स्थान पर टिकाऊ संपत्तियों के निर्माण पर पूंजी निवेश को बढ़ावा देना चाहिए।

गरीबी उन्मूलन के लिए सरकारी प्रयास

स्वतंत्रता के बाद, केंद्र और राज्य सरकारों ने गरीबी कम करने के लिए निम्नलिखित महत्वपूर्ण उपाय अपनाए हैं:

पंचवर्षीय योजनाएँ

- गरीबी उन्मूलन से जुड़ी संवैधानिक प्रतिबद्धताओं की प्रतिध्वनि सभी पंचवर्षीय योजनाओं में मौन या स्पष्ट रूप से व्याप्त रही है। उदाहरण के लिए, दूसरी पंचवर्षीय योजना में कहा गया था कि आर्थिक विकास का लाभ समाज के अपेक्षाकृत कम सुविधा प्राप्त वर्गों को अधिक से अधिक मिलना चाहिए।
- नौवीं पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य सामाजिक न्याय और समता के साथ विकास पर केंद्रित था। दसवीं योजना का लक्ष्य रोज़गार सृजन और समता पर ज़ोर देते हुए आर्थिक विकास करना है।
- लेकिन समस्या के समाधान के लिए अपनाए गए दृष्टिकोण और रणनीति की प्रभावशीलता बहुत संदिग्ध है।

राष्ट्रीयकरण

- राष्ट्रीयकरण की नीति 1969 में अपनाई गई थी जब 14 बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया था। इसके बाद 1972 में कोयला खदानों का राष्ट्रीयकरण किया गया और सरकार ने बड़ी निजी लोहा और इस्पात कंपनियों तथा खाद्यान्नों के थोक व्यापार का नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया। राष्ट्रीयकरण का उद्देश्य कमज़ोर वर्गों को ऋण उपलब्ध कराना था।

बीस सूत्री कार्यक्रम (टीपीपी)

इंदिरा गांधी ने गरीबी और आर्थिक शोषण को कम करने तथा समाज के कमजोर वर्गों के उत्थान के लिए जुलाई 1975 में इस कार्यक्रम का प्रस्ताव रखा था। इस कार्यक्रम के 5 महत्वपूर्ण लक्ष्य थे:

- मुद्रास्फीति को नियंत्रित करना
- उत्पादन को प्रोत्साहन देना
- ग्रामीण आबादी का कल्याण
- शहरी मध्यम वर्ग को ऋण सहायता प्रदान करना
- आर्थिक और सामाजिक अपराधों पर नियंत्रण
- 20 सूत्री कार्यक्रमों में शामिल कार्यक्रम थे:
- सिंचाई सुविधाओं में वृद्धि,
- ग्रामीण रोजगार के लिए उत्पादन कार्यक्रमों में वृद्धि,

- अधिशेष भूमि का वितरण,
- भूमिहीन मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी,
- बंधुआ मजदूरों का पुनर्वास,
- अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का विकास
- जनजातियाँ,
- आवास सुविधाओं का विकास,
- बिजली उत्पादन में वृद्धि,
- परिवार नियोजन,
- वृक्षारोपण,
- प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार,
- महिलाओं और बच्चों के कल्याण के लिए कार्यक्रम,
- प्राथमिक शिक्षा में वृद्धि,
- वितरण प्रणाली को सुदृढ़ बनाना,
- औद्योगिक नीतियों का सरलीकरण,
- काले धन पर नियंत्रण,
- पेयजल सुविधाओं में सुधार, और
- आंतरिक संसाधनों का विकास
- वर्तमान में, बीस सूत्री कार्यक्रम प्रत्येक राज्य की योजनाओं के अंतर्गत प्रगति पर नज़र रखता है, जैसे कि रोजगार सृजन, सात सूत्री चार्टर के अंतर्गत शहरी गरीब परिवारों को सहायता, खाद्य सुरक्षा, आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए निर्मित मकानों की संख्या, गांवों का विद्युतीकरण, रोपे गए पौधों की संख्या, प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क योजना के अंतर्गत निर्मित सड़कें, खाद्य सुरक्षा और प्रोत्साहित किए गए स्वयं सहायता समूहों की संख्या।

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम

- भारत में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को इस आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है कि वे ग्रामीण क्षेत्रों के लिए लक्षित हैं या शहरी क्षेत्रों के लिए। अधिकांश कार्यक्रम ग्रामीण गरीबी को लक्षित करके बनाए गए हैं क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी का प्रसार अधिक है।

कार्यक्रमों को मुख्यतः 5 प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. वेतन रोजगार कार्यक्रम, उदा. मनरेगा, स्किल इंडिया, दीन दयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्य योजना
2. स्व-रोज़गार कार्यक्रम, उदा. मुद्रा, उड़ान, श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूर्बन मिशन स्टैंड अप इंडिया।
3. खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम, जैसे एनएफएसए, पीडीएस, आईसीडीएस
4. Social Security Programmes, e.g. Atal Pension Scheme, Pradhan mantra Jan Dhan Yojana, Pradhan Mantri Fasal Bima Yojana, Housing For All.
5. अन्य योजनाएँ और शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम, उदा. मेक इन इंडिया, प्रधानमंत्री सड़क योजना, दीन दयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना।

एमजीएनआरईजीए

उद्देश्य

1. आजीविका सुरक्षा को बढ़ाना।
2. ग्रामीण सशक्तिकरण के साधन के रूप में कार्य करना।
3. ग्रामीण गरीबी उन्मूलन.

विशेषताएँ

1. यह विधेयक, प्रत्येक वित्तीय वर्ष में किसी भी ग्रामीण परिवार के वयस्क सदस्यों को, जो वैधानिक न्यूनतम मजदूरी पर सार्वजनिक कार्य से संबंधित अकुशल शारीरिक कार्य करने के लिए इच्छुक हों, सौ दिनों के रोजगार की कानूनी गारंटी प्रदान करता है।
2. 33% नौकरियाँ महिलाओं को दी गयीं।

फ़ायदे

1. जब गैर मनरेगा कार्य के अवसर कम होते हैं तो यह परिवारों को सहायता प्रदान करता है तथा उन्हें सहारा देता है।
2. ग्रामीण आय में वृद्धि होती है।
3. घर से 5 किलोमीटर के भीतर काम, समान वेतन आदि जैसे प्रावधानों से महिलाओं को अधिक कार्य अवसर प्राप्त हुए हैं तथा लैंगिक समानता में सुधार हुआ है।

- महिलाओं की भागीदारी दर 50% से अधिक है।
- 33% की वैधानिक आवश्यकता से अधिक।

4. मांग आधारित कानूनी ढांचे ने इसे एक खुला बजट आवंटन दिया।
5. इससे संकटकालीन प्रवासन में कमी आई है
6. एनसीएईआर के सर्वेक्षण से पता चला है कि इससे आदिवासियों और दलितों में गरीबी क्रमशः 28% और 38% कम हुई है।
7. ग्रामीण क्षेत्रों में श्रम बाजार को पुनर्जीवित करना

- ऐसे श्रमिकों का वर्ग तैयार करना जो मनरेगा को सुरक्षा जाल के रूप में उपयोग कर रहे हैं।
- ये श्रमिक उच्च मजदूरी प्राप्त करने के लिए इसे सौदेबाजी के साधन के रूप में उपयोग करने में सक्षम हैं।

8. ग्राम पंचायतों को सशक्त बनाने के लिए सबसे महत्वपूर्ण साधन।

- ग्राम सभाएं अपने कार्यों की योजना स्वयं बनाएंगी तथा इन कार्यों के क्रियान्वयन के लिए निधियां उपलब्ध कराएंगी।

9. जल संबंधी परिसंपत्तियों का सृजन हुआ, जिससे उपलब्ध जल की मात्रा में वृद्धि हुई, फसल पैटर्न में परिवर्तन हुआ तथा खेती के अंतर्गत क्षेत्रफल में वृद्धि हुई।

मनरेगा के महत्वपूर्ण परिप्रेक्ष्य

1. राज्यों में अधिनियम का असमान कार्यान्वयन।
2. लीकेज: जैसे भूतिया नौकरियां
3. कई अध्ययनों से पता चलता है कि इस योजना के तहत बनाई गई परिसंपत्तियां बहुत उत्पादक नहीं हैं
4. इससे कोई महत्वपूर्ण पूंजीगत परिसंपत्ति नहीं बनी। 2013 में स्वीकृत कार्यों को जोड़कर सुधार किया गया - ग्रामीण बुनियादी ढाँचा (50%) जिसमें शौचालय और हाशिए पर रहने वाले समुदायों के लिए परिसंपत्तियाँ बनाना (23%) शामिल है।

भ्रष्टाचार

1. भ्रष्टाचार से निपटने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी और सामाजिक अंकेक्षण जैसे समुदाय आधारित जवाबदेही तंत्र का उपयोग किया जा रहा है। सभी सूचनाओं का डिजिटलीकरण किया जा रहा है और उन्हें सार्वजनिक किया जा रहा है।
2. ग्रामीण मजदूरी में वृद्धि से मुद्रास्फीति बढ़ी

- जब नाममात्र मजदूरी उत्पादकता की तुलना में तेजी से बढ़ती है तो मुद्रास्फीति बढ़ जाती है
- मुद्रास्फीति का सबसे अधिक असर गरीबों पर पड़ता है

- विडंबना यह है कि ग्रामीण मजदूरी को उत्पादकता से अलग करने से किसानों को मनुष्यों के स्थान पर मशीनों का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहन मिला।

3. मनरेगा से होने वाली आय गरीबी से मुक्ति पाने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकती।
4. अनावश्यक खर्च

- औसत गरीबी अंतराल (गरीबों की औसत आय और गरीबी रेखा के बीच का अंतर) 1,700 रुपये प्रति वर्ष है। सरकार अकेले मनरेगा के माध्यम से प्रति वर्ष 32,500 रुपये या एक औसत गरीब व्यक्ति को ग़ैर-गरीब बनाने के लिए आवश्यक राशि का 19 गुना (32,500/1,700) खर्च करती है।
- सही लक्ष्य निर्धारण के साथ (275 मिलियन गरीबों को 1,700 रुपये प्रति व्यक्ति प्राप्त होते हैं), सरकार को तेंदुलकर गरीबी उन्मूलन के लिए प्रतिवर्ष 47,000 करोड़ रुपये खर्च करने की आवश्यकता है - या यह राशि अकेले मनरेगा पर खर्च होने वाले खर्च के बराबर है।
- बेहतर होगा कि सभी गरीबों को नकद हस्तांतरण प्रदान किया जाए, न कि केवल उन गरीब लोगों को जो नेकनीयती से बनाए गए मनरेगा के दायरे में आते हैं।

मजदूरी के भुगतान में बड़े पैमाने पर देरी हो रही है।

फिर भी, मनरेगा भारत में व्याप्त गरीबी के विरुद्ध एक सुरक्षा कवच है तथा गरीब जनता के लिए एक बड़ी राहत है।

कौशल भारत

- स्किल इंडिया भारत सरकार की एक पहल है। इसे 16 जुलाई 2015 को 2022 तक भारत में 40 करोड़ से ज़्यादा लोगों को विभिन्न कौशलों में प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से शुरू किया गया था। इन पहलों में राष्ट्रीय कौशल विकास मिशन, राष्ट्रीय कौशल विकास एवं उद्यमिता नीति 2015, प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (पीएमकेवीवाई) और कौशल ऋण योजना शामिल हैं।
- इस कौशल प्रमाणन एवं पुरस्कार योजना का उद्देश्य बड़ी संख्या में भारतीय युवाओं को परिणाम-आधारित कौशल प्रशिक्षण प्राप्त करने, रोज़गार के योग्य बनने और अपनी आजीविका कमाने के लिए सक्षम और प्रेरित करना है। इस योजना के तहत, संबद्ध प्रशिक्षण प्रदाताओं द्वारा संचालित कौशल पाठ्यक्रमों में सफलतापूर्वक प्रशिक्षित, मूल्यांकन और प्रमाणित होने वाले प्रशिक्षुओं को मौद्रिक पुरस्कार प्रदान किया जाएगा।

Deen Dayal Upadhyaya Grameen Kaushalya Yojana

- 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में 15 से 35 वर्ष की आयु के 5.5 करोड़ संभावित श्रमिक हैं। वहीं, 2020 तक दुनिया में 5.7 करोड़ श्रमिकों की कमी होने की आशंका है।
- यह भारत के लिए अपने जनसांख्यिकीय अधिशेष को जनसांख्यिकीय लाभांश में बदलने का एक ऐतिहासिक अवसर प्रस्तुत करता है।
- ग्रामीण विकास मंत्रालय, गरीब परिवारों के ग्रामीण युवाओं के कौशल और उत्पादक क्षमता का विकास करके समावेशी विकास के लिए इस राष्ट्रीय एजेंडे को आगे बढ़ाने के लिए डीडीयूजीकेवाई को लागू करता है।
- भारत के ग्रामीण गरीबों को आधुनिक बाज़ार में प्रतिस्पर्धा करने से रोकने वाली कई चुनौतियाँ हैं, जैसे औपचारिक शिक्षा और बाज़ार-योग्य कौशल का अभाव। डीडीयू-जीकेवाई वैश्विक मानकों पर आधारित प्रशिक्षण परियोजनाओं को वित्तपोषित करके इस अंतर को पाटता है, जिसमें प्लेसमेंट, प्रतिधारण, करियर में प्रगति और विदेश में प्लेसमेंट पर ज़ोर दिया जाता है।
- इसके अलावा, क्षेत्रीय फोकस: जम्मू और कश्मीर (हिमायत), उत्तर-पूर्व क्षेत्र और 27 वामपंथी उग्रवादी (एलडब्ल्यूई) जिलों (रोशिनी) में गरीब ग्रामीण युवाओं के लिए परियोजनाओं पर अधिक जोर दिया जाएगा।

MUDRA Bank Yojana

इस योजना के तहत 8 अप्रैल, 2015 को 20,000 करोड़ रुपये के कोष और 3,000 करोड़ रुपये के ऋण गारंटी कोष के साथ माइक्रो यूनिट्स डेवलपमेंट एंड रिफाइनेंस एजेंसी लिमिटेड (मुद्रा) बैंक की शुरुआत की गई।

- ज़्यादातर लोग, खासकर भारत के ग्रामीण और दूरदराज के इलाकों में रहने वाले लोग, औपचारिक बैंकिंग प्रणाली के लाभों से वंचित रहे हैं। इसलिए, उन्हें अपने सूक्ष्म व्यवसायों को स्थापित करने और बढ़ाने में मदद के लिए बीमा, ऋण, लोन और अन्य वित्तीय साधनों तक कभी पहुँच नहीं मिली। इसलिए, ज़्यादातर लोग ऋण के लिए स्थानीय साहूकारों पर निर्भर रहते हैं। ये ऋण ऊँची ब्याज दरों पर और अक्सर असहनीय शर्तों के साथ मिलते हैं, जिससे ये गरीब और भोले-भाले लोग पीढ़ियों तक कर्ज के जाल में फँसते रहते हैं। जब व्यवसाय विफल हो जाते हैं, तो उधारकर्ता ऋणदाता की ज़बरदस्ती और अन्य प्रकार के अपमान का शिकार हो जाते हैं।
- एनएसएसओ सर्वेक्षण 2013 के अनुसार, देश में लगभग 5.77 करोड़ लघु व्यवसाय इकाइयां हैं, जिनमें से अधिकांश एकल स्वामित्व वाली हैं, जो व्यापार, विनिर्माण, खुदरा और अन्य लघु-स्तरीय गतिविधियां करती हैं।

मुद्रा बैंक के मुख्य उद्देश्य हैं:

1. माइक्रोफाइनेंस के ऋणदाता और उधारकर्ता को विनियमित करना तथा विनियमन और समावेशी भागीदारी के माध्यम से माइक्रोफाइनेंस प्रणाली में स्थिरता लाना।
2. सूक्ष्म वित्त संस्थानों (एमएफआई) और एजेंसियों को वित्त और ऋण सहायता प्रदान करना जो छोटे व्यवसायों, खुदरा विक्रेताओं, स्वयं सहायता समूहों और व्यक्तियों को ऋण देते हैं।
3. सभी सूक्ष्म वित्त संस्थानों (एमएफआई) को पंजीकृत करें और पहली बार उनके प्रदर्शन की रेटिंग और मान्यता की एक प्रणाली लागू करें।
   इससे अंतिम छोर तक के वित्तीय उधारकर्ताओं को उस एमएफआई का मूल्यांकन करने और उससे संपर्क करने में मदद मिलेगी जो उनकी आवश्यकताओं को सबसे अच्छी तरह पूरा करती है और जिसका पिछला रिकॉर्ड सबसे संतोषजनक है। इससे सूक्ष्म वित्त संस्थानों के बीच प्रतिस्पर्धा का एक तत्व भी आएगा। इसका अंतिम लाभार्थी उधारकर्ता ही होगा।
4. व्यवसाय की विफलता से बचने या समय पर सुधारात्मक कदम उठाने के लिए उधारकर्ताओं को संरचित दिशानिर्देश प्रदान करें। मुद्रा, ऋणदाताओं द्वारा चूक के मामलों में धन की वसूली के लिए अपनाए जाने वाले दिशानिर्देश या स्वीकार्य प्रक्रियाएँ निर्धारित करने में मदद करेगी।
5. मानकीकृत अनुबंधों का विकास करना जो भविष्य में अंतिम-मील व्यवसाय की रीढ़ बनेंगे।

इन तीन क्षेत्रों को संबोधित करने के लिए, मुद्रा बैंक ने तीन ऋण साधन शुरू किए हैं:

- **शिशु:** 50,000/- रुपये तक के ऋण को कवर करता है
- **किशोर:** 50,000/- रुपये से अधिक और 5 लाख रुपये तक के ऋण को कवर करता है
- **तरुण:** 5 लाख रुपये से अधिक और 10 लाख रुपये तक के ऋण को कवर करता है

मुद्रा राज्य/क्षेत्रीय स्तर के मध्यस्थों के माध्यम से एक पुनर्वित्त संस्थान के रूप में कार्य करती है। यह एनबीएफसी/एमएफआई के साथ-साथ बैंकों, प्राथमिक ऋण संस्थानों आदि को भी पुनर्वित्त प्रदान करती है।

मुद्रा बैंक सरकार द्वारा उठाया गया एक ऐसा कदम है जो उद्यमियों के एक नए समूह को जन्म देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है, जिनमें से कुछ लोग ऐसी ऊंचाइयों को छू सकते हैं जिनकी आज कल्पना भी नहीं की जा सकती।

- यह सब्सिडी देने से कहीं बेहतर है, जो पहली नजर में स्वागत योग्य लग सकता है, लेकिन किसी व्यक्ति को बेहतर जीवन जीने में कोई मदद नहीं करता।

उड़ान

- उड़ान, जम्मू और कश्मीर के लिए एक विशेष उद्योग पहल है जो भारत के कॉर्पोरेट्स और गृह मंत्रालय के बीच साझेदारी के रूप में राष्ट्रीय कौशल विकास निगम द्वारा कार्यान्वित की जाती है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य जम्मू और कश्मीर के बेरोजगार युवाओं को कौशल प्रशिक्षण प्रदान करना और उनकी रोजगार क्षमता को बढ़ाना है।

इसके दो उद्देश्य हैं:

1. बेरोजगार स्नातकों को कॉर्पोरेट भारत की सर्वोत्तम गतिविधियों से परिचित कराना;
2. कॉर्पोरेट इंडिया को राज्य में उपलब्ध समृद्ध प्रतिभा पूल से परिचित कराना।

श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूर्बन मिशन

रुर्बन मिशन के मुख्य तत्व

1. सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में ग्रामीण विकास समूहों का विकास, जिनमें विकास की अपार संभावनाएँ हैं, क्षेत्र में समग्र विकास को गति प्रदान करेगा। ये समूह अनिवार्य रूप से स्मार्ट गाँव हैं।
2. ग्रामीण विकास क्लस्टरों का विकास आर्थिक गतिविधियों की व्यवस्था, कौशल और स्थानीय उद्यमिता का विकास तथा बुनियादी सुविधाएं प्रदान करके किया जाएगा।

- इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण विकास समूहों के विकास के माध्यम से समग्र क्षेत्रीय विकास को गति प्रदान करना है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों को मजबूत बनाने और शहरी क्षेत्रों पर बोझ कम करने के दोहरे उद्देश्य को प्राप्त करके देश के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों को एक साथ लाभ होगा, जिससे संतुलित क्षेत्रीय विकास और देश की वृद्धि को बढ़ावा मिलेगा।

स्टैंड अप इंडिया

- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और महिला उद्यमियों के बीच उद्यमिता को बढ़ावा देने के लिए "स्टैंड अप इंडिया योजना" शुरू की गई है। इस योजना का उद्देश्य प्रत्येक बैंक शाखा में कम से कम दो ऐसी परियोजनाओं को सुगम बनाना है, यानी प्रत्येक श्रेणी के उद्यमी के लिए औसतन एक।

स्टैंड अप इंडिया योजना में निम्नलिखित प्रावधान हैं:

- इसका ध्यान अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और महिला उधारकर्ताओं को सहायता प्रदान करने पर है।
- अनुमोदन का समग्र उद्देश्य संस्थागत ऋण संरचना का लाभ उठाकर जनसंख्या के इन वंचित वर्गों तक पहुंचना है, जिसके लिए अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और महिला उधारकर्ताओं द्वारा गैर-कृषि क्षेत्र में स्थापित ग्रीनफील्ड उद्यमों के लिए 7 वर्ष तक और 10 लाख रुपये से 100 लाख रुपये के बीच पुनर्भुगतान योग्य बैंक ऋण की सुविधा प्रदान की जाएगी।
- इस योजना के अंतर्गत ऋण उचित रूप से सुरक्षित होगा तथा ऋण गारंटी योजना के माध्यम से ऋण गारंटी द्वारा समर्थित होगा, जिसके लिए वित्तीय सेवा विभाग निपटानकर्ता होगा तथा राष्ट्रीय ऋण गारंटी ट्रस्टी कंपनी लिमिटेड (एनसीजीटीसी) परिचालन एजेंसी होगी।

अटल पेंशन योजना

- जन धन योजना के क्रम में, ग्रामीण और असंगठित क्षेत्र में कार्यरत लोगों को पेंशन योजनाओं के दायरे में लाने के लिए अटल पेंशन योजना (APY) योजना शुरू की गई थी। इस योजना का उद्देश्य सभी भारतीयों को एक निश्चित पेंशन प्रदान करना है।
- हालाँकि, वृद्धावस्था में पेंशन पाने के लिए, व्यक्ति को उचित अंशदान करना होगा। जितना अधिक अंशदान होगा, वृद्धावस्था में उतनी ही अधिक पेंशन मिलेगी। यह योजना मुख्यतः असंगठित क्षेत्र में काम करने वालों के लिए है।
- पात्रता: 18 से 40 वर्ष की आयु का कोई भी भारतीय नागरिक APY के अंतर्गत अंशदान करने के लिए पात्र है।

Pradhan Mantri Awas Yojana: Housing for All

- भारत सरकार ने पहले 'सभी के लिए आवास' योजना शुरू की थी, जिसे अब प्रधानमंत्री आवास योजना के रूप में पुनर्गठित किया गया है। यह योजना 25 जून 2015 को शुरू की गई थी। इस योजना के लक्षित लाभार्थी देश के शहरी क्षेत्रों में रहने वाले गरीब और आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग (ईडब्ल्यूएस) और निम्न आय वर्ग (एलआईजी) के अंतर्गत आने वाले लोग होंगे।

प्रधानमंत्री आवास योजना की विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

- सरकार लाभार्थियों द्वारा लिए गए आवास ऋण पर ऋण शुरू होने से 15 वर्ष की अवधि के लिए 6.5% की ब्याज सब्सिडी प्रदान करेगी।
- प्रधानमंत्री आवास योजना के अंतर्गत आवास आवंटन परिवार की महिला सदस्य को प्राथमिकता से किया जाएगा। इसके साथ ही, सामान्यतः महिला आवेदकों को प्राथमिकता दी जाएगी।
- प्रधानमंत्री आवास योजना के तहत किसी भी आवास योजना में भूतल आवंटित करते समय दिव्यांगों और वृद्ध लोगों को प्राथमिकता दी जाएगी।
- प्रधानमंत्री आवास योजना के अंतर्गत मकानों का निर्माण पर्यावरण अनुकूल तकनीक के माध्यम से किया जाएगा।
- इस योजना के अंतर्गत सभी लाभार्थियों को भारत सरकार द्वारा औसतन 1 लाख रुपये प्रदान किए जाएंगे।

Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana

- प्रधानमंत्री जन धन योजना (पीएमजेडीवाई) अगस्त 2014 में भारत सरकार द्वारा शुरू की गई एक राष्ट्रव्यापी योजना है। इस योजना में उन सभी व्यक्तियों का वित्तीय समावेशन हासिल करना है जिनके पास बैंक खाता नहीं है।
- यह योजना उन सभी लोगों तक वित्तीय पहुँच सुनिश्चित करेगी जो अन्य वित्त संबंधी सरकारी योजनाओं का लाभ नहीं उठा पा रहे थे। इन वित्तीय सेवाओं में बैंकिंग/बचत और जमा खाते, धन प्रेषण, ऋण, बीमा, पेंशन शामिल हैं, जो सभी नागरिकों को आसान और किफायती तरीके से उपलब्ध कराई जाएँगी।
- प्रधानमंत्री जन-धन योजना के तहत, चाहे कोई भी क्षेत्र (ग्रामीण या शहरी) हो, सभी व्यक्ति बिना कोई राशि जमा किए बैंक खाता खोल सकते हैं, बशर्ते वे अन्य पात्रता मानदंडों को पूरा करते हों। यह योजना ग्रामीण आबादी के लिए बहुत फायदेमंद है जहाँ बैंकिंग सेवाएँ और अन्य वित्तीय संस्थान बहुत कम उपलब्ध हैं।
- जन धन योजना के अंतर्गत खाताधारकों को एक रुपे डेबिट कार्ड दिया जाएगा, जिसका उपयोग सभी एटीएम से नकदी निकासी के लिए तथा अधिकांश खुदरा दुकानों पर खरीदारी के लिए किया जा सकेगा।

Rashtriya Swasthya Bima Yojana (RSBY)

- आरएसबीवाई उन बीपीएल परिवारों के लिए शुरू की गई थी जो किसी भी प्रकार की बीमारी के प्रति संवेदनशील हैं। पिछले कुछ वर्षों में यह पाया गया है कि बीपीएल परिवार दूसरों से पैसा लेने की प्रवृत्ति रखते हैं, जिससे वे अंततः कर्ज में डूब जाते हैं। राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना उन्हें उच्च चिकित्सा लागत के साथ पूर्ण बीमा प्रदान करती है।
- **कवरेज:** यह परिवार के पांच सदस्यों को कवरेज प्रदान करता है, जिसमें परिवार के मुख्य सदस्य पर आश्रित तीन सदस्य शामिल हैं।
- **नकद उपयोग नहीं:** बीपीएल परिवारों को दी जाने वाली सभी स्वास्थ्य सेवाओं में नकद उपयोग नहीं होगा। यह पूरी तरह से नकद रहित कवरेज होगा। आरएसबीवाई के लिए नामांकन हेतु कोई आयु सीमा नहीं है।

Pradhan Mantri Fasal Bima Yojana

- इस फसल बीमा योजना का मुख्य उद्देश्य देश के किसानों को अधिक कुशल बीमा सहायता प्रदान करना और हज़ारों किसानों के लिए आर्थिक सहायता बनना है। सरकार ने किसानों को कम प्रीमियम पर बीमा कवर प्रदान करने का निर्णय लिया है ताकि फसल खराब होने पर भी वे अपना गुज़ारा कर सकें।
- यह योजना 13 जनवरी, 2016 को शुरू की गई थी। यह फसल बीमा योजना भारत सरकार के कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय के अधीन संचालित की जाती है।
- इसने मौजूदा दो फसल बीमा योजनाओं, राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (एनएआईएस) और संशोधित एनएआईएस, का स्थान लिया है। यह नई योजना जून 2016 से शुरू होने वाले खरीफ मौसम से लागू होगी।

कवर की गई फसलें

- इस योजना में खरीफ और रबी फसलों के साथ-साथ वार्षिक वाणिज्यिक और बागवानी फसलें भी शामिल हैं। खरीफ फसलों के लिए, प्रीमियम बीमित राशि का 2% तक होगा। रबी फसलों के लिए, प्रीमियम बीमित राशि का 1.5%

तक होगा। वार्षिक वाणिज्यिक और बागवानी फसलों के लिए, प्रीमियम 5 प्रतिशत होगा। प्रीमियम का शेष हिस्सा केंद्र और संबंधित राज्य सरकारों द्वारा समान रूप से वहन किया जाएगा।

कवर किए गए नुकसान

- उपज हानि के अलावा, नई योजना में कटाई के बाद होने वाले नुकसान को भी शामिल किया जाएगा। यह ओलावृष्टि, बेमौसम बारिश, भूस्खलन और जलप्लावन जैसी स्थानीय आपदाओं के लिए खेत स्तर पर आकलन भी प्रदान करेगी।

प्रौद्योगिकी का उपयोग

- इस योजना में फसल नुकसान का त्वरित आकलन करने के लिए रिमोट सेंसिंग, स्मार्ट फोन और ड्रोन का अनिवार्य उपयोग प्रस्तावित है। इससे दावा प्रक्रिया में तेज़ी आएगी।
- इस प्रकार, नई फसल बीमा योजना भारतीय कृषि पर पड़ने वाले प्राकृतिक संकटों से निपटने की क्षमता रखती है। किसानों द्वारा भुगतान किया जाने वाला प्रीमियम पिछली फसल बीमा योजनाओं की तुलना में कम रखा गया है।

Pradhan Mantri Gram Sadak Yojana

- प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना या पीएमजीएसवाई भारत में एक राष्ट्रव्यापी योजना है जिसका उद्देश्य असंबद्ध गाँवों को बारहमासी अच्छी सड़क कनेक्टिविटी प्रदान करना है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक गतिविधियों को गति मिलेगी जिससे क्षेत्र में समृद्धि आएगी।

Gram Uday Se Bharat Uday Abhiyan

- 14 अप्रैल 2016 को डॉ. अंबेडकर की 125वीं जयंती से शुरू होकर 24 अप्रैल 2016 को पंचायती राज दिवस तक, 14 अप्रैल से 24 अप्रैल 2016 के बीच की अवधि में, केंद्र सरकार ने राज्यों और पंचायतों के सहयोग से 'ग्राम उदय से भारत उदय अभियान' (ग्राम स्वशासन अभियान) का आयोजन किया।
- इस अभियान का उद्देश्य गांवों में सामाजिक सद्भाव बढ़ाने, पंचायती राज को मजबूत करने, ग्रामीण विकास को बढ़ावा देने और किसानों की प्रगति को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रव्यापी प्रयास करना है।

Sampoorna Gramin Rojgar Yojana (SGRY)

- संपूर्ण ग्रामीण रोज़गार योजना सितंबर 2001 में प्रधानमंत्री द्वारा शुरू की गई थी। इस योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीणों को लाभकारी रोज़गार और खाद्य सुरक्षा प्रदान करना था। रोज़गार आश्वासन योजना (ईएएस) और जवाहर ग्राम समृद्धि योजना (जेजीएसवाई) को इस योजना में मिला दिया गया है क्योंकि दोनों के उद्देश्य समान हैं। जिला ग्रामीण विकास अभिकरण इस योजना के लिए नोडल एजेंसी थी। इस योजना का व्यय केंद्र और राज्य द्वारा 80:20 के अनुपात में वहन किया जाता है।

स्वर्ण जयंती ग्राम स्वराजगर योजना (एसजीएसवाई)

- स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोज़गार योजना (एसजीएसवाई) 1 अप्रैल 1999 को शुरू की गई थी। यह ग्रामीण गरीबों के लिए एक एकीकृत एकल स्वरोज़गार कार्यक्रम था। इसने निम्नलिखित स्वरोज़गार कार्यक्रमों का स्थान लिया:
- एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आईआरडीपी)
- स्व-रोजगार के लिए ग्रामीण युवाओं का प्रशिक्षण (TRYSEM)
- ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों के लिए विकास (DWCRA)
- ग्रामीण कारीगरों को उन्नत टूल किट की आपूर्ति (एसआईटीआरए)
- Ganga Kalyan Yojana (GKY)
- मिलियन वेल्स योजना (एमडब्ल्यूएस)।

मुख्य विशेषताएं थीं:

1. एसजीएसवाई का उद्देश्य ग्रामीण गरीबों को स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराना था।
2. इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में बड़ी संख्या में लघु उद्यम स्थापित करना है। ये उद्यम स्व-रोज़गार के सभी पहलुओं को कवर करेंगे।

- ग्रामीण गरीबों को स्वयं सहायता समूहों में संगठित करना

- बुनियादी ढांचे का निर्माण
- तकनीकी
- क्रेडिट और
- विपणन

3. इस कार्यक्रम के तहत सहायता प्राप्त व्यक्तियों को स्वरोजगार कहा जाता था
4. यह योजना ग्रामीण लोगों को स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) में संगठित करेगी। प्रत्येक एसएचजी में महिलाओं का प्रतिनिधित्व होना अनिवार्य है।
5. यह कार्यक्रम व्यवसाय शुरू करने के लिए बैंक ऋण और सरकारी सब्सिडी प्रदान करेगा।

स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना (एसजेएसआरवाई)

स्वर्ण जयंती शहरी रोज़गार योजना 1 दिसंबर, 1997 से अखिल भारतीय स्तर पर लागू की जा रही है। इस योजना का उद्देश्य शहरी बेरोजगारों और अल्प-रोज़गार वाले गरीबों को लाभकारी रोज़गार प्रदान करना है। इसके लिए गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाले शहरी गरीबों को स्व-रोज़गार उद्यम स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित करना, कौशल प्रशिक्षण प्रदान करना और सामाजिक एवं आर्थिक रूप से उपयोगी सार्वजनिक संपत्तियों के निर्माण में उनके श्रम का उपयोग करके उन्हें रोज़गार प्रदान करना शामिल है। स्वर्ण जयंती शहरी रोज़गार योजना (एसजेएसआरवाई) को 2009-2010 से व्यापक रूप से पुनर्गठित किया गया है, जिसके निम्नलिखित पाँच घटक हैं:

- शहरी स्वरोजगार कार्यक्रम (यूएसईपी)।
- शहरी महिला स्व-सहायता कार्यक्रम (यूडब्ल्यूएसपी)।
- शहरी गरीबों के बीच रोजगार संवर्धन के लिए कौशल प्रशिक्षण (स्टेप-अप)।
- शहरी मजदूरी रोजगार कार्यक्रम (यूडब्ल्यूईपी)।
- शहरी सामुदायिक विकास नेटवर्क (यूसीडीएन)।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013

- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम का उद्देश्य भारत की लगभग दो-तिहाई आबादी, यानी ग्रामीण क्षेत्रों में 75% और शहरी क्षेत्रों में 50%, को रियायती दर पर खाद्यान्न उपलब्ध कराना है। यह विभिन्न मौजूदा खाद्य सुरक्षा योजनाओं को कानूनी अधिकारों में परिवर्तित करता है, यानी कल्याण आधारित दृष्टिकोण से अधिकार आधारित दृष्टिकोण में। इसमें मध्याह्न भोजन योजना, एकीकृत बाल विकास योजना (आईसीडीएस) और सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) शामिल हैं। यह मातृत्व अधिकारों को भी मान्यता देता है।
- इस योजना के तहत, प्रत्येक लाभार्थी को चावल, गेहूँ और मोटे अनाज के लिए क्रमशः 3 रुपये, 2 रुपये और 1 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से प्रति माह 5 किलोग्राम खाद्यान्न प्राप्त करने का अधिकार है। हालाँकि, अंत्योदय अन्न योजना के लाभार्थियों को समान दरों पर प्रति परिवार प्रति माह 35 किलोग्राम अनाज मिलता रहेगा। इसमें 6 महीने तक के बच्चों के लिए स्थानीय आँगनवाड़ी के माध्यम से आयु के अनुसार निःशुल्क भोजन और स्कूलों में 6-14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए एक बार निःशुल्क भोजन का प्रावधान भी है। प्रत्येक गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माता स्थानीय आँगनवाड़ी में निःशुल्क भोजन के साथ-साथ किश्तों में 6,000 रुपये के मातृत्व लाभ की भी हकदार है।
- पात्र लाभार्थियों की पहचान का कार्य राज्य सरकारों पर छोड़ दिया गया है।

अंत्योदय अन्न योजना (AAY)

- इस योजना का उद्देश्य लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (टीपीडीएस) को और अधिक केंद्रित और सबसे गरीब लोगों पर लक्षित बनाना है। इस योजना के तहत लाभार्थी परिवारों को क्रमशः 3 रुपये प्रति किलोग्राम और 2 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से 35 किलोग्राम चावल और गेहूं मिलेगा। मोटा अनाज 1 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से

वितरित किया जाएगा। इस योजना के तहत, सब्सिडी पूरी तरह से केंद्र सरकार द्वारा वहन की जाएगी और वितरण लागत राज्य/केंद्र शासित प्रदेश वहन करेंगे। इस योजना का विस्तार 2.50 करोड़ परिवारों तक किया गया है।

Pradhan Mantri Ujjawala Yojana (PMUY)

- प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना 1 मई 2016 को शुरू की गई थी। इसका उद्देश्य बीपीएल परिवारों को 5 करोड़ मुफ़्त एलपीजी कनेक्शन उपलब्ध कराना है, जिसमें प्रत्येक नए एलपीजी कनेक्शन के लिए 1600 रुपये की वित्तीय सहायता प्रदान की जाएगी। महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए ये कनेक्शन महिलाओं के नाम पर दिए जाएँगे। हाल के बजट में इस लक्ष्य को बढ़ाकर 8 करोड़ कर दिया गया है।
- पात्र बीपीएल परिवारों की पहचान सामाजिक-आर्थिक और जाति जनगणना के आंकड़ों के आधार पर राज्य सरकारों और केंद्र शासित प्रदेशों के परामर्श से की जाएगी। बीपीएल परिवारों को एलपीजी कनेक्शन प्रदान करने से देश में रसोई गैस की सार्वभौमिक पहुँच सुनिश्चित होगी, जिससे महिलाएँ सशक्त होंगी और उनके स्वास्थ्य की रक्षा होगी।
- इसका उद्देश्य जीवाश्म ईंधन पर आधारित खाना पकाने से जुड़े गंभीर स्वास्थ्य खतरों का समाधान करना है। इस योजना के माध्यम से हृदय रोग, स्ट्रोक, क्रॉनिक ऑब्सट्रक्टिव पल्मोनरी डिजीज और फेफड़ों के कैंसर जैसी गैर-संचारी बीमारियों और छोटे बच्चों में तीव्र श्वसन संबंधी बीमारियों का कारण बनने वाले घरेलू वायु प्रदूषण का समाधान किया जाएगा। यह योजना ग्रामीण युवाओं को रसोई गैस की आपूर्ति श्रृंखला में रोजगार भी प्रदान करेगी।

दीनदयाल अंत्योदय योजना (DAY) - राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन (NULM)

- राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन (एनयूएलएम) और राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (एनआरएलएम) को दीनदयाल अंत्योदय योजना (डीएवाई) में समाहित कर दिया गया है।
- एनयूएलएम का उद्देश्य शहरी गरीबों को कौशल विकास और ऋण सुविधाओं का सार्वभौमिक कवरेज प्रदान करना है। यह शहरी गरीबों को उनके मज़बूत जमीनी स्तर के संस्थानों में संगठित करने, कौशल विकास के अवसर पैदा करने और ऋण तक आसान पहुँच सुनिश्चित करके उन्हें स्व-रोज़गार उद्यम स्थापित करने में मदद करने पर केंद्रित है।
- इसका उद्देश्य चरणबद्ध तरीके से शहरी बेघरों को आवश्यक सेवाओं से सुसज्जित आश्रय प्रदान करना और शहरी रेहड़ी-पटरी वालों की आजीविका संबंधी चिंताओं का समाधान करना है। इस योजना के लिए धनराशि केंद्र और राज्यों के बीच 75:25 के अनुपात में साझा की जाएगी। पूर्वोत्तर और विशेष श्रेणी के राज्यों के लिए यह अनुपात 90:10 होगा।

Deen Dayal Antyodaya Yojana (DAY)- National Rural Livelihood Mission (NRLM)

- राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन या आजीविका को दीन दयाल अंत्योदय योजना (डीएवाई) में शामिल कर दिया गया है। इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ हैं:
- **सार्वभौमिक सामाजिक लामबंदी:** प्रत्येक चिन्हित ग्रामीण गरीब परिवार से कम से कम एक महिला सदस्य को स्वयं सहायता समूह (एसएचजी) नेटवर्क के अंतर्गत लाया जाना है।
- **गरीबों की सहभागी पहचान:** लक्षित समूह की पहचान गरीबों की सहभागी पहचान (पीआईपी) पद्धति के माध्यम से की जाती है और इसे बीपीएल से अलग रखा जाता है। लाभार्थी का चयन ग्राम सभा द्वारा किया जाता है और ग्राम पंचायत द्वारा अनुमोदित किया जाता है।
- **सामुदायिक निधि:** एनआरएलएम गरीबों की संस्थाओं को उनकी संस्थागत और वित्तीय प्रबंधन क्षमता को मजबूत करने के लिए स्थायी रूप से संसाधन के रूप में रिवाल्विंग फंड (आरएफ) और सामुदायिक निवेश निधि (सीआईएफ) प्रदान करता है।
- **समावेशन:** गरीबों में वित्तीय साक्षरता और वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देना।
- **आजीविका:** अपने तीन स्तंभों - 'असुरक्षितता में कमी और आजीविका में वृद्धि', 'रोज़गार' और 'उद्यम' के माध्यम से गरीबों के मौजूदा आजीविका पोर्टफोलियो को बढ़ावा देना। गैर-सरकारी संगठनों के साथ साझेदारी और पंचायती राज संस्थाओं के साथ संबंध।

आजीविका ग्रामीण एक्सप्रेस योजना

- आजीविका ग्रामीण एक्सप्रेस योजना, दीनदयाल अंत्योदय योजना - राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (डीएवाई-एनआरएलएम) के अंतर्गत एक नई उप-योजना है। इसका उद्देश्य स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) के सदस्यों को आजीविका का एक वैकल्पिक स्रोत प्रदान करना और पिछड़े ग्रामीण क्षेत्रों में सार्वजनिक परिवहन सेवाओं के संचालन में उनकी सहायता करना है।
- इस प्रकार, यह दूरदराज के गांवों को प्रमुख सेवाओं और सुविधाओं से जोड़ने के लिए सुरक्षित, किफायती और सामुदायिक निगरानी वाला ग्रामीण परिवहन प्रदान करेगा। इसे 2017-18 से 2019-20 तक तीन वर्षों की अवधि के लिए पायलट आधार पर देश के 250 ब्लॉकों में लागू किया जाएगा। इस योजना के तहत, समुदाय आधारित संगठन (सीबीओ) स्वयं सहायता समूह के सदस्यों को वाहन खरीदने के लिए अपनी निधि से ब्याज मुक्त ऋण प्रदान करेंगे।

सरकारी प्रयास: एक आलोचनात्मक विश्लेषण

- हमें स्वतंत्रता प्राप्त हुए 70 वर्ष से अधिक समय बीत चुका है, लेकिन अभी भी अधिकांश लोग अमानवीय जीवन जीते हैं, जबकि एक सूक्ष्म अल्पसंख्यक अत्यधिक विलासिता में जीवन व्यतीत करता है।
- उपरोक्त सभी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के बावजूद गरीबी भारतीय लोकतंत्र पर एक धब्बा बनी हुई है।
- भारत से गरीबी हटाने के लिए कुछ और कठोर कदम उठाने की ज़रूरत है। मुद्रास्फीति से ग्रस्त अर्थव्यवस्था में गरीबी उन्मूलन का कोई भी कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता। मुद्रास्फीति, अपने स्वभाव से ही, असमानताओं को बढ़ाती है, गरीब वर्ग की आय को कम करती है और इस प्रकार उनकी आर्थिक स्थिति को और ख़राब करती है।
- इसलिए, गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम को अभिजात वर्ग (ज़मींदारों, साहूकारों और पूँजीपतियों) के अधिशेष को इकट्ठा करना होगा। चूँकि अधिशेष का बड़ा हिस्सा काले धन के रूप में मौजूद है, इसलिए काले धन को उजागर करने के लिए कठोर उपाय करना ज़रूरी है ताकि संसाधनों का इस्तेमाल विलासितापूर्ण उपभोग में न हो।
- भारत की गहरी जड़ें जमाए बैठी और पारंपरिक गरीबी एक विकराल समस्या है जिसका समाधान किसी जादू की छड़ी से नहीं हो सकता। गरीबी का क्रमिक उन्मूलन पंचवर्षीय योजनाओं का लक्ष्य रहा है, लेकिन सरकार द्वारा इस खाई को पाटने के प्रयासों के बावजूद, अमीर और गरीब के बीच की खाई बढ़ती ही जा रही है।
- इस कार्यक्रम के विभिन्न पहलुओं के क्रियान्वयन ने पहले ही गरीब लोगों पर उल्लेखनीय प्रभाव डाला है और उनकी स्थिति में सुधार लाने में मदद की है। उदाहरण के लिए, आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन और वितरण को प्रोत्साहित करके मूल्य-सीमा की चुनौती से निपटने के पहले ही कदम से लोगों, खासकर निम्न आय वर्ग के लोगों को काफी राहत मिली है।
- इसी प्रकार, ग्रामीण लोगों - कृषि मजदूरों - को राहत सुनिश्चित करने के लिए किए गए उपायों की श्रृंखला, अतिरिक्त भूमि का वितरण, ऋणग्रस्तता का परिसमापन, आवास स्थलों का प्रावधान, बंधुआ मजदूरी की बर्बर प्रथा को समाप्त करना, गरीब छात्रों को पुस्तकों और आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति, तथा विकास के माध्यम से अधिक रोजगार के अवसर प्रदान करना - ये सभी गरीबी को दूर करने में सहायक हैं।
- लेकिन सवाल यह उठता है कि भारत में पंचवर्षीय योजनाएँ गरीबी उन्मूलन में क्यों विफल रहीं? ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि योजनाकारों ने यह मान लिया था कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि के उद्देश्य से "विकास प्लस" रणनीति, और प्रगतिशील कराधान व सार्वजनिक व्यय की नीतियों के पूरक के रूप में, गरीबों के जीवन स्तर में सुधार लाएगी।
- हालाँकि, उत्पादन-प्रणाली में बदलाव किए बिना, नियोजन के उत्पादन-उन्मुख दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप, विकास के लाभों का हड़प उत्पादन के साधनों के स्वामियों - धनी वर्ग - द्वारा किया गया। समस्या रोज़गार उपलब्ध

कराने और निम्न-स्तरीय रोज़गार की उत्पादकता बढ़ाने की है। इस संबंध में, मूल मुद्दा रोज़गार को नियोजन का केंद्र बनाना है; उत्पादन की नीतियों को इसी केंद्रीय उद्देश्य के इर्द-गिर्द बुना जाना चाहिए।

गरीबी उन्मूलन

कार्यक्रम और नीतियों के अलावा, विकास को बढ़ावा देने, प्रयासों को सुव्यवस्थित करने तथा दक्षता और प्रभावशीलता प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रयासों को एक साथ किए जाने की आवश्यकता है।

कुछ सांकेतिक दृष्टिकोण इस प्रकार हैं:

प्रति व्यक्ति खाद्य उत्पादन में वृद्धि

- समग्र रूप से खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि दर जनसंख्या वृद्धि से बमुश्किल ही आगे बढ़ पाई है। प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि से स्थिर आपूर्ति और स्थिर मूल्य सुनिश्चित होंगे। खाद्यान्न उत्पादन के विभिन्न घटकों का परीक्षण बहुत कुछ उजागर करता है। उच्च-गुणवत्ता वाले खाद्यान्नों, अर्थात् गेहूँ और चावल ने मोटे अनाजों की तुलना में स्पष्ट रूप से बेहतर प्रदर्शन किया है, और गेहूँ ने तो बहुत बेहतर प्रदर्शन किया है। यह सच है कि हरित क्रांति की रणनीति, विशेष रूप से गेहूँ के संबंध में, बहुत सफल रही है। हालाँकि, अभी भी बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

कृषि और भूमि सुधार

- भारतीय परिस्थितियों में, अर्थव्यवस्था के आत्मनिर्भर और दीर्घकालिक विकास को सुनिश्चित करने के लिए आमूल-चूल सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों की आवश्यकता है। इन परिवर्तनों से भूमि-पट्टा प्रणाली में सुधार सुनिश्चित होना चाहिए जो गरीब और मध्यम किसानों के लिए लाभकारी हो, उन्हें साहूकारों की कठोर पकड़ से मुक्त करे, मेहनतकश किसानों को कृषि इनपुट की आपूर्ति सुनिश्चित करे, सिंचाई सुविधाओं का विस्तार करे और कृषि-उद्योगों को तेज़ी से आगे बढ़ाने में मदद करे।

आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि

- औद्योगिक क्षेत्र में, विलासिता उपभोक्ता वस्तुओं का निर्माण करने वाली इकाइयों को निर्यात क्षमता और आंतरिक उपभोग संभावनाओं की सीमित सीमा के संदर्भ में अपने उत्पादन के पैटर्न को नया रूप देना होगा, तथा शेष उत्पादक क्षमता का उपयोग सस्ते वस्त्र, बल्ब, ट्यूबलाइट, ट्रांजिस्टर, जूते, साइकिल आदि जैसी कम लागत वाली आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन में करना होगा। मेक इन इंडिया यहां महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

आय असमानता की समस्या से निपटना

- हालाँकि, हमारे निजी क्षेत्र के उत्पादन मिश्रण में यह बदलाव लाने के लिए, ये आह्वान आत्मघाती साबित होंगे, क्योंकि इस तरह से उत्पादन की कल्पना की गई है, जिससे प्रत्येक उत्पादित वस्तु के लिए बहुत कम लाभ होता है। सामाजिक न्याय के विचारों के अलावा, विशुद्ध रूप से आर्थिक विकास के संदर्भ में भी, आय की स्पष्ट असमानताओं से तुरंत निपटना होगा।

काले धन की समस्या से निपटना

- इन उपायों के साथ-साथ, काले धन की समस्या पर भी सभी स्तरों पर सीधा प्रहार करना होगा। यह उपलब्ध वस्तुओं और सेवाओं तथा प्रचलन में मौजूद मुद्रा के बीच संतुलन स्थापित करने के लिए अत्यावश्यक है, संक्षेप में, अर्थव्यवस्था पर मुद्रास्फीति के दबाव से निपटने के लिए; विकासात्मक गतिविधियों के लिए अधिकतम सार्वजनिक वित्त जुटाने के लिए और भ्रष्टाचार, बाज़ार में हेराफेरी और दिखावटी उपभोग की संभावनाओं को समाप्त करने के लिए।

सार्वजनिक क्षेत्र में भारी निवेश

- सार्वजनिक क्षेत्र में व्यापक निवेश और विस्तार कार्यक्रम की आवश्यकता है। इस विस्तार में न केवल बिजली, ऊर्जा आदि जैसे बुनियादी ढाँचे के क्षेत्रों को शामिल किया जाना चाहिए, बल्कि उद्योग के प्रमुख और उपभोक्ता क्षेत्रों के साथ-साथ वाणिज्यिक और वितरण एजेंसियों को भी शामिल किया जाना चाहिए।

- यह विस्तार, व्यापारियों की जमाखोरी और मूल्य हेरफेर की अनियमितताओं से कामकाजी लोगों की रक्षा के लिए जरूरी हो गया है।

शिक्षा

- निरक्षरता एक प्रमुख राष्ट्रीय समस्या और गरीबी का एक प्रमुख कारण है। गाँवों और छोटे शहरों में रहने वाले निरक्षर लोगों को रोज़गार मिलना मुश्किल होता है। लगभग 51 प्रतिशत ग्रामीण परिवार दिहाड़ी मज़दूरी करते हैं, जबकि 30 प्रतिशत कृषि कार्य करते हैं। शिक्षा उन्हें बेहतर रोज़गार पाने के लिए सशक्त बनाएगी, जिससे उन्हें गरीबी से ऊपर उठने में मदद मिलेगी।

कौशल विकास

- अधिकांश उद्योग कुशल श्रमिकों को नियुक्त करते हैं। अधिकांश कारखानों और मिलों में अकुशल श्रमिकों की मांग में गिरावट आई है।
- ऐसी स्थिति में विशिष्ट व्यापार के लिए कौशल विकास पर जोर देने की आवश्यकता है, ताकि इन आधुनिक उद्योगों को कुशल श्रमिक मिल सकें।

Skill India

कौशल भारत - कुशल भारत

- यह कदम हमारे देश से गरीबी उन्मूलन की दिशा में एक बड़ा कदम होगा। कौशल मिशन का उचित कार्यान्वयन भारत में कौशल विकास से जुड़ी समस्या से निपटने के लिए एक बहुत अच्छा पहला कदम हो सकता है।

जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण

- जनसंख्या में भारी वृद्धि के कारण, आवास, भोजन और आश्रय जैसी बुनियादी आवश्यकताओं की माँग चरम पर है। संसाधन सीमित हैं। आवश्यक वस्तुओं की माँग में वृद्धि, इन वस्तुओं की आपूर्ति से कहीं अधिक है।
- मूल्य-वृद्धि (मुद्रास्फीति) की स्थिति उत्पन्न हो रही है। जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने के लाभों को समझाने वाले जागरूकता अभियान व्यापक रूप से प्रसारित किए जाने चाहिए।

महिला सशक्तिकरण

- महिलाएँ (और लड़कियाँ) विश्व की जनसंख्या का लगभग 50 प्रतिशत हैं। सदियों से, उन्हें समाज पर बोझ समझा जाता रहा है। उन्हें शिक्षा, भोजन, पोषण और आर्थिक भागीदारी के समान अवसरों से वंचित रखा गया, जिसके परिणामस्वरूप 'गरीबों का नारीकरण' जैसी स्थिति उत्पन्न हुई। महिला सशक्तिकरण और शिक्षा उन्हें व्यक्तिगत और राष्ट्रीय, दोनों स्तरों पर आर्थिक लाभ पहुँचाने के लिए सशक्त बनाएगी।
- सरकार और सामाजिक संगठन बालिका शिक्षा के महत्व के बारे में जागरूकता पैदा करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठा रहे हैं।

विकेंद्रीकृत योजना और उसका क्रियान्वयन

- नीति निर्माण और नीति कार्यान्वयन में जमीनी हकीकत को प्रतिबिंबित करना आवश्यक है। पिरामिड के निचले स्तर पर मौजूद लोगों की चिंताओं को दूर करने के लिए नीचे से ऊपर की ओर दृष्टिकोण अनिवार्य है।

गरीबी उन्मूलन का वैकल्पिक मॉडल

स्वैच्छिक संगठन की भूमिका

- जहाँ प्रशासन सेवा प्रदान करने में विफल रहा है, वहाँ गैर-सरकारी संगठन सेवा प्रदान करने के एक वैकल्पिक माध्यम के रूप में और गरीबों की आवाज़ बनकर उभरे हैं। गैर-सरकारी संगठन विभिन्न गरीबी उन्मूलन गतिविधियों, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं, जागरूकता सृजन आदि में सक्रिय रूप से शामिल रहे हैं। स्थानीय लोगों तक उनकी गहरी पहुँच है और उन्होंने लोगों का पर्याप्त विश्वास भी अर्जित किया है। सरकार को लालफीताशाही को कम करते हुए सेवाएँ प्रदान करने और लाभ पहुँचाने के लिए उनके सामाजिक नेटवर्क का उपयोग करना चाहिए। प्रथम शिक्षा के क्षेत्र में अच्छा काम कर रहा है। अक्षय पात्र मध्याह्न भोजन में कोल्ड ड्रिंक उपलब्ध कराने में भी अच्छा काम कर रहा है।

कॉर्पोरेट की सामाजिक जिम्मेदारी

- कंपनी अधिनियम, 2013 में संशोधन के बाद, भारत कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (सीएसआर) को अनिवार्य बनाने वाला दुनिया का पहला देश है। वे शिक्षा, गरीबी, लैंगिक समानता और भुखमरी जैसे क्षेत्रों में निवेश कर सकते हैं।
- उदाहरण के लिए, कम्पनियां कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व के अंतर्गत कई गरीबी उन्मूलन परियोजनाएं चला रही हैं।
- टाटा समूह: स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से, यह महिला सशक्तिकरण गतिविधियों, आय सृजन, ग्रामीण सामुदायिक विकास और अन्य सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों में संलग्न है। शिक्षा के क्षेत्र में, टाटा समूह कई संस्थानों को छात्रवृत्ति और निधि प्रदान करता है। समूह बाल शिक्षा, टीकाकरण और एड्स के बारे में जागरूकता पैदा करने जैसी स्वास्थ्य सेवा परियोजनाओं में भी संलग्न है।
- अल्ट्राटेक सीमेंट: इसकी सीएसआर गतिविधियां स्वास्थ्य सेवा और परिवार कल्याण कार्यक्रमों, शिक्षा, बुनियादी ढांचे, पर्यावरण, सामाजिक कल्याण और स्थायी आजीविका पर केंद्रित हैं।
- कंपनी ने चिकित्सा शिविर, टीकाकरण कार्यक्रम, स्वच्छता कार्यक्रम, स्कूल नामांकन, वृक्षारोपण अभियान, जल संरक्षण कार्यक्रम, औद्योगिक प्रशिक्षण और जैविक कृषि कार्यक्रम आयोजित किए हैं। आईटीसी समूह: उनका ई-चौपाल कार्यक्रम, जिसका उद्देश्य ग्रामीण किसानों को कृषि उत्पादों की खरीद के लिए इंटरनेट के माध्यम से जोड़ना है, 40,000 गाँवों और चार मिलियन से अधिक किसानों को कवर करता है। इसका सामाजिक और कृषि वानिकी कार्यक्रम किसानों को बंजर भूमि को लुगदी वृक्षारोपण में बदलने में सहायता करता है। सूक्ष्म उद्यमों या ऋणों के माध्यम से सामाजिक सशक्तिकरण कार्यक्रमों ने 40,000 से अधिक ग्रामीण महिलाओं के लिए स्थायी आजीविका का सृजन किया है।

सार्वजनिक निजी भागीदारी

- बुनियादी ढाँचे की कमी ने रोज़गार सृजन और विकास के अवसरों में बाधाएँ पैदा की हैं, जिसका सीधा असर गरीबी पर पड़ता है। लेकिन चूँकि सरकार के पास बुनियादी ढाँचे की कमी को पूरा करने के लिए न तो संसाधन हैं और न ही मानव शक्ति, इसलिए निजी क्षेत्र अपने धन, तकनीकी ज्ञान और विशेषज्ञता के साथ सरकारी प्रयासों में सहयोग देने के लिए आगे आते हैं।
- सार्वजनिक-निजी भागीदारी (पीपीपी) को बुनियादी ढाँचे के निर्माण और रखरखाव सेवाएँ प्रदान करने में कई सफलताएँ मिली हैं। कई हवाई अड्डों, राजमार्गों और बंदरगाहों का निर्माण किया गया है और पीपीपी मॉडल के तहत उनका संचालन किया जा रहा है। इनमें बुनियादी ढाँचे की कमी को कम करने और रोज़गार सृजन तथा गरीबी कम करने के नए रास्ते खोलने की क्षमता है।

उद्यमशीलता

- उद्यमी समाज की समस्याओं के समाधान के लिए नवोन्मेषी उत्पाद और विचार लेकर आते हैं। वे रोज़गार के नए अवसर भी पैदा करते हैं। उद्यमियों का ध्यान गरीबों की समस्याओं के समाधान, भूख और कुपोषण को दूर करने के नए और अभिनव तरीके, प्रभावी और कुशल सेवा वितरण, और सरकारी एजेंसियों के माध्यम से सेवा वितरण को सुव्यवस्थित करने के नए तरीकों पर केंद्रित करने की आवश्यकता है।
- चूंकि गरीबों की क्रय क्षमता कम है, इसलिए गरीबों की जरूरतों पर पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिए - सस्ते और गुणवत्ता वाले उत्पाद या विकल्प जैसे सस्ता और विश्वसनीय जल शोधक, कुशल खाना पकाने वाले स्टोव, संचार के सस्ते और तेज साधन आदि।

निष्कर्ष

- तेज़ी से बढ़ती अर्थव्यवस्था के साथ, गरीब दिन-ब-दिन पिछड़ते जा रहे हैं। भारत एक महत्वाकांक्षी वैश्विक शक्ति बनने का जोखिम नहीं उठा सकता, क्योंकि लाखों लोग दो वक़्त की रोटी भी नहीं जुटा पा रहे हैं। गरीबी हमारे लोकतंत्र पर एक बड़ा धब्बा है। जब तक गरीबी रहेगी, तब तक समानता और अवसरों की समानता नहीं हो सकती। संविधान के वादे और हमारे पूर्वजों के समतावादी समाज के सपने अधूरे हैं।
- गरीबी उन्मूलन और सभी को बुनियादी ज़रूरतें प्रदान करने के लिए नए और अनोखे समाधान सोचने का समय आ गया है। आर्थिक सर्वेक्षण में सार्वभौमिक बुनियादी आय (यूबीआई) पर चर्चा एक सराहनीय शुरुआत रही है। सरकार को अपनी बात पर अमल करना चाहिए और गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के प्रभावी क्रियान्वयन के माध्यम से गरीबी में भारी कमी लानी चाहिए।
- ई-गवर्नेंस, प्रत्यक्ष लाभ अंतरण, सब्सिडी को तर्कसंगत बनाना, प्रभावी निगरानी आदि से लीकेज पर लगाम लग सकती है और JAM (जनधन - आधार - मोबाइल) जैसे साधन बेहतर सेवाएँ प्रदान करने के लिए आवश्यक प्रोत्साहन प्रदान कर सकते हैं। हर आँख से आँसू पोंछने और गांधीजी के अंत्योदय और सर्वोदय के सपनों को साकार करने का समय आ गया है।

भारत में शहरीकरण

- **शहरीकरण का तात्पर्य ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर जनसंख्या के स्थानांतरण** , ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के अनुपात में होने वाली कमी और समाज द्वारा इस परिवर्तन के साथ अनुकूलन के तरीकों से है। यह वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से **शहरों का विकास होता है क्योंकि जनसंख्या का एक बड़ा प्रतिशत शहरों में रहने लगता है।**
- शहरीकरण का आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण और तर्कसंगतीकरण की समाजशास्त्रीय प्रक्रिया से गहरा संबंध है। शहरीकरण केवल एक आधुनिक परिघटना नहीं है, बल्कि वैश्विक स्तर पर मानवीय सामाजिक जड़ों का एक तेज़ और ऐतिहासिक परिवर्तन है, जिसके तहत मुख्यतः ग्रामीण संस्कृति का स्थान मुख्यतः शहरी संस्कृति ले रही है।
- शहर की परिभाषा समय-समय पर और जगह-जगह बदलती रहती है, लेकिन शहरीकरण को दो अर्थों में समझाना सबसे आम है: **जनसांख्यिकीय और समाजशास्त्रीय।** जनसांख्यिकीय दृष्टि से, जनसंख्या के आकार और घनत्व तथा अधिकांश वयस्क आबादी के काम की प्रकृति पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से, समाज में विविधता, अवैयक्तिकता, परस्पर निर्भरता और जीवन की गुणवत्ता पर ध्यान केंद्रित किया जाता है।

जनसांख्यिकीय अर्थ में शहरीकरण

भारत की जनगणना के अनुसार

- भारत की जनगणना 2011 के लिए शहरी क्षेत्र की परिभाषा इस प्रकार है;

1. वे सभी स्थान जहां नगर पालिका, निगम, छावनी बोर्ड या अधिसूचित नगर क्षेत्र समिति आदि हों (इन कस्बों को वैधानिक कस्बों के रूप में जाना जाता है)
2. अन्य सभी स्थान जो निम्नलिखित मानदंडों को पूरा करते हैं:

- (क) न्यूनतम जनसंख्या 5,000;
- (ख) कम से कम 75 प्रतिशत पुरुष मुख्य कार्यशील जनसंख्या गैर-कृषि कार्यों में संलग्न हो; और
- (ग) कम से कम 400 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी जनसंख्या घनत्व (इन कस्बों को जनगणना शहर कहा जाता है)

उपनगरीय विस्तार

- शहरों और कस्बों का एक **समूह जो एक सतत नेटवर्क बनाता है** —इसमें और भी बड़ी संख्या में लोग शामिल हो सकते हैं। भारत में उभरते महानगर: **मुंबई से अहमदाबाद तक, आणंद, वडोदरा, सूरत, वलसाड होते हुए पुणे तक विस्तृत।**

महानगर

- एक महानगर को आमतौर पर **लगभग आसन्न महानगरीय क्षेत्रों की एक श्रृंखला** के रूप में परिभाषित किया जाता है , जो कुछ हद तक अलग हो सकते हैं या एक सतत शहरी क्षेत्र में विलीन हो सकते हैं। **दिल्ली का राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एनसीआर)** भारत में महानगरों का एक उदाहरण है।

वैश्विक शहर

- वैश्विक शहर, एक शहरी केंद्र जो **महत्वपूर्ण प्रतिस्पर्धी लाभ प्राप्त करता है और जो वैश्वीकृत आर्थिक प्रणाली के भीतर एक केंद्र के रूप में कार्य करता है** । उदाहरण: **मुंबई।**

भारत में शहरीकरण के सामाजिक प्रभाव

परिवार और रिश्तेदारी

पारिवारिक संरचना पर:

- शहरी संयुक्त परिवार का स्थान धीरे-धीरे एकल परिवार ने ले लिया है।
- **परिवार के आकार में बदलाव:** भारत में, परिवार के आकार में कमी का एक कारण आर्थिक कठिनाइयाँ, कम आय, जीवनयापन की ऊँची लागत, बच्चों की शिक्षा का खर्च और बेहतर जीवन स्तर बनाए रखने की इच्छा हो सकती है, जो कि अधिक किफायती छोटे आकार के परिवार में सबसे बेहतर ढंग से प्राप्त की जा सकती है। परिणामस्वरूप, माता-पिता और बच्चों वाला एकल परिवार समाज का आदर्श बन गया और जल्द ही पारंपरिक, विस्तृत परिवार, जिसमें आमतौर पर तीन पीढ़ियाँ होती थीं, का स्थान समाप्त हो गया।
- **भारत में महिला प्रधान परिवार** एक निरंतर बढ़ती हुई परिघटना और प्रवृत्ति बन गए हैं। परित्याग, अलगाव या तलाक जैसे कारणों से विवाहों का एक बड़ा हिस्सा अचानक टूट जाता है। जिन महिलाओं का तलाक बाद की उम्र में होता है, वे ज़्यादातर जीवन भर अविवाहित रहती हैं और अपने आश्रितों के साथ रहती हैं। इसके अलावा, अंतर-राज्यीय प्रवास, विशेष रूप से पुरुषों के प्रवास के कारण, ग्रामीण क्षेत्रों में महिला प्रधान परिवार दिखाई देते हैं।
- **पति-प्रधान परिवार की जगह "समतावादी परिवार" ने ले ली है,** जहाँ पत्नी को पतियों के लगभग बराबर अधिकार प्राप्त हैं। पति और पत्नी की भूमिका में यह समरूपता, कार्यबल में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी और उसके बाद निर्णय लेने में उनकी भूमिका के कारण है।
- **शहरीकरण के कारण प्रजनन क्षमता में बदलाव:** परिवार में बच्चों का आर्थिक योगदान कम होने के कारण, पारिवारिक श्रम का स्वरूप निरर्थक हो गया। कृषि से दूर होने के कारण, बड़ी संख्या में बच्चों की आवश्यकता कम हो गई। स्वास्थ्य सेवा और बाल जीवन स्तर में सुधार ने भी इसमें योगदान दिया। बच्चों की संख्या के बजाय जीवन की गुणवत्ता पर ज़ोर दिया गया, जो पारिवारिक मूल्यों में एक नई अवधारणा थी।

पारिवारिक भूमिका पर

- **सामाजिक पूँजी** : परंपरागत रूप से, पारिवारिक पूँजी अविभाजित रहती थी, वंश-परम्परा के रखरखाव की गारंटी होती थी और रीति-रिवाज़ और परंपराएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचती थीं। लेकिन शहरीकरण के साथ, गाँवों से शहरों की ओर बड़े पैमाने पर प्रवास के कारण परिवार के मुखियाओं के अधिकार में कमी आई और बच्चों को कम उम्र में ही घर छोड़ने के लिए प्रेरित किया गया। परिवार टूट गए, पारिवारिक वंश आगे नहीं बढ़ पाए, खासकर स्कूलों और वित्तीय एजेंसियों जैसे विशिष्ट संस्थानों के उदय के साथ।
- **मूल्य हस्तांतरण** : पारंपरिक समाजों में, मूल्य हस्तांतरण और भूमिका आवंटन के लिए परिवार एक महत्वपूर्ण संस्था थी। लेकिन शहरीकरण के आगमन के साथ, स्कूल जैसी विशिष्ट संस्थाओं ने मूल्य हस्तांतरण की इस प्रणाली का स्थान ले लिया, जिसके परिणामस्वरूप भावी पीढ़ी में मूल्य हस्तांतरण कमजोर हो गया।
- यह बात युवा पीढ़ी द्वारा विवाह के संबंध में बढ़ते निर्णय में देखी जा सकती है।
- **सहकारी परिवार:** सहकारी और सहायक संस्था के रूप में परिवारों का अस्तित्व शहरीकरण के कारण समाप्त हो गया।
- **शहरीकरण और जाति:** शहरीकरण, शिक्षा और व्यक्तिगत उपलब्धियों तथा आधुनिक प्रतिष्ठा प्रतीकों के प्रति रुझान के विकास के साथ जातिगत पहचान कम होती जा रही है। लेकिन जाति की जीवंतता अभी भी निम्नलिखित में देखी जा सकती है:
- जाति, ट्रेड यूनियन जैसे संगठनों के आयोजन के लिए एक आधार के रूप में कार्य करती है, जो हित समूहों के रूप में कार्य करती है, जो अपने जाति के सदस्यों के अधिकारों और हितों की रक्षा करती है।
- शहरी बस्तियों में सामाजिक संपर्क में अनौपचारिकता का उच्च स्तर देखने को मिलता है और जाति व रिश्तेदारी इस भागीदारी का प्रमुख आधार हैं। यह अनौपचारिकता धर्म पर भी लागू होती है, जैसा कि देखा जा सकता है।
- शहरी केन्द्रों में सोशल मीडिया द्वारा उपलब्ध कराए गए महत्वपूर्ण स्थान की प्रगति के साथ, जिसने चुनावी चेतना के स्तर को भी बढ़ाया, पहचान, विशेष रूप से जाति, चुनावी लामबंदी के लिए एक साधन बन गई।
- **बहिष्कृत शहरीकरण:** शहरीकरण प्रक्रिया में एक अंतर्निहित जाँच प्रणाली होती है, जो अपेक्षाकृत उच्च आर्थिक और सामाजिक स्तर के लोगों को चुनती है। आमतौर पर, भारत में उच्च जाति के लोग निम्न वर्ग के लोगों की तुलना में शहरी लाभों का अधिक आनंद लेते हैं।

  शहरीकरण और महिलाएं: शहरीकरण अक्सर महिलाओं के लिए अधिक स्वतंत्रता और अवसर से जुड़ा होता है - लेकिन इसके साथ ही हिंसा का उच्च जोखिम और रोजगार, गतिशीलता और नेतृत्व पर बाधाएं भी जुड़ी होती हैं, जो गहरी लिंग-आधारित असमानताओं को दर्शाती हैं।
- शहरीकरण ने महिलाओं के जीवन में एक कथित बदलाव लाया जो भावात्मक व्यक्तिवाद द्वारा निर्देशित था। भावात्मक व्यक्तिवाद शब्द इस प्रक्रिया पर लागू होता है, जो रोमांटिक लगाव के मानदंडों द्वारा निर्देशित व्यक्तिगत आकर्षण के आधार पर विवाह संबंधों का निर्माण है। परिणामस्वरूप, शहरीकृत समाज "प्लास्टिक कामुकता" के युग की ओर बढ़ रहा है; "प्लास्टिक" व्यक्तिगत पसंद और सामाजिक मानदंडों के ढांचे दोनों के संदर्भ में कामुक अभिव्यक्ति की लचीलापन को दर्शाता है। शहरीकरण के कारण सामाजिक परिवर्तनों के संदर्भ में "लचीली कामुकता" के उभरने का तर्क दिया जाता है। यह आधुनिकतावादी कामुकता से जुड़ी विशेषताओं के विपरीत है, जिसे जीवविज्ञान या सामाजिक मानदंडों द्वारा निश्चित माना जाता है। "निश्चित कामुकता" आधुनिकता के द्वैत से जुड़ी है - या तो विषमलैंगिक या समलैंगिक, या तो वैवाहिक या विवाहेतर
- व्यवसायों के विविधीकरण ने महिलाओं को काफ़ी आर्थिक आज़ादी दी है, जिससे पारिवारिक पारिस्थितिकी तंत्र पर उनकी निर्भरता कम हुई है। आर्थिक आज़ादी के कारण परिवार का आकार भी छोटा हुआ है।
- शहरी सुविधाओं तक पहुँच बाल विवाह, महिला जननांग विकृति और अन्य प्रकार की लैंगिक हिंसा की दरों में कमी लाती है। "शहरी वातावरण अलग-अलग मूल्यों, अलग-अलग संस्कृतियों और प्रणालियों को जन्म देता है। अगर

सुनियोजित तरीके से काम किया जाए, तो इससे महिलाओं और लड़कियों को शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं तक बेहतर पहुँच मिलती है।"

शहरीकरण और प्रवास: प्रवासन शहरीकरण का कारण और परिणाम दोनों है। प्रवासन वह जनसांख्यिकीय प्रक्रिया है जो ग्रामीण क्षेत्रों को शहरी क्षेत्रों से जोड़ती है, जिससे शहरों का विकास होता है या उन्हें बढ़ावा मिलता है।

- प्रवासन परिवार की संरचना को बदल रहा है, क्योंकि एकल परिवार परिवारों की संख्या बढ़ रही है। ये परिवार आमतौर पर महिलाओं द्वारा संचालित परिवार होते हैं।
- चूँकि आमतौर पर पुरुष सदस्य शहरों की ओर पलायन करते हैं, इससे ग्रामीण स्तर पर कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी बढ़ जाती है। इसके परिणामस्वरूप महिलाओं की बातचीत करने की क्षमता कम हो जाती है। इसके अलावा, इससे ग्रामीण भारत में महिलाओं के खिलाफ हिंसा भी बढ़ती है।
- प्रवासन ग्रामीण इलाकों में शहरी सुविधाएँ प्राप्त करने में भी मदद करता है। अक्सर देखा गया है कि शहरों से लौटने वाले प्रवासी उन परिस्थितियों में काम नहीं करते जिनमें वे पहले काम करते थे। इसे सामाजिक धन प्रेषण कहते हैं। सामाजिक धन प्रेषण - किसी व्यक्ति द्वारा समय के साथ आत्मसात किए गए कौशल, विचारों और प्रथाओं का एक समूह है, जो उसके व्यक्तित्व और जीवनशैली में परिलक्षित होने लगते हैं; संक्षेप में, यह प्रवासन का सामाजिक प्रभाव ही है जो सामाजिक विकास को जन्म देता है। प्रवासी अपने घर पर परिवारों के साथ बातचीत के माध्यम से, या जब वे छुट्टियाँ मना रहे होते हैं या सेवानिवृत्ति के बाद हमेशा के लिए लौट रहे होते हैं, तो विभिन्न माध्यमों से इन अतिरिक्त धन प्रेषणों को लगातार स्थानांतरित करते रहते हैं। इसने ग्रामीण भारत की स्थिति बदल दी है।
- प्रवास के साथ, ग्रामीण-शहरी सीमांत क्षेत्रों की संख्या बढ़ रही है। ग्रामीण-शहरी सीमांत क्षेत्र (उदाहरण के लिए, उप-नगरीय क्षेत्र) विशिष्ट विशेषताओं वाला एक क्षेत्र है जो शहरी परिसर में केवल आंशिक रूप से समाहित है और जो अभी भी आंशिक रूप से ग्रामीण है। लेकिन समय के साथ यह अधिक अनियोजित शहरीकरण का परिणाम है। इसके अलावा, ऐसे स्थानों की सामाजिक स्थितियों में शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों की विशेषताएं शामिल हैं। इससे अक्सर इन दो मूल्यों के बीच संघर्ष होता है। उदाहरण के लिए, बालिकाओं को शिक्षित करना अपने आप में शहरी मूल्य है, लेकिन जब शिक्षा ऐसे बच्चों में आकांक्षा लाती है। लेकिन जब ये बच्चे खुद को मुखर करते हैं, तो यह संघर्ष उत्पन्न करता है जो कभी-कभी सम्मान-हत्या जैसे परिदृश्य में परिणत होता है।

शहरीकरण और स्वास्थ्य:

- स्वास्थ्य असमानताएँ देशों के भीतर लोगों के समूहों और देशों के बीच स्वास्थ्य संबंधी ऐसी असमानताएँ हैं जिन्हें टाला जा सकता है। ये असमानताएँ समाजों के भीतर और उनके बीच की असमानताओं से उत्पन्न होती हैं। सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ और लोगों के जीवन पर उनका प्रभाव उनके बीमार होने के जोखिम और उन्हें बीमार होने से बचाने या बीमारी होने पर उसका इलाज करने के लिए उठाए जाने वाले कदमों को निर्धारित करता है।
- भारत की स्वास्थ्य प्रणाली को भारतीय समाज के सबसे वंचित सदस्यों की जरूरतों को पूरा करने की सतत चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। स्वास्थ्य देखभाल तक पहुंच में सुधार की दिशा में प्रगति के बावजूद, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, भूगोल और लिंग के आधार पर असमानताएं बनी हुई हैं। यह उच्च आउट-ऑफ-पॉकेट खर्चों से और भी जटिल हो जाता है, स्वास्थ्य देखभाल का बढ़ता वित्तीय बोझ निजी परिवारों पर भारी पड़ रहा है, जो भारत में स्वास्थ्य खर्च का तीन-चौथाई से अधिक हिस्सा है। स्वास्थ्य व्यय आधे से अधिक भारतीय परिवारों के गरीबी में गिरने के लिए जिम्मेदार है; इसका प्रभाव बढ़ रहा है जिससे हर साल लगभग 39 मिलियन भारतीय गरीबी में धकेल रहे हैं। इसे आम तौर पर स्वास्थ्य के लिए सामाजिक प्रवणता के रूप में जाना जाता है। स्वास्थ्य में सामाजिक प्रवणता इस तथ्य को संदर्भित करती है कि जनसंख्या की स्वास्थ्य स्थिति में असमानताएं सामाजिक स्थिति में असमानताओं से संबंधित हैं।

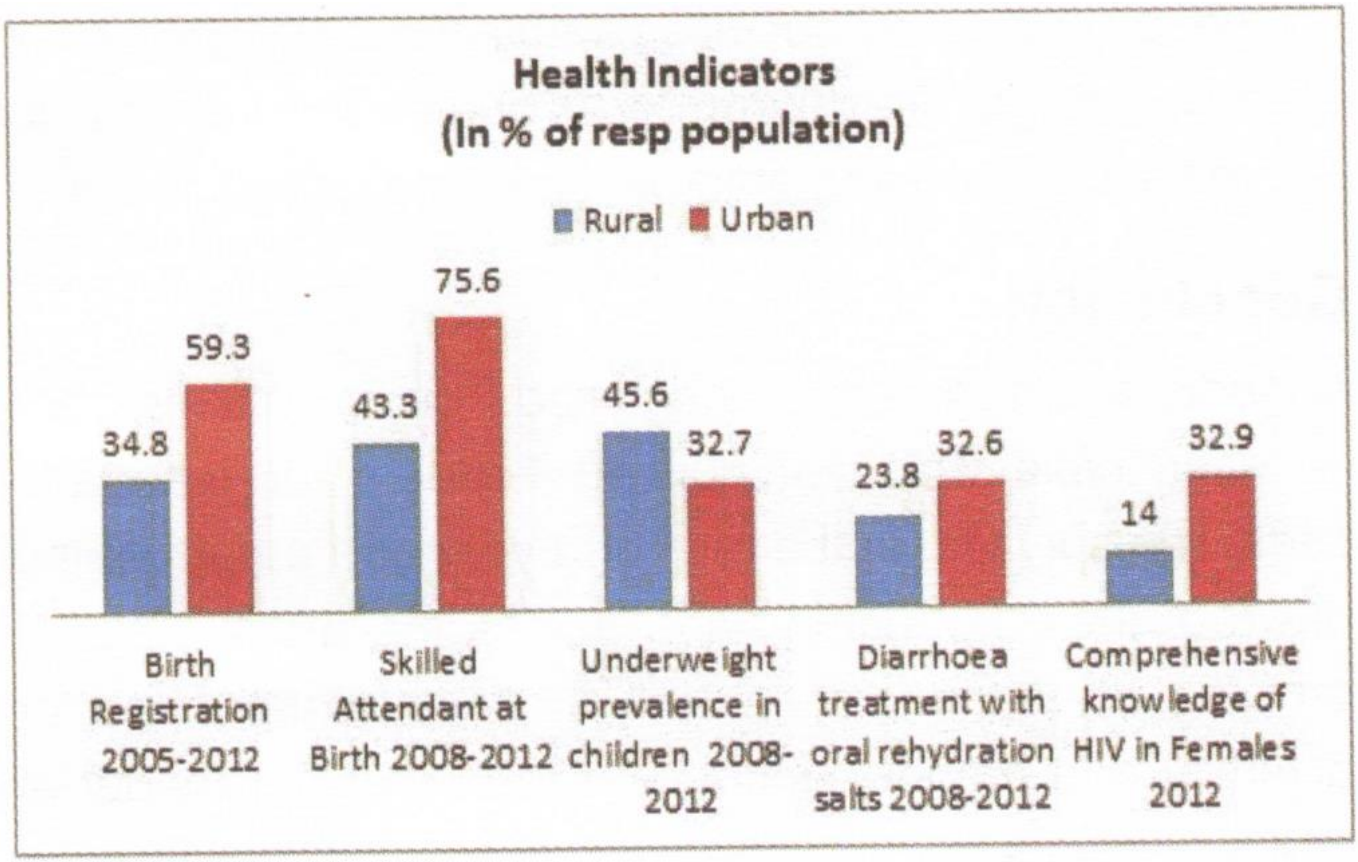

शहरीकरण और पहचान

- शहरी क्षेत्रों की विशेषता जाति या क्षेत्रीय पहचान जैसे सामाजिक नेटवर्क का अभाव है। लेकिन ये अंतर आमतौर पर धर्म जैसी बड़ी सामाजिक पहचानों से भर जाते हैं। इसके अलावा, धर्म चुनावी लामबंदी का एक माध्यम बन जाता है। इससे विभिन्न धार्मिक समूहों के बीच एक खाई पैदा होती है, जो पूरे भारत में बढ़ती सांप्रदायिक घटनाओं के रूप में प्रकट होती है।
- शहरीकरण, निस्संदेह, कई चुनौतियों का अग्रदूत है। इनमें सामाजिक अलगाव, भीड़भाड़, आय असमानता, मुद्रास्फीति की प्रवृत्तियाँ और पर्यावरणीय क्षरण शामिल हैं। विकास निर्माण जैसे क्षेत्रों द्वारा संचालित हो सकता है, जिससे रियल एस्टेट बुलबुले को बढ़ावा मिल सकता है जो राष्ट्रीय और यहाँ तक कि क्षेत्रीय अर्थव्यवस्थाओं के लिए भी खतरा बन सकते हैं। इस बीच, शहरों की बढ़ती शक्ति शहरी और ग्रामीण विभाजन को स्थायी बना सकती है, जिससे लोकलुभावन राष्ट्रवाद को बढ़ावा मिल सकता है। वैश्वीकरण-विरोधी स्वरों में हालिया उभार इस तथ्य को स्पष्ट करता है। वैश्वीकरण के कारण, शहरी आबादी का एक बड़ा हिस्सा अपनी आजीविका चलाने में कठिनाई का सामना कर रहा है। यह वैश्वीकरण से होने वाले कथित नुकसान के विरुद्ध अति-राष्ट्रवाद को जन्म दे रहा है।
- ऐसे में, पारस्परिक निर्भरता इस तरह के आक्रोश को कम कर सकती है। वैश्विक संदर्भ में, ऐसी निर्भरता वैश्विक शहरों द्वारा निर्मित होती है। वैश्विक समाज, सांस्कृतिक विविधता, सूचना साझाकरण और राजनीतिक जुड़ाव को बढ़ावा देता है, जो एक गहरे ध्रुवीकृत राष्ट्रीय समाज में उल्लेखनीय प्रतीक हैं। यहाँ के लोगों की कई पहचानें हैं और उन्हें किसी एक विशेषण में नहीं बाँधा जा सकता।

शहरीकरण की वर्तमान दुर्दशा: शहरीकरण प्रदूषण, अपराध और असमानताओं से ग्रस्त, "विकासहीन शहरों" का निर्माण कर सकता है। मुंबई एक ऐसा ही चेतावनीपूर्ण उदाहरण है।

- पर्यावरण क्षरण का मुख्य कारण तेज़ी से हो रहा शहरीकरण है, क्योंकि ग्रीनहाउस गैसों का उत्पादन करने वाले सभी उद्योग शहरी क्षेत्रों में स्थित हैं। शहरी क्षेत्र औद्योगिक प्रक्रियाओं, लोगों और वस्तुओं के परिवहन आदि के लिए जीवाश्म ईंधन के दहन से उत्पन्न मानवजनित कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन के मुख्य स्रोत हैं। इसके अलावा, पर्यावरण प्रदूषण का मुद्दा भी है। अक्सर देखा गया है कि दूरदराज के इलाके, उपनगरों द्वारा उत्पन्न प्रदूषण के कारण सबसे ज़्यादा प्रभावित होते हैं।

- यह तर्क दिया जा सकता है कि वायु प्रदूषण भारत में गैर-संचारी रोगों की आवृत्ति बढ़ा रहा है, जिससे पहले से ही गरीबी के दुष्चक्र में फंसे लोग और अधिक गरीबी में फंस रहे हैं।
- इसके अलावा, उपग्रह शहरों से निकलने वाले ठोस कचरे का मुद्दा भी है, जिसे प्राधिकरण द्वारा परिधीय क्षेत्रों में फेंका जाता है। उदाहरण के लिए, कर्नाटक के एक सुदूर इलाके, मावलीपुरा में, अधिकारियों द्वारा ठोस कचरा फेंकने के सवाल पर दंगे जैसी स्थिति है।

असमानता

- बड़े शहर ऐसे स्थान हैं जहाँ सबसे प्रतिभाशाली लोगों (सुपरस्टार) को असमान रूप से पुरस्कृत किया जाता है और सबसे कम प्रतिभाशाली लोगों को असमान रूप से असफल कर दिया जाता है। संक्षेप में, बड़े शहर सबसे योग्य लोगों को उन गतिविधियों में स्वयं चयन करने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करते हैं जो सफल लोगों को उच्च लाभ प्रदान करती हैं। हालाँकि, इन गतिविधियों से जुड़ी असफलता का जोखिम भी बढ़ जाता है क्योंकि बड़े शहरों में काम करने वाले अधिक और बेहतर प्रतिद्वंद्वियों के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं। हालाँकि, यह पुरस्कार कई मामलों में विशिष्ट मानदंड पर आधारित होता है।
- सबसे कुशल लोगों को असमान पुरस्कार - और कम कुशल लोगों को असफलता - आय असमानता को बढ़ावा देते हैं। बड़े शहरों में दोनों ही रास्ते ज़्यादा मज़बूत होते हैं, जिससे शहर के आकार और असमानता के बीच सकारात्मक संबंध स्थापित होता है, भले ही उद्योग संरचना और शैक्षिक उपलब्धि में अंतर को नज़रअंदाज़ कर दिया जाए। इसके कारण, वैश्वीकरण दुनिया भर में सापेक्षिक वंचना की स्थितियाँ पैदा कर रहा है।

  अपराध: शहरीकरण की परिस्थितियाँ अनंत आकांक्षाओं की अराजकता पैदा करती हैं। संसाधनों की कमी, कई परिस्थितियों में लोगों को इन ज़रूरतों की पूर्ति के लिए अपराध का रास्ता अपनाने पर मजबूर करती है। कई मामलों में, दोहरी नौकरी वाले परिवारों की सीमाएँ और सामाजिक परिस्थितियाँ कई बच्चों को अपराध की ओर धकेलती हैं। यही समाज में बढ़ते अपराध का कारण है।
- अपराध-प्रवण समाज अपने निवासियों की स्वतंत्र आवाजाही को कम कर देता है, जिससे शहरीकरण के लाभ भी कम हो जाते हैं।

अनियोजित शहरीकरण

- चूँकि भारत में अधिकांश शहरीकरण अनियोजित है, इसलिए झुग्गी-झोपड़ियाँ असमान गति से बढ़ रही हैं। ये क्षेत्र शहरी केंद्रों में लोकलुभावनवाद और अपराध का केंद्र बन गए हैं। इसके अलावा, इन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों का विश्वदृष्टिकोण केवल अपनी ज़रूरतें पूरी करने तक ही सीमित है, और वे विभिन्न प्रकार की संतुष्टि के लाभों को नज़रअंदाज़ कर देते हैं।
- इसके अलावा, भारत में शहरीकरण की अत्यधिक बोझिल परिस्थितियाँ उप-नगरीकरण की स्थितियाँ पैदा कर रही हैं। उपनगरीकरण में लोग निवास के लिए परिधीय शहरों की ओर रुख करते हैं।

आगे बढ़ने का रास्ता

- सफल शहरी शासन के लिए विविधता पर ध्यान देना ज़रूरी है। प्रभावी योजनाकारों को कानूनी, संचार, परिवहन और आवास संबंधी बुनियादी ढाँचा विकसित करना होगा जिससे आज के उच्च तकनीक युग में पूँजी और रचनात्मकता का एक महत्वपूर्ण भंडार जुटाया जा सके।
- संक्षेप में, व्यावहारिक शहरी लोग अपने से अलग लोगों के साथ जगह साझा करना सीखते हैं। इस प्रक्रिया में, वे "पुनरावृत्त" बातचीत, या बार-बार होने वाले आदान-प्रदान का अनुभव करते हैं जो उन्हें और उनकी पहचान को बदल देता है। इस शहरी परिवेश में जैसे-जैसे पहचानें टकराती और मिटती हैं, नए लोग उभर कर सामने आते हैं जो न तो "हम" होते हैं और न ही "वे"। ऐसी बहुलवादी संवेदनाएँ, बदले में, नागरिकों को राष्ट्रवादी राजनेताओं द्वारा अक्सर प्रचारित किए जाने वाले अंतर के दानवीकरण को चुनौती देने के लिए मजबूर करती हैं।

- विश्व शहरी फोरम में विश्व बैंक ने तीन बड़े विचार प्रस्तुत किए जो नए शहरी एजेंडे को सफलतापूर्वक क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक हैं:
  - नए शहरी एजेंडे का वित्तपोषण
  - क्षेत्रीय विकास को बढ़ावा देना
  - जलवायु परिवर्तन और आपदा जोखिमों के प्रति शहरी लचीलापन बढ़ाना
- एक नई शहरीकरण नीति की घोषणा, जो भारतीय शहरों को केवल भूमि उपयोग के एक समूह के रूप में देखने के बजाय, मानव पूंजी के समूहों के इर्द-गिर्द पुनर्निर्माण करने का प्रयास करती है, एक स्वागत योग्य बदलाव है। हमें अपने शहरों को सशक्त बनाने की आवश्यकता है, भूमि नीति सुधारों पर ध्यान केंद्रित करते हुए, शहरी स्थानीय निकायों को वित्तपोषण जुटाने और स्थानीय भूमि उपयोग मानदंडों को लागू करने की स्वतंत्रता प्रदान करते हुए।

निष्कर्ष

- एक मध्ययुगीन जर्मन कानून ने "शहर की हवा आज़ादी देती है" सिद्धांत को मान्यता दी, जो शहर में एक साल और एक दिन तक रहने वाले विद्रोही दासों को आज़ादी प्रदान करता था। 21वीं सदी की शुरुआत में, और वैश्विक दक्षिण के बढ़ते शहरी परिदृश्य में, शहर की हवा विविधता और सशक्तिकरण की आशा जगाती रहेगी, बशर्ते कि शहर का मॉडल टिकाऊ हो।

वैश्वीकरण और भारतीय समाज

- वैश्वीकरण को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें विभिन्न समाजों का सामाजिक जीवन राजनीतिक और व्यापारिक संबंधों से लेकर साझा संगीत, पहनावे की शैली, जनसंचार माध्यमों आदि जैसे विभिन्न पहलुओं पर आधारित अंतर्राष्ट्रीय प्रभावों से तेज़ी से प्रभावित होता है। यह दुनिया भर में वस्तुओं, सेवाओं और लोगों की निर्बाध और एकीकृत आवाजाही है। सरल शब्दों में, यह बढ़ते एकीकरण और परस्पर निर्भरता की एक प्रक्रिया है। इसे आर्थिक, सामाजिक, तकनीकी, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिवर्तनों की एक जटिल श्रृंखला के रूप में देखा जाता है जिसने अलग-अलग स्थानों पर लोगों और आर्थिक कर्ताओं (कंपनियों) के बीच परस्पर निर्भरता, एकीकरण और अंतःक्रिया को बढ़ाने में मदद की है।
- यद्यपि वैश्वीकरण प्राचीन काल से ही अस्तित्व में था, फिर भी पिछले तीन दशकों में इसका प्रभाव प्राचीन काल की तुलना में कहीं अधिक तीव्र गति से महसूस किया गया है, जब अन्य सभी देशों के बीच व्यापार और सांस्कृतिक संबंध फल-फूल रहे थे। इसका प्रभाव दूरगामी रहा है और अलग-अलग लोगों पर इसका अलग-अलग प्रभाव पड़ा है।
- कुछ लोगों के लिए, इसने रोज़गार के नए अवसर पैदा किए हैं, जबकि कुछ के लिए वैश्वीकरण ने आजीविका का नुकसान पहुँचाया है। इसके कारण, वैश्वीकरण के प्रभाव पर अलग-अलग राय हैं। एक तर्क यह भी है कि इससे ज़्यादा सुविधा संपन्न वर्ग को फ़ायदा हुआ है, जबकि ग़रीब और वंचित तबके को ज़्यादा फ़ायदा नहीं हुआ है।

वैश्वीकरण और भारतीय समाज: विभिन्न दृष्टिकोण

हाइपरग्लोबलिस्ट परिप्रेक्ष्य

- उनका तर्क है कि अतीत और वर्तमान अर्थव्यवस्था ने मिलकर एक नया रिश्ता बनाया है जहाँ राष्ट्र आर्थिक और राजनीतिक दोनों रूप से एकजुट हो रहे हैं। अन्य देशों की तरह, भारत भी एकजुट हो रहा है ताकि वह इस नई वैश्वीकृत दुनिया से अलग-थलग न रह जाए। उनका मानना है:
- वैश्वीकरण एक सीमाहीन समाज की ओर अग्रसर है, एक ऐसी दुनिया जिसमें व्यक्तिगत सरकारों की शक्ति कमजोर हो रही है और अंतरराष्ट्रीय शासन संगठन तेजी से महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं।

- राष्ट्र-राज्यों द्वारा लागू और संरक्षित लोकतांत्रिक सामाजिक मॉडलों को चुनौती दी जाएगी। सोवियत संघ के पतन और 1991 में भारत द्वारा नई आर्थिक नीति अपनाने से इस धारणा को बल मिलता है।
- तकनीकी प्रगति के कारण बढ़ते संचार ने वैश्विक संस्कृति के निर्माण में मदद की है।
- वैश्विक सभ्यता का अस्तित्व अवश्यंभावी है, क्योंकि आर्थिक और राजनीतिक संगठन के अधिक सार्वभौमिक सिद्धांत विश्व भर में तेजी से फैल रहे हैं।
- वे विश्व अर्थव्यवस्था को किसी भी अन्य दृष्टिकोण से अधिक एक इकाई के रूप में देखते हैं।
- वे वैश्वीकरण के समरूपीकरण पहलू पर ध्यान केंद्रित करते हैं

संशयवादी दृष्टिकोण

वे इस तथ्य को नकारते हैं कि वैश्विक विकास संरचना के माध्यम से वैश्विक संस्कृति का विकास होता है। उनका मानना है:

- वैश्वीकरण की प्रक्रिया एक वास्तविक वैश्विक दुनिया की तुलना में अधिक पृथक और क्षेत्रीयकृत है। उनका मानना है कि दुनिया वैश्वीकृत हो रही है, लेकिन विभिन्न क्षेत्र एक साथ वैश्वीकृत नहीं हो रहे हैं। बल्कि, जिसे हम वैश्वीकरण कहते हैं, वह वास्तव में क्षेत्रीयकरण है।
- व्यापारिक ब्लॉकों का गठन किया जा रहा है (ट्रांस पैसिफिक पार्टनरशिप, क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक भागीदारी) जो ब्लॉक का हिस्सा नहीं होने वाले अन्य बहुपक्षीय देशों को छोड़कर क्षेत्रीय आर्थिक क्षेत्रों के विस्तार और देशों के बीच द्विपक्षीय व्यापार के सहयोग को दर्शाता है।
- देशों के बीच व्यापार को सुविधाजनक बनाने और वैश्विक अर्थव्यवस्था के संचालन को विनियमित करने के लिए एक मजबूत राष्ट्र-राज्य की आवश्यकता है।
- वे वैश्वीकृत विश्व में विश्वास करते हैं, लेकिन उनके अनुसार, वैश्वीकरण क्षेत्रीय स्तर पर शुरू होता है और फिर वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ता है।

परिवर्तनवादियों का दृष्टिकोण

- परिवर्तनवादियों का तर्क है कि स्थानीय संस्कृतियाँ पश्चिमी संस्कृतियों द्वारा यूँ ही निगल नहीं ली जातीं–बल्कि विकासशील देशों के लोग पश्चिमी संस्कृति के पहलुओं को चुनकर उन्हें अपनी विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप ढाल लेते हैं, इस प्रक्रिया को वे 'ग्लोकलाइज़ेशन' कहते हैं। इसका एक अच्छा उदाहरण भारत में बॉलीवुड फिल्म उद्योग, या मैकडॉनल्ड्स के बर्गर के विभिन्न 'ग्लोकल' रूप हैं।
- वे वैश्वीकरण को नकारात्मक और सकारात्मक दोनों तरह के प्रभावों के साथ देखते हैं, तथा पहचान आधारित मतभेदों के उभरने के साथ-साथ इसके प्रभाव समरूपीकरण और विषमीकरण दोनों तरह के होते हैं।

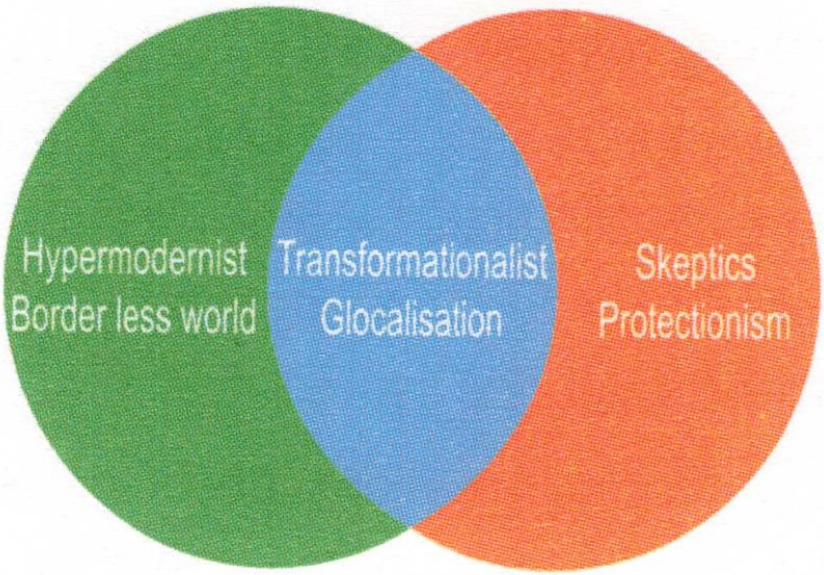

वैश्वीकरण के प्रभाव: भारत

- वैश्वीकरण विश्व संबंधों का गहनीकरण है। यह दुनिया भर में व्यापार, पूँजी, तकनीक, लोगों और संस्कृति का मुक्त आवागमन है। वैश्वीकरण के साथ, 1990 के दशक में शुरू हुए संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम के बाद, विश्व संबंधों में भारत के एकीकरण के स्तर में तीव्र वृद्धि हुई है। वैश्वीकरण का भारत के सभी वर्ग समूहों पर अलग-अलग प्रभाव पड़ा है। जहाँ एक ओर औद्योगिक वर्ग, उद्यमी वर्ग और पेशेवर वर्ग पर इसका अत्यधिक सकारात्मक प्रभाव बताया जाता है, वहीं दूसरी ओर श्रमिक वर्ग पर इसका प्रभाव विविध रहा है।
- हम एक तेज़ी से जुड़ती दुनिया में रह रहे हैं। हमारे दैनिक जीवन में अन्य संस्कृतियों, समाजों और अर्थव्यवस्थाओं की छाप देखने को मिलती है। हम जो स्मार्टफ़ोन इस्तेमाल करते हैं, वे चीन में असेंबल किए जा सकते हैं, हम जो कपड़े पहनते हैं, वे बांग्लादेश या दक्षिण-पूर्व एशिया के किसी कारखाने में बन सकते हैं और जिस कंपनी के लिए हम काम कर रहे हैं, वह कोई बहुराष्ट्रीय निगम हो सकती है। वैश्वीकरण सदियों से हो रहा है, हालाँकि धीमी गति से।
- वैश्वीकरण का अर्थ अलग-अलग लोगों के लिए अलग-अलग है। अर्थशास्त्री इसे पूर्णतः एकीकृत विश्व बाज़ार की ओर एक कदम मानते हैं। विश्व व्यवस्था में गैर-सरकारी शक्तियों के उदय से राज्य की संप्रभुता को चुनौती मिल रही है। वैश्वीकरण कोई घटना नहीं, बल्कि एक प्रक्रिया है जिसकी शुरुआत आर्थिक क्षेत्रों के उदारीकरण और निजीकरण से हुई। इसका उद्देश्य एक सीमाहीन विश्व की स्थापना है। यह वसुधैव कुटुम्बकम की बात करता है - विश्व मेरा परिवार है।
- वैश्वीकरण में सहायक कारक हैं: प्रौद्योगिकी, तीव्र परिवहन, पूंजी की बेहतर गतिशीलता, बहुराष्ट्रीय कंपनियों का उदय।
- वैश्वीकरण का भारतीय समाज पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है और इसने विभिन्न दृष्टिकोणों से समाज में परिवर्तन लाया है:

राजनीतिक

- वैश्वीकरण ने देश में शासन की प्रकृति और नीतिगत आयामों को बदल दिया है। इसने आर्थिक नीतियों को एक विशिष्ट राजनीतिक और आर्थिक दृष्टिकोण प्रदान किया है। गैर-सरकारी संगठनों का उदय हुआ है और देश के शासन में उनकी विशेष भूमिका है। बढ़ते वैश्वीकरण के कारण सुशासन की अवधारणा को बल मिला है।
- सरकार की भूमिका में और भी महत्वपूर्ण बदलाव आया है क्योंकि अब ध्यान कल्याण से हटकर सशक्तिकरण की ओर बढ़ गया है। इससे शासन के प्रति अधिकार-आधारित दृष्टिकोण की ओर नीतिगत बदलाव आया है।

आर्थिक

- उदारीकरण और निजीकरण को वैश्वीकरण की उपज माना जाता है जिसने भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप बदल दिया है। इसके कारण 1991 से उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (एलपीजी) का दौर शुरू हुआ जिसने देश की आर्थिक नीति को पूरी तरह से बदल दिया। मीडिया, संचार, रक्षा और बीमा जैसे क्षेत्रों में विदेशी निवेश में वृद्धि और प्रौद्योगिकी को अपनाने से देश के विदेशी मुद्रा भंडार में सुधार हुआ है।

उदारीकरण एक शब्द है जो उदारवाद के दर्शन से आया है जो निजी व्यक्तियों के लिए अधिकतम स्वतंत्रता और निजी मामलों में राज्य द्वारा न्यूनतम हस्तक्षेप की वकालत करता है।

निजीकरण का तात्पर्य सामान्यतः सार्वजनिक स्वामित्व वाले उद्यमों या संगठनों में निजी स्वामित्व को शामिल करने से है।

सामाजिक

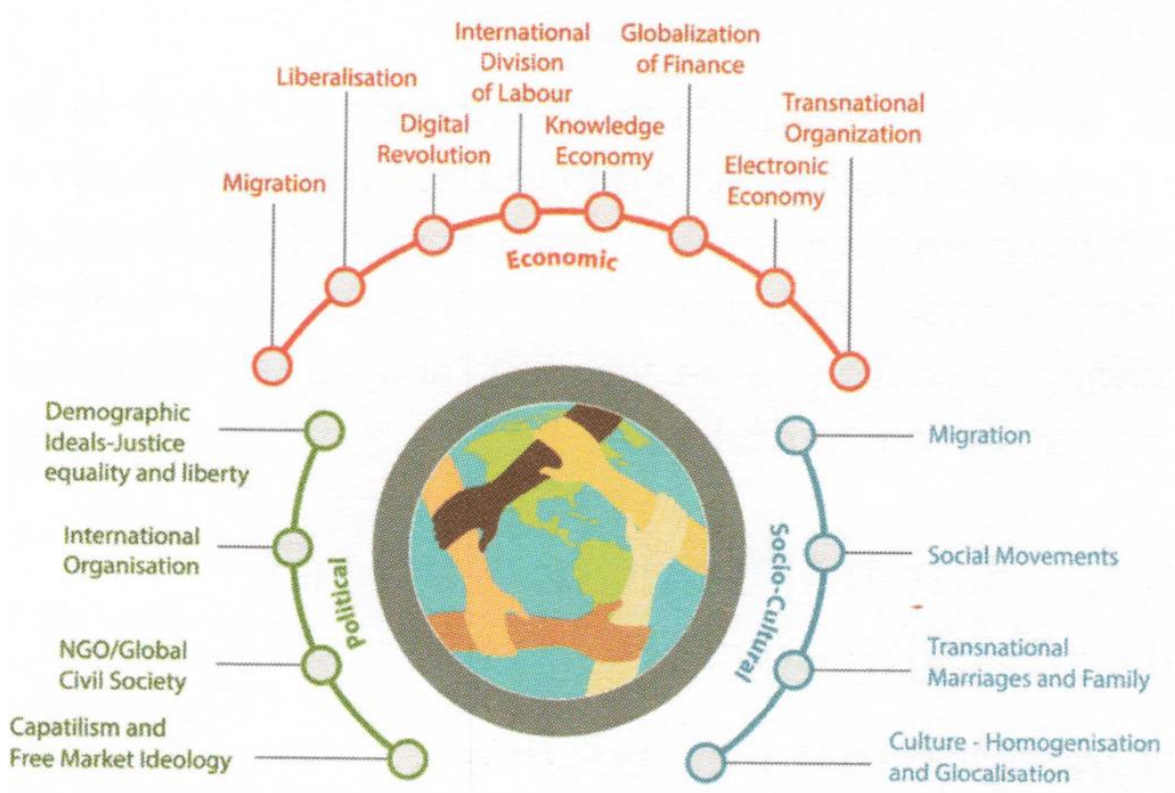

- संस्कृति के समरूपीकरण बनाम वैश्वीकरण पर बहसें होती रही हैं। वैश्वीकरण ने सामाजिक आयामों को भी बदल दिया है। इसने प्रवासन को प्रभावित किया है और शहरीकरण पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ा है । इसने शहरीकरण की गति को अत्यधिक बढ़ा दिया है और जीवन स्तर के संदर्भ में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच की खाई को बढ़ा दिया है, जिसका प्रभाव प्रवासन पर भी पड़ता है।
- महिला सुरक्षा, दलित आंदोलन, किसान आंदोलन, पर्यावरण संरक्षण आदि से संबंधित सामाजिक आंदोलन वैश्वीकरण से तीव्र और प्रभावित हुए हैं। वैश्वीकरण के प्रभाव के कारण लैंगिक गतिशीलता में भी बदलाव आ रहा है।

संस्थानों पर प्रभाव

शादी

- अनादि काल से, विवाह को एक अत्यंत पवित्र संस्था माना जाता रहा है जिसमें दो व्यक्तियों के मन का मिलन होता है। हालाँकि, समाज के बदलते स्वरूप के साथ, हर संस्था एक-दूसरे के साथ संघर्ष में है, उदाहरण के लिए, पितृसत्ता का महिलाओं के अधिकारों की स्वतंत्र एजेंसी/स्वायत्तता के साथ टकराव बढ़ रहा है। वैश्वीकरण के कई सकारात्मक और कई नकारात्मक प्रभाव हुए हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

सकारात्मक प्रभाव

1. भारतीय समाज प्रेम विवाह के विचार के प्रति उदार नहीं रहा है। हालाँकि, बढ़ते वैश्वीकरण के साथ, परिवार के सदस्य, खासकर बड़े-बुजुर्ग, प्रेम विवाह को उसी तरह स्वीकार और सराहने लगे हैं जैसे वे पहले अरेंज मैरिज को स्वीकार करते थे। प्रेम विवाह का चलन बढ़ रहा है और इस प्रकार माता-पिता की प्राथमिकताओं ने बच्चों की इच्छाओं को प्राथमिकता दी है या वे प्रेम-सह-अरेंज मैरिज के माध्यम से बच्चों की इच्छाओं को पूरा करते हैं।
2. वैश्वीकृत दुनिया में अधिक एकीकृत अर्थव्यवस्था, बढ़ती शिक्षा और बढ़ती जागरूकता के साथ, विभिन्न जातियों और धर्मों के लोग आपस में मिल-जुल रहे हैं। इससे जातिगत आधार की कठोरता भी कम हुई है। इस प्रकार के विवाह के उदाहरण मिलने पर अंतर्धार्मिक विवाह भी होंगे, जो भारत में स्पष्ट रूप से बढ़ रहा है। एकल परिवारों में वैवाहिक जोड़ों के बीच समरूपता सुनिश्चित करने में आर्थिक स्वतंत्रता का एक प्रमुख योगदान रहा है।

3. वैश्वीकरण ने युवाओं की मानसिकता को व्यापक बनाया है क्योंकि लोग पहले के विपरीत बाल विवाह से बचने के लिए प्रवृत्त हुए हैं। इसने बाल विवाह के विरुद्ध लड़ाई को तेज़ करने और विधवा पुनर्विवाह में वृद्धि में मदद की है।
4. लैंगिक समानता के विचारों के प्रसार के साथ, विवाह संस्था स्वयं ही पहले के पुरुष वर्चस्व और महिला अधीनता की तुलना में अधिक समतावादी मूल्यों की ओर बदलाव देख रही है।

नकारात्मक प्रभाव

1. वैश्वीकरण ने विवाह की पवित्रता को कम कर दिया है क्योंकि लोग रीति-रिवाजों और प्रतिबद्धताओं से मुक्त होना चाहते हैं। परिणामस्वरूप, विवाह संस्था चिंताजनक रूप से तेज़ी से टूट रही है। आज वैवाहिक संबंध रोमांटिक प्रेम (एक-दूसरे के लिए हमेशा के लिए) से संगम प्रेम (रिश्ते से दोनों को लाभ होना चाहिए) की ओर बढ़ रहे हैं।
2. वैश्विक दुनिया में, लोग विवाह को एक नागरिक अनुबंध के रूप में देखते हैं। आजकल, विवाह को एक धार्मिक संस्कार के रूप में नहीं देखा जाता। इससे विवाह जैसी संस्था मानवीय व्यवहार की चंचलता के संपर्क में आ जाएगी और यह संस्था बहुत ही अस्थायी हो जाएगी।
3. शादी से पहले ही लड़के-लड़कियाँ एक साथ अपार्टमेंट शेयर करने को लेकर ज़्यादा खुले होते हैं। कई लोग लिव-इन रिलेशनशिप की इस अवधारणा को भारतीय संस्कृति के ख़िलाफ़ मानते हैं।
4. अन्य मुद्दे जैसे क्रमिक एकपत्नीत्व। विवाह, जिसे भारत में एक पवित्र संस्था माना जाता है, वैश्वीकरण से चुनौतियों का सामना कर रहा है और पुराने और कठोर मानदंडों को चुनौती देते हुए नए मानदंडों के अनुसार खुद को समायोजित कर रहा है।

परिवार

- परिवार एक प्राथमिक सामाजिक समूह है जो प्रजनन की आवश्यकता को पूरा करने के लिए अस्तित्व में आया। इसकी उत्पत्ति अचानक नहीं हुई है, बल्कि यह समय के साथ विकसित हुआ है और विभिन्न चरणों से गुज़रा है। भारतीय परिवार व्यवस्था की सबसे खास विशेषता संयुक्त परिवार व्यवस्था का अस्तित्व है। संयुक्त परिवार में संयुक्त संपत्ति, साझा आवास, समान धर्म का पालन और आपसी अधिकार व दायित्व होते हैं।

सकारात्मक प्रभाव

1. पहले, एक परिवार के सभी सदस्य एक ही प्रकार का काम करते थे, लेकिन वैश्वीकरण के बाद एक ही परिवार ने अपनी उपलब्धता और आर्थिक लाभ के आधार पर विभिन्न प्रकार के काम अपना लिए हैं।
2. पति-पत्नी ज़्यादातर नौकरीपेशा हैं, जिससे जीवन स्तर में सुधार हो रहा है। एक उल्लेखनीय बदलाव यह है कि महिलाओं की स्थिति भी बेहतर हो रही है क्योंकि अब निर्णय साथ मिलकर लिए जा रहे हैं, जिससे लैंगिक समानता में सुधार हो रहा है।
3. वैश्वीकरण के कारण धार्मिक समारोहों के स्थान पर सामाजिक समारोहों में वृद्धि हुई है।
4. वैश्वीकरण ने निर्णय लेने के पदानुक्रम को बदल दिया है, क्योंकि अब बच्चों की राय को भी शायद ही कभी नज़रअंदाज़ किया जाता है। आज बच्चे अपने अधिकारों के प्रति काफ़ी जागरूक हैं और इसलिए स्कूलों और घरों में शारीरिक दंड में भारी कमी आई है।

नकारात्मक प्रभाव

1. वैश्वीकरण ने कई परिवारों को अपने गाँव और कस्बे से बाहर जाने पर मजबूर कर दिया है और उन्हें संयुक्त परिवार की कीमत पर एकल परिवारों की ओर धकेल दिया है। इससे पारंपरिक पारिवारिक मूल्यों को ठेस पहुँच रही है। उदाहरण के लिए, शहर में जन्मा बच्चा ग्रामीण रिश्तेदारों से मिलने नहीं जाना चाहता।
2. वैश्वीकरण बच्चों पर नकारात्मक प्रभाव डाल रहा है क्योंकि बच्चे अपने परिवार के साथ पर्याप्त समय नहीं बिता पा रहे हैं, जिससे वे अधिक व्यक्तिवादी और आत्मकेंद्रित होते जा रहे हैं। इन बदलावों के कारण युवा पीढ़ी के लिए

भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को आत्मसात करना मुश्किल हो रहा है। आज वे परिवार की बजाय इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों में ज़्यादा व्यस्त हैं।

3. परिवार उत्पादन की इकाई नहीं रह गया है और पारिवारिक मामलों में बुजुर्गों की आवाज कम हो गई है।
4. नए रोज़गार और शिक्षा के अवसरों की तलाश में युवा पीढ़ी की बढ़ती गतिशीलता ने पारिवारिक रिश्तों को कमज़ोर कर दिया है। इससे पारिवारिक बंधन कमज़ोर हो गए हैं और शारीरिक दूरी के कारण रिश्ते कमज़ोर पड़ने लगे हैं।
5. वैश्वीकरण के कारण परिवार व्यवस्था में न केवल संरचनात्मक, बल्कि कार्यात्मक परिवर्तन भी हो रहे हैं। आज बच्चों की शिक्षा जैसे कई कार्य स्कूल जैसी अन्य संस्थाओं द्वारा किए जा रहे हैं।

जो परिवार अपने कमजोर सदस्यों की देखभाल करता था, वह अब सेवा करने की स्थिति में नहीं है, लेकिन भारत में परिवार के मूल्य अभी भी मजबूत हैं और पदानुक्रम के पारंपरिक मूल्यों की स्वीकृति और अस्वीकृति प्रत्येक परिवार द्वारा साझा किए गए अनुभव पर निर्भर करती है।

संयुक्त और एकल परिवार

- संयुक्त परिवार व्यवस्था में, एक ही छत के नीचे रहने वाले आश्रितों की संख्या बहुत ज़्यादा होती है। संयुक्त परिवार में रहने वालों में पति, पत्नी और बच्चे, दादा-दादी, विवाहित भाई-बहन, बेटों की पत्नियाँ, पोते-पोतियाँ और अन्य आश्रित और रिश्तेदार शामिल हो सकते हैं।

पारंपरिक संयुक्त परिवार प्रणाली की विशेषताएँ हैं:

- सामान्य संपत्ति
- सामान्य वित्त
- साझा रसोईघर
- आम नेता
- सामान्य पूजा स्थल

- 2011 की जनगणना के अनुसार, दिल्ली में लगभग 69.5% घरों में केवल एक विवाहित जोड़ा है और सभी भारतीय घरों में से 6% से भी कम घरों में 9 या इससे अधिक लोग रहते हैं।
- एकल परिवार वह परिवार है जिसमें माता-पिता और उनके बच्चे शामिल होते हैं, लेकिन इसमें चाची, चाचा, दादा-दादी आदि शामिल नहीं होते हैं। नौकरी स्थानांतरण, अचल संपत्ति, वैश्वीकरण के प्रभाव और बदलते सांस्कृतिक दृष्टिकोण जैसे कारकों के कारण एकल परिवार में तेजी से वृद्धि हो रही है।

एकल और संयुक्त परिवारों के बीच अंतर संरचना, जिम्मेदारी, एकता और स्नेह के बंधन, निर्वाह और स्वतंत्रता के संदर्भ में है।

जाति

- जैसे-जैसे मनुष्य का विकास हुआ, उसके साथ सामाजिक व्यवस्था भी विकसित हुई और इस व्यवस्था को भारत में जाति के रूप में जाना जाता है। यह सर्वविदित तथ्य है कि भारत में जातिगत भेदभाव व्याप्त है और इसे राष्ट्र के विकास में एक बाधा के रूप में देखा जाता है। वैश्वीकरण के उदय ने जाति व्यवस्था में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह से बदलाव लाए हैं।

सकारात्मक प्रभाव

- व्यावसायिकता में वृद्धि, शिक्षा में सुधार आदि ने रोजगार के अवसर प्रदान किए हैं और इस प्रकार कमजोर जातियों की स्थिति में सुधार हो रहा है।
- कठोर जाति व्यवस्था धीरे-धीरे शिथिल मानदंडों का स्थान ले रही है। अंतर्जातीय विवाह, अन्य जातियों के साथ मेलजोल और मेलजोल अब वर्जित नहीं माना जाता।
- विभिन्न संस्कृतियों के विचारों के मिश्रण के साथ निर्णय लेने में बढ़ती तर्कसंगतता ने अंधविश्वासों को कम कर दिया है।

- जाति का धर्मनिरपेक्षीकरण: जाति की संस्था अनुष्ठानिक स्थिति पदानुक्रम से अलग हो गई है और प्रतिस्पर्धी लोकतांत्रिक राजनीति में कार्यरत शक्ति-समूह का चरित्र प्राप्त कर लिया है।
- दलित आंदोलन में वृद्धि उदाहरण के लिए, दलित पैंथर आंदोलन ब्लैक पैंथर आंदोलन से प्रेरित था।

नकारात्मक प्रभाव

1. वैश्वीकरण और इसके लाभों के बावजूद, भारत में अस्पृश्यता की प्रथा अभी भी प्रचलित है।
2. वैश्वीकरण ने आवश्यक कौशल के अभाव में कमजोर जातियों को अनौपचारिक क्षेत्र में छोटे-मोटे काम करने के लिए मजबूर कर दिया है। उदाहरण के लिए, जो पहले अछूत थे, वे अब मैला ढोने वाले बन गए हैं।
3. देश के कई कोनों में जाति आधारित असमानता अभी भी एक वास्तविकता है, जैसा कि ऊना में दलित हिंसा मामले और रोहित वेमुला आत्महत्या से स्पष्ट है।

इस प्रकार वैश्वीकरण ने एक ओर कठोर जातिगत बाधाओं को कम करने में मदद की है, लेकिन यह हाशिए पर पड़ी जातियों का पूरी तरह से उत्थान करने में सक्षम नहीं है।

धर्म

- वैश्वीकरण ने विश्व के सांस्कृतिक स्वरूप को बदल दिया है और एक वैश्विक संस्कृति के निर्माण को प्रेरित किया है। वैश्वीकरण सांस्कृतिक मतभेदों को मिटा देता है, स्थानीय रीति-रिवाजों और मान्यताओं को नष्ट कर देता है, और एक धर्मनिरपेक्ष जीवन शैली का प्रसार करता है जो धर्म के विपरीत है। धर्म वैश्वीकरण के स्रोत के रूप में और इसकी सर्वव्यापी किन्तु प्रायः गूढ़ शक्ति के विरोध में खड़े लोगों के लिए एक आश्रय स्थल के रूप में कार्य करता है। इन दोनों ही दृष्टिकोणों में, धर्म और वैश्वीकरण के बीच का संबंध विरोधाभासी है - संघर्ष और द्वंद्व का, जिससे धर्म पृष्ठभूमि में चला जाता है और वैश्वीकरण का संघर्ष और द्वंद्व का साझा संबंध है।

सकारात्मक प्रभाव

1. धर्म और वैश्वीकरण ऐतिहासिक परिवर्तन में भागीदार रहे हैं। अतीत में, धर्म, विश्व में वैश्वीकरण की प्रवृत्तियों का वाहक रहा है। ईसाई धर्म का इतिहास और एक विश्व धर्म के रूप में इसका असाधारण विकास, इसकी अपनी वैश्विक महत्वाकांक्षाओं और विभिन्न राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्थाओं के विस्तार के बीच की कड़ी का परिणाम था। इसके अलावा, भारत में विभिन्न नए धर्मों का प्रवेश हुआ, जिनका भारतीय संस्कृति पर बहुआयामी प्रभाव पड़ा।
2. वैश्वीकरण संस्कृतियों, पहचानों और धर्मों को सीधे संपर्क में लाने का मार्ग प्रशस्त करता है।
3. वैश्वीकरण बहुलवाद की संस्कृति लाता है, जिसका अर्थ है कि "अतिव्यापी लेकिन विशिष्ट नैतिकता और हितों वाले" धर्म एक-दूसरे के साथ आसानी से बातचीत कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, विश्व धार्मिक सम्मेलन।
4. वैश्वीकरण के कारण लोग विभिन्न धर्मों का सार पढ़ रहे हैं जिससे एक अधिक सहिष्णु समाज के निर्माण में मदद मिल रही है। यहाँ तक कि धर्मनिरपेक्षता पर गांधीजी के विचार भी हिंदू धर्म के अलावा इस्लाम और ईसाई धर्म की शिक्षाओं से प्रभावित थे।
5. वैश्वीकरण के मूल सिद्धांत जैसे खुलापन, व्यक्तिवाद, स्वतंत्रता आदि, धार्मिक संकीर्णता के विरुद्ध खड़े हैं। यहाँ तक कि सऊदी अरब जैसा धर्मशासित राज्य भी महिलाओं को अधिक स्वतंत्रता देकर खुद को खोल रहा है।
6. वैश्वीकरण के कारण पहले एक दूसरे से अलग-थलग पड़े धर्मों के बीच अब नियमित और अपरिहार्य संपर्क संभव हो गया है।
7. धर्म के भीतर सुधार - उदाहरण के लिए, चर्च में लैंगिक समानता। हाल ही में इंग्लैंड के चर्च में एक महिला पादरी बनीं।

नकारात्मक प्रभाव

1. पश्चिमी देशों से बढ़ते वित्तीय और संस्थागत समर्थन के कारण ईसाई धर्म में धर्मांतरण हुए हैं। उदाहरण के लिए, औपनिवेशिक काल में ईसाई मिशनरियों द्वारा आदिवासियों का धर्मांतरण।

2. वैश्वीकरण पारंपरिक समुदायों को बाधित करता है, आर्थिक हाशिए पर धकेलता है, तथा व्यक्तियों में मानसिक तनाव पैदा करता है, जिसके परिणामस्वरूप धार्मिक संकीर्णतावाद की प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है, जैसा कि 1979 की ईरानी क्रांति में स्पष्ट रूप से देखा गया।
3. वैश्वीकरण धर्मों को संघर्षों के ऐसे चक्र में ले आता है जो उनकी विशिष्ट पहचान को और पुष्ट करता है। धर्म और वैश्वीकरण के बीच का संबंध जटिल है, जिसमें नई संभावनाएँ और नई चुनौतियाँ हैं।

मिडिया

- वैश्वीकरण को बढ़ावा देने में मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका है। वास्तव में, यह वैश्वीकरण प्रक्रिया का एक हिस्सा है। मीडिया क्रांति ने पूरी दुनिया को एक वैश्विक गाँव में बदल दिया है। टीवी चालू करके, हम अंतर्राष्ट्रीय समाचार प्रसारणों के माध्यम से दुनिया भर में हो रही नवीनतम घटनाओं से अवगत हो सकते हैं। इन नई तकनीकों ने हमें अज्ञानता के जड़ता भरे दौर से विज्ञान और तर्क के आधुनिक युग में प्रवेश करने का अवसर प्रदान किया है। छात्र अपनी रुचि के विषयों का अध्ययन कर पा रहे हैं। इसका प्रिंट मीडिया, टेलीविजन, रेडियो आदि पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह का प्रभाव पड़ रहा है।

मुद्रण माध्यम

- समाचार पत्र, पत्रिकाएँ और पुस्तकें समाज में सूचना के प्रसार का प्रमुख माध्यम हैं। जॉन गुटेनबर्ग द्वारा मुद्रण यंत्र के आविष्कार ने आम जनता के लिए ज्ञान के द्वार खोल दिए। औद्योगिक क्रांति ने इसे और बढ़ावा दिया है। भारत में इसने जन जागरण और उपनिवेश-विरोधी विचारों के प्रचार-प्रसार में प्रमुख भूमिका निभाई है, जिससे अंततः राष्ट्रवाद का उदय हुआ। उस समय के कुछ प्रमुख समाचार पत्र थे: द कलकत्ता गजट, द मद्रास कूरियर, द बॉम्बे हेराल्ड, केसरी आदि।
- इस वैश्वीकृत युग में, अंतर्राष्ट्रीय समाचारों पर बढ़ते ध्यान, खोजी पत्रकारिता के लिए विभिन्न देशों के समाचार पत्रों के बीच सहयोग, जैसे कि इंडियन एक्सप्रेस का अंतर्राष्ट्रीय खोजी पत्रकार संघ (ICIJ) के साथ सहयोग और पैराडाइज़ अख़बारों के मामले में जर्मन अख़बार सुदेउश त्सितुंग, के संदर्भ में समाचार पत्रों ने एक अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण कर लिया है। इसी प्रकार, भारतीयों की साक्षरता दर में वृद्धि और नई तकनीकों के आगमन ने समाचार पत्रों के प्रसार को बढ़ावा दिया है।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया

- इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में रेडियो और टेलीविज़न शामिल हैं। रेडियो आज भी सूचना प्रसार के सबसे सस्ते और सुविधाजनक माध्यमों में से एक है, खासकर ग्रामीण इलाकों में। भारत में रेडियो प्रसारण की शुरुआत 1920 के दशक में कोलकाता और चेन्नई के 'हैम ब्रॉडकास्टिंग क्लबों' से हुई थी। 1950 तक पूरे भारत में 5,46,200 रेडियो लाइसेंस थे। आकाशवाणी के कार्यक्रमों का इस्तेमाल हरित क्रांति, आने वाली आपदाओं की चेतावनी और समाज के कमज़ोर वर्गों के लिए अन्य सरकारी योजनाओं के बारे में जानकारी प्रसारित करने के लिए किया जाता था।
- हालाँकि, वैश्वीकरण के आगमन के साथ, निजी स्वामित्व वाले रेडियो स्टेशनों की संख्या में वृद्धि हुई है, जिससे ऑल इंडिया रेडियो का एकाधिकार टूट रहा है। इसके अलावा, सामुदायिक स्वामित्व वाले रेडियो स्टेशनों का भी प्रसार हो रहा है।
- भारत में टेलीविजन की शुरुआत 1959 में ग्रामीण विकास को बढ़ावा देने के लिए की गई थी। हालाँकि, वैश्वीकरण के आगमन के साथ इसमें कई स्तरों पर बदलाव आए। सबसे पहले, दूरदर्शन के एकाधिकार को तोड़ते हुए टीवी चैनलों की संख्या में वृद्धि हुई, उदाहरण के लिए, स्टार टीवी, ईएसपीएन आदि जैसे चैनल। दूसरा, विषय-वस्तु के मामले में लोगों की रुचि में बदलाव। पहले यह सरकार के सूचना प्रसार तक सीमित था और मनोरंजन के नाम पर रामायण और महाभारत जैसे सांस्कृतिक कार्यक्रम होते थे।
- हालाँकि, आज हमें खेल से लेकर एक्शन, भक्ति चैनलों और समाचार चैनलों तक, हर तरह के कार्यक्रम देखने को मिलते हैं। इस प्रकार, टीवी चैनलों द्वारा विषय-वस्तु की विशेषज्ञता में वृद्धि हुई है। तीसरा, वैश्वीकरण हुआ है -

कई विदेशी टीवी चैनलों ने व्यापक दर्शकों तक पहुँचने के लिए अपने कार्यक्रमों को हिंदी और अन्य स्थानीय भाषाओं में डब किया है। इसी प्रकार, भारत में कई टीवी शो भी विदेशी शो से प्रेरित हैं, जैसे कौन बनेगा करोड़पति, जो ब्रिटिश कार्यक्रम "हू वॉन्ट्स टू बी अ मिलियनेयर" पर आधारित एक भारतीय टेलीविजन गेम शो है।

सोशल मीडिया

- सोशल मीडिया का आगमन सूचना एवं प्रौद्योगिकी क्रांति का आधार है, जो वैश्वीकरण का एक प्रमुख घटक है। चूँकि वैश्वीकरण में विचारों और संस्कृति का हस्तांतरण शामिल है, इसलिए सूचना प्रसार के एक त्वरित और लोकतांत्रिक माध्यम के रूप में सोशल मीडिया एक प्रमुख भूमिका निभाता है। पारंपरिक मीडिया के विपरीत, सोशल मीडिया सरकार के प्रभाव से अपेक्षाकृत मुक्त है। आज सोशल मीडिया का उपयोग विभिन्न क्षेत्रों में किया जाता है, जैसे अरब वसंत के दौरान प्रदर्शनकारियों को संगठित करने के लिए फेसबुक और ट्विटर का उपयोग किया गया था। इसी प्रकार, कई कंपनियाँ और उद्यमी अपने ब्रांड निर्माण और उत्पादों के प्रचार के लिए इस मंच का उपयोग कर रहे हैं, इस प्रकार भौगोलिक बाधाओं को पार कर रहे हैं।

मीडिया के समग्र प्रभाव को निम्नानुसार संक्षेपित किया जा सकता है:

सकारात्मक प्रभाव

- अखबारों, पत्रिकाओं, इंटरनेट और टीवी के आगमन ने सूचना के प्रसार में काफ़ी मदद की है और दुनिया भर के लोगों को एक साथ आने में मदद की है। उदाहरण के लिए, सोशल मीडिया पर आयलान कुर्दी की तस्वीर ने दुनिया भर के नेताओं को यूरोप में शरणार्थियों की समस्या पर विचार करने के लिए मजबूर कर दिया है।
- जनसंचार माध्यम लोगों की पीड़ा की खबरें उजागर करने में मदद करते हैं ताकि संबंधित अधिकारी आवश्यक कदम उठा सकें।
- इंटरनेट छात्रों को विज्ञान, कला, धर्म, शिक्षा, वाणिज्य, उद्योग, कृषि और कानून सहित लगभग हर विषय और विषयों पर लाखों दस्तावेजों तक पहुंच प्रदान करके उनकी मदद करता है, उदाहरण के लिए, बड़े पैमाने पर खुले ऑनलाइन मंच का उपयोग।
- रेडियो ने विशेष रूप से ग्रामीण और तकनीकी रूप से कम उन्नत क्षेत्रों में सूचना प्रसारित करके अपनी उपयोगिता को पूरी तरह से बदल दिया है।

नकारात्मक प्रभाव

- बढ़ते व्यावसायीकरण ने कई समाचार चैनलों को समाचारों को उस तरह प्रस्तुत करने के लिए मजबूर कर दिया है जिसे लोग देखना चाहते हैं। यह, वास्तव में, समाचार चैनलों के मूल उद्देश्य, जो दुनिया के सामने निष्पक्ष समाचार प्रस्तुत करना है, को विकृत करता है। संक्षेप में, इसने पीत पत्रकारिता, पेड मीडिया और अन्य के नकारात्मक प्रभावों को जन्म दिया है।
- कामकाजी माता-पिता अपने काम में व्यस्त रहते हैं, इसलिए उन्हें अपने बच्चों के साथ बहुत कम समय बिताने का मौका मिलता है। नतीजतन, बच्चे अश्लीलता और अश्लील सामग्री के संपर्क में आते हैं, जो भारतीय समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक और पारंपरिक मूल्यों को प्रभावित करता है।
- सिनेमा को नेटफ्लिक्स और हॉटस्टार जैसे ऑनलाइन प्लेटफॉर्म जैसी डिजिटल क्रांति से चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। इसके अलावा, ऑनलाइन पायरेसी भी एक चुनौती है।

राजनीतिक

- समाजवादी दुनिया के पतन ने वैश्वीकरण की प्रक्रिया को तेज़ कर दिया है। साम्यवाद के पतन के साथ, लोगों ने स्वतंत्रता और स्वाधीनता के उन गुणों का आनंद लेना शुरू कर दिया जो साम्यवादी व्यवस्था में अकल्पनीय थे। वैश्वीकरण के कारण होने वाला महत्वपूर्ण राजनीतिक विकास राजनीतिक सहयोग के लिए अंतर्राष्ट्रीय और क्षेत्रीय तंत्रों का विकास है। इसके अलावा, अंतर्राष्ट्रीय सरकारी संगठनों और गैर-सरकारी संगठनों का उदय भी वैश्वीकरण के प्रभाव हैं। इसके कुछ प्रभाव इस प्रकार हैं:

सकारात्मक प्रभाव

1. इससे भेदभाव-रहितता, समानता, कानून का शासन और जवाबदेही का सार्वभौमिकरण हुआ है। इससे शासन के प्रति अधिकार-आधारित दृष्टिकोण विकसित करने में मदद मिली है।
2. इसने अन्य देशों की असफलताओं और सफलताओं से सीखकर सरकार की लोक नीतियों को बेहतर बनाने में मदद की है। उदाहरण के लिए, हमारा लोकपाल अधिनियम स्कैंडिनेवियाई देश के लोकपाल से प्रेरित है।

नकारात्मक प्रभाव

1. वैश्वीकरण ने राष्ट्र की आंतरिक नीतियों पर असंख्य नियंत्रणों और जाँचों के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक आदि जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के प्रभाव को बढ़ा दिया है। इसने संप्रभुता की अवधारणा को चुनौती दी है। उदाहरण के लिए, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) के ऋण के बदले में भारत सरकार ने 1991 में संरचनात्मक सुधार लागू किए थे।
2. वैश्वीकरण ने गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका बढ़ा दी है। दूसरे देशों से प्रभावित कई संगठन विभिन्न फर्जी गतिविधियों में शामिल हो गए हैं। उदाहरण के लिए: ग्रीन पीस और अन्य संगठनों के बारे में इंटेलिजेंस ब्यूरो की रिपोर्ट।
3. यह संदर्भ संवेदनशीलता की परवाह किए बिना राजनीतिक संस्कृति के एकरूपीकरण की ओर ले जा रहा है। उदाहरण के लिए, अफगानिस्तान और इराक जैसे देशों में कई देशों द्वारा सहायता के माध्यम से लोकतंत्र को बढ़ावा देना, व्यवस्था की बारीकियों और वर्तमान स्थिति को समझे बिना, आंतरिक अशांति आदि को जन्म दे सकता है।

अदालती

- इसे कानून का वैश्वीकरण कहा जाता है जिसके अनुसार पूरी दुनिया एक ही कानूनी नियमों के अंतर्गत रहती है। सार्वजनिक कानूनों के अलावा, वाणिज्यिक और अनुबंध कानूनों का भी वैश्वीकरण हो रहा है। अंतर्राष्ट्रीय फर्मों ने अपना दायरा बढ़ाया है और भारत में सेवाएँ प्रदान कर रही हैं। उदाहरण के लिए, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार कानून पर संयुक्त राष्ट्र आयोग की स्थापना संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा "अंतर्राष्ट्रीय व्यापार कानून के प्रगतिशील सामंजस्य और एकीकरण को बढ़ावा देने" के लिए की गई थी।

सकारात्मक प्रभाव

1. यह भारत में वकीलों को अधिक व्यावसायिकता, अनुबंध की जटिलताओं और बौद्धिक संपदा कानूनों को सीखने के अवसर प्रदान कर रहा है।
2. इससे देश में समग्र कानूनी शिक्षा को बेहतर बनाने में भी मदद मिलती है। उदाहरण के लिए, 1986 में मध्यस्थता और सुलह अधिनियम का अधिनियमन।
3. इससे देरी को कम करने में मदद मिली है तथा कानूनी सेवाओं के व्यापार के माध्यम से ग्राहकों को लाभ मिला है।

नकारात्मक प्रभाव

1. न्यायिक संप्रभुता को चुनौती दी गई है, जैसा कि पेटेंटों के एवरग्रीनिंग के दौरान तथा इतालवी नौसैनिकों के विरुद्ध आपराधिक आरोपों के दौरान भी देखा गया है।
2. इन विदेशी कानूनी फर्मों की भारी लागत के कारण पूरी न्यायिक प्रक्रिया की लागत बढ़ रही है।

धन और अभाव का संकेंद्रण

वैश्वीकरण के कारण, सबसे बड़े नकारात्मक पहलुओं में से एक धन का संकेंद्रण है। वर्तमान में, भारतीय आबादी के शीर्ष 1% लोगों के पास 70% से अधिक धन है, जबकि निचले 50% लोगों के पास केवल 1% है। अर्थव्यवस्था का अनौपचारिकीकरण भी धन के इस विषम संकेंद्रण के प्रमुख कारणों में से एक है।

इसके अलावा, वैश्वीकरण के कारण बिना किसी उचित पुनर्वास के विस्थापन हुआ है, जिससे भारतीय आबादी का पहले से ही वंचित और कमज़ोर वर्ग और भी अधिक वंचित हो गया है। स्वास्थ्य, शिक्षा और अन्य बुनियादी सुविधाओं के निजीकरण ने आबादी के वंचित वर्ग पर कहर ढाया है क्योंकि उन्हें गुणवत्तापूर्ण अस्पतालों और गुणवत्तापूर्ण शैक्षणिक संस्थानों तक पहुँच नहीं मिल पा रही है। इससे संपन्न और विपन्न के बीच एक बड़ी खाई पैदा हो गई है।

भारतीय मूल्य प्रणाली

- मूल्य प्रणाली अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यही मूल्य प्रणाली लोगों के कार्यों को निर्धारित करती है। वैश्वीकरण ने भारत को नए अनुभव प्रदान किए हैं, जिससे व्यक्तिगत स्तर के साथ-साथ समाज के स्तर पर भी नए मूल्यों का उदय हुआ है। उदाहरण के लिए: आर्थिक समृद्धि और बढ़ती धर्मनिरपेक्षता के बीच संबंध दर्शाने के लिए पर्याप्त प्रमाण मौजूद हैं।

सकारात्मक प्रभाव

1. एक नई मूल्य-प्रणाली भारतीय नागरिकों को राजनीतिक संवाद में भाग लेने के लिए प्रेरित कर रही है और इस प्रकार लोकतंत्र को पूर्ण अर्थ प्रदान कर रही है। विकेंद्रीकरण की मांग, जिसके परिणामस्वरूप 73वां और 74वां संविधान संशोधन अधिनियम, सूचना का अधिकार अधिनियम और लोकपाल अधिनियम पारित हुए, कुछ उदाहरण हैं।
2. प्रतिस्पर्धा और व्यक्तिवाद पर अधिक ज़ोर देने से व्यक्तियों को अपने कौशल और क्षमताओं को बेहतर बनाने में मदद मिल रही है। संगठनात्मक अनुशासन, टीमवर्क और गुणवत्ता पर ज़ोर दिया जा रहा है।
3. सामाजिक स्तर पर जातिगत कठोरता में परिवर्तन, विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों में महिलाओं की स्वीकार्यता, अंतर-धार्मिक और अंतर-जातीय विवाहों के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन हो रहा है।

नकारात्मक प्रभाव

1. समाज में भौतिकवाद और उपभोक्तावाद का उदय हुआ है, जो आध्यात्मिकता से ओतप्रोत पुरानी मूल्य-व्यवस्था को चुनौती दे रहा है। यही समाज में बढ़ती असमानता का भी कारण है।
2. महिलाओं के वस्तुकरण और वस्तुकरण में वृद्धि हुई है जो नई मूल्य प्रणाली से प्रभावित है।
3. सामाजिक मूल्यों और एकजुटता के सुखद आनंद का ह्रास हो रहा है। लोग सामाजिक मेलजोल में खुद को सीमित कर रहे हैं। यह बात महानगरों में ज़्यादा स्पष्ट है।

शिक्षा

- शिक्षा सभी को जीवन में आने वाली अधिकांश चुनौतियों का सामना करने और सफल होने की शक्ति प्रदान करती है। शिक्षा के माध्यम से प्राप्त ज्ञान, करियर में बेहतर विकास के लिए अनेक अवसरों के द्वार खोलने में मदद करता है। वैश्वीकरण ने दुनिया भर में शिक्षा को कई महत्वपूर्ण तरीकों से प्रभावित किया है।

सकारात्मक प्रभाव

1. वैश्वीकरण के कारण इंटरनेट पर अध्ययन पुस्तकों और सूचनाओं की उपलब्धता में काफी वृद्धि हुई है, जिससे विद्यार्थी अपनी रुचि के किसी भी विषय पर पढ़ सकते हैं।
2. वैज्ञानिक और तकनीकी नवाचारों ने छात्रों के जीवन को आरामदायक, सुखद और आनंददायक बना दिया है। कामकाजी पेशेवर स्किल शेयर वेबसाइट जैसे ऑनलाइन पाठ्यक्रमों में भाग ले सकते हैं।
3. गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक बढ़ती पहुँच व्यक्तियों को उच्च सामाजिक स्थिति और गतिशीलता की ओर अग्रसर होने का अवसर प्रदान करती है। उदाहरण के लिए, विदेशी और भारतीय विश्वविद्यालयों के बीच सहयोग।
4. यह अर्थव्यवस्था को होने वाले संभावित लाभों और अधिक नवाचार की संभावनाओं पर प्रकाश डालता है। यहाँ तक कि राष्ट्रीय बौद्धिक संपदा अधिकार नीति भी इसकी वकालत करती है।

नकारात्मक प्रभाव

1. अत्यधिक लागत के कारण उच्च एवं विशिष्ट शिक्षा गरीब एवं मध्यम वर्ग के छात्रों की पहुंच से बाहर हो गई है।
2. भारतीय विश्वविद्यालयों के साथ विदेशी विश्वविद्यालयों के सहयोग से मेडिकल, इंजीनियरिंग और प्रबंधन अध्ययन की फीस में वृद्धि हुई है, जिससे मध्यम और गरीब वर्ग के छात्रों के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त करना बहुत कठिन हो गया है।
3. कई बार शिक्षा को किसी व्यक्ति के पास मौजूद उपयोगी ज्ञान की मात्रा के बजाय उसके पास मौजूद डिग्रियों की संख्या के आधार पर मापा जाता है।
4. शिक्षा का वस्तुकरण- आज शिक्षा को एक वस्तु के रूप में देखा जाता है, जिसे बाजार में खरीदा या बेचा जा सकता है।

स्वास्थ्य

- जैसे-जैसे सीमाएँ तेज़ी से कम होती जा रही हैं, लोगों की आवाजाही की आज़ादी बढ़ती जा रही है, जिससे वैश्विक स्वास्थ्य के लिए नए अवसर और चुनौतियाँ पैदा हो रही हैं। राष्ट्रीय सरकारों के लिए अकेले सेवाएँ प्रदान करना मुश्किल है। स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के समाधान के लिए अंतर्राष्ट्रीय संगठनों को राष्ट्रीय सरकारों का साथ देना चाहिए। वैश्वीकरण के कई सकारात्मक और कुछ नकारात्मक पहलू भी रहे हैं। इनमें से कुछ का उल्लेख इस प्रकार है:

सकारात्मक प्रभाव

1. कई निजी अस्पतालों के खुलने से अस्पतालों तक पहुंच में वृद्धि हुई है। उदाहरण के लिए, फोर्टिस और अपोलो अस्पताल।
2. स्वास्थ्य सेवाएँ सीमाओं के पार भी प्रदान की जा सकती हैं। उदाहरण के लिए, पारंपरिक और इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से चिकित्सा परामर्श के अलावा, टेली-डायग्नोस्टिक्स और टेली-रेडियोलॉजी जैसे कई टेलीमेडिसिन उपकरण भी उपलब्ध हैं।
3. भारत में विदेशी कंपनियों द्वारा किए गए अनुसंधान और उपचार की गुणवत्ता में वृद्धि हुई है, जैसा कि स्पष्ट है।
4. मरीज़ स्वास्थ्य सेवा प्राप्त करने या कुछ सुविधाओं का लाभ उठाने के लिए विदेश यात्रा कर सकते हैं। चिकित्सा पर्यटन में तेज़ी से वृद्धि हुई है, खासकर भारत जैसे देशों में, जहाँ कई पश्चिमी देशों के विपरीत इलाज अपेक्षाकृत सस्ता है।
5. स्वास्थ्य क्षेत्र में एफडीआई के आने से नई प्रौद्योगिकी और पद्धतियां आई हैं, जिससे भारत में स्वास्थ्य के प्रति सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ है।

नकारात्मक प्रभाव

- भारत में बहुराष्ट्रीय दवा कम्पनियों के प्रवेश से उनके ब्रांड नामों के कारण दवाओं की लागत बढ़ गई है, जबकि पहले दवाएं जेनेरिक हुआ करती थीं।

1. दुनिया भर में लोकप्रिय पेय पदार्थों और फ़ास्ट फ़ूड के आगमन ने पारंपरिक आहार की जगह कैलोरी-युक्त और वसायुक्त खाद्य पदार्थों को अपनाकर मोटापे की वैश्विक महामारी को बढ़ावा दिया है। उदाहरण के लिए, मैकडॉनल्ड और केएफसी फ़ास्ट फ़ूड चेन।
2. किसी संक्रामक रोग से पीड़ित व्यक्ति 12-15 घंटों में दुनिया के आधे हिस्से की यात्रा कर सकता है और इस प्रकार वह उस रोग के लिए वाहक के रूप में कार्य कर सकता है, उदाहरण के लिए जीका वायरस।

पर्यावरण

दुनिया अधिक उपभोग करने वाली, अधिक भीड़भाड़ वाली और अधिक जुड़ी हुई होती जा रही है। बढ़ती जनसंख्या और बेहतर जीवन जीने की चाहत ने हमारे पर्यावरण पर दबाव बढ़ा दिया है। वैश्वीकरण का पर्यावरण पर कई स्पष्ट कारणों से गहरा प्रभाव पड़ रहा है। इनमें से कुछ कारण नीचे दिए गए हैं:

सकारात्मक प्रभाव

- कई अंतरराष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठनों की उपस्थिति के कारण पर्यावरणीय समस्याओं के बारे में जागरूकता और चिंता काफ़ी बढ़ गई है। उदाहरण के लिए, कोयला खनन के ख़िलाफ़ ग्रीन पीस का विरोध प्रदर्शन।
- जलवायु परिवर्तन से होने वाली मौतों से निपटने के लिए अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से तकनीकी और वित्तीय सहायता में वृद्धि हुई है। उदाहरण के लिए, स्वच्छ विकास तंत्र।
- नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोग बढ़ाना और जीवाश्म ऊर्जा संसाधनों का उपयोग कम करना। उदाहरण के लिए, अंतर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन के माध्यम से।
- जीएचजी उत्सर्जन में कमी और कार्बन पृथक्करण के लिए नवीन प्रौद्योगिकियों और प्रबंधन प्रथाओं को अपनाना।

नकारात्मक प्रभाव

- वैश्वीकरण के कारण तीव्र औद्योगिकीकरण के कारण अत्यधिक उत्सर्जन हो रहा है, जिससे पर्यावरण खराब हो रहा है, जिससे जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग के लक्षण सामने आ रहे हैं, विशेष रूप से तीसरी दुनिया के देशों में, जहां औपचारिक संरचनाओं और कठोर कानूनों आदि की कमी के कारण प्राकृतिक संसाधन बार-बार समाप्त हो रहे हैं।
- फसलों की पैदावार बढ़ाने के लिए उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग के कारण भूमि क्षरण।
- क्लोरोफ्लोरोकार्बन जैसे ओजोन क्षयकारी पदार्थों के उत्सर्जन के कारण ओजोन परत का क्षरण।
- वैश्वीकरण की बढ़ती जरूरतों को पूरा करने के लिए अत्यधिक खनन और वनों की कटाई के कारण लाखों लोग उचित पुनर्वास और पुनर्स्थापन प्रावधानों के बिना विस्थापित हो गए हैं।
- दिल्ली जैसे महानगर में वाहन प्रदूषण में वृद्धि, जिसे 'गैस चैंबर' के रूप में जाना जाता है।

कृषि

- भारतीय कृषि का वैश्वीकरण 19वीं शताब्दी में शुरू हुआ जब अंग्रेजों ने भारत में रेलवे की शुरुआत की। तब से, भारतीय कृषि अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार से जुड़ी हुई है। वैश्वीकरण के कारण इसकी संरचना में काफ़ी बदलाव आया है, जो कि मूल खाद्यान्नों से लेकर, उस समय निर्यात बाज़ारों का दायरा केवल उच्च मूल्य वाली वस्तुओं/नकदी फसलों तक सीमित था। इसके कुछ प्रभाव इस प्रकार हैं:

सकारात्मक प्रभाव

1. संकर बीजों के उपयोग और स्प्रिंकलर सिंचाई जैसी नई तकनीकी नवाचारों ने कृषि दक्षता में सुधार किया है। कृषि के क्षेत्र में भारत-इज़राइल साझेदारी भारतीय किसानों को कृषि में जल संरक्षण में मदद करती है।
2. जैव प्रौद्योगिकी के उपयोग से खाद्यान्न, सब्जियों आदि की समग्र उत्पादकता बढ़ाने में मदद मिली है, जैसे जी.एम. सरसों और जी.एम. कपास का उपयोग।
3. बेहतर बुनियादी ढाँचा, उन्नत अनुसंधान एवं विकास शाखा और क्षमता विकास से कृषि क्षेत्र को बेहतर विकास दर हासिल करने में मदद मिल सकती है। मृदा स्वास्थ्य कार्ड और प्रयोगशाला से भूमि जैसी पहल स्वागत योग्य हैं।
4. उत्पादन पद्धति में बदलाव - सामंती से पूंजीवादी (बाज़ार के लिए उत्पादन) की ओर। पंजाब और कर्नाटक जैसे कुछ क्षेत्रों में, किसान बहुराष्ट्रीय कंपनियों (जैसे पेप्सिको) के साथ कुछ खास फसलें (जैसे टमाटर और आलू) उगाने के लिए अनुबंध करते हैं, जिन्हें कंपनियां प्रसंस्करण या निर्यात के लिए उनसे खरीद लेती हैं। ऐसी 'अनुबंध खेती' प्रणालियों में, कंपनी उगाई जाने वाली फसल की पहचान करती है, बीज और अन्य इनपुट, साथ ही तकनीकी जानकारी और अक्सर कार्यशील पूंजी भी प्रदान करती है। बदले में, किसान को एक बाज़ार का आश्वासन मिलता है क्योंकि कंपनी गारंटी देती है कि वह पूर्व निर्धारित मूल्य पर उपज खरीदेगी। हालाँकि अनुबंध खेती किसानों को वित्तीय सुरक्षा प्रदान करती प्रतीत होती है, लेकिन यह और भी अधिक असुरक्षा का कारण बन सकती है क्योंकि किसान अपनी आजीविका के लिए इन कंपनियों पर निर्भर हो जाते हैं। फूलों और खीरा जैसे निर्यातोन्मुखी उत्पादों की अनुबंध खेती का अर्थ यह भी है कि कृषि भूमि को खाद्यान्न उत्पादन से हटा दिया जाता है।

नकारात्मक प्रभाव

1. कृषि में वैश्वीकरण के कारण, किसानों को रोग प्रतिरोधक क्षमता वाले बेहतर किस्म के आयातित बीजों के लिए भारी कीमत चुकानी पड़ रही है, क्योंकि विश्व व्यापार संगठन द्वारा पेटेंट अधिकार थोपे गए हैं, जैसा कि हाल ही में कपास के मामले में बॉलवर्म की घटना से उजागर हुआ है।
2. विदेशी देशों द्वारा लागू की गई घटिया तकनीक और कड़े गुणवत्ता मानकों के कारण भारतीय किसान अपने उत्पादों को अमीर देशों में निर्यात नहीं कर पा रहे हैं। उदाहरण के लिए, यूरोप ने पहले भारत से अल्फांसो आम के निर्यात पर प्रतिबंध लगा दिया था। विभिन्न देशों की वर्तमान संरक्षणवादी नीतियों के कारण भारतीय किसानों की आय और भी कम हो रही है।
3. कर्नाटक, पंजाब और हरियाणा क्षेत्र में भारी कर्ज के बोझ तले दबे भारतीय किसानों द्वारा बड़े पैमाने पर की जा रही आत्महत्याओं का सीधा संबंध वैश्वीकरण से है। बीज, कीटनाशक और उर्वरक जैसे कृषि आदानों के विक्रेता के रूप में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रवेश से किसानों की महंगे उर्वरकों और कीटनाशकों पर निर्भरता बढ़ गई है, जिससे उनका मुनाफा कम हो गया है। इससे कई किसान कर्ज में डूब गए हैं और ग्रामीण इलाकों में पर्यावरणीय संकट भी पैदा हो गया है।

प्रौद्योगिकीय

- वैश्वीकरण और प्रौद्योगिकी आपस में जुड़े हुए हैं। वैश्वीकरण के कारण अधिक प्रौद्योगिकी की आवश्यकता उत्पन्न हुई है, जबकि प्रौद्योगिकी वैश्वीकरण का एक महत्वपूर्ण पहलू बन गई है क्योंकि यह अधिक से अधिक लोगों को जोड़ती है। हम प्रौद्योगिकी द्वारा संचालित एक सीमा-रहित विश्व की ओर बढ़ रहे हैं। इसके कुछ प्रभाव इस प्रकार हैं:

सकारात्मक प्रभाव

- इसने प्रौद्योगिकी की बाधाओं को दूर करके सूचना एवं प्रौद्योगिकी उद्योग की शानदार सफलता में मदद की है।
- बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए एकल-उद्देश्य उपकरणों की जगह अब लचीले उपकरण ले रहे हैं जो बहु-कार्य उत्पादन कर सकते हैं। इससे उद्योगों को छोटे-छोटे बैचों में विभिन्न प्रकार के उत्पादों का कुशलतापूर्वक उत्पादन करने में मदद मिली है। उदाहरण के लिए, एक आधुनिक कार में, विभिन्न पुर्जे कहीं और बनते हैं और कहीं और असेंबल किए जाते हैं। मारुति सुजुकी कारों में, इंजन जापान से आता है, जबकि असेंबली हरियाणा के मानेसर में होती है।
- इसने मीडिया, कृषि, सेवा आदि जैसे अन्य क्षेत्रों में क्रांति ला दी है। इसने नए और बेहतर रोज़गार के अवसर पैदा करने में भी मदद की है। आज हम आसानी से ऐसी नौकरियाँ देख सकते हैं जो 24 घंटे खुली रहती हैं।
- अधिक परिष्कृत परिवहन प्रणालियों और वाहनों ने हमें उन क्षेत्रों में भी काम करने में सक्षम बनाया है जो घर से पैदल दूरी पर नहीं हैं, जैसे मेट्रो सेवाएं दिल्ली के सभी प्रमुख क्षेत्रों तक पहुंच गई हैं।
- प्रौद्योगिकी ने बेहतर कनेक्टिविटी की अनुमति दी है, विशेष रूप से उन परिवारों के लिए जो मीलों दूर रहते हैं, लेकिन स्काइप वीडियो चैटिंग और फोन कॉल के तर्कसंगत मूल्य निर्धारण जैसी बेहतर इंटरनेट कनेक्टिविटी के माध्यम से जुड़े हुए हैं।

नकारात्मक प्रभाव

- वैश्वीकरण ने पूरे भारत में सांस्कृतिक पिछड़ेपन की घटनाओं को बढ़ा दिया है। सांस्कृतिक पिछड़ेपन का अर्थ है कि समाज को तकनीकी परिवर्तन के साथ तालमेल बिठाने में कठिनाई होती है। कानून, नैतिकता और मानदंड जैसी सामाजिक व्यवस्थाओं में तकनीकी परिवर्तन के प्रति धीमी गति से अनुकूलन की प्रवृत्ति होती है, जिसके परिणामस्वरूप कुसमायोजन का दौर आता है और नए जोखिमों का प्रबंधन करने में विफलता होती है। उदाहरण के लिए, चिकित्सा प्रौद्योगिकी में प्रगति के साथ, लिंग-चयनात्मक तरीकों के कारण भारत में बाल लिंग अनुपात

प्रतिकूल हो गया। यह सांस्कृतिक पिछड़ेपन के लक्षणों को दर्शाता है क्योंकि कानून और नैतिकता बदलती तकनीक के साथ तालमेल बिठाने में सक्षम नहीं हैं।

- तकनीकी प्रगति के साथ, स्वचालन बनाम रोज़गार की बहसें चल रही हैं, जिससे बेरोज़गारी का ख़तरा पैदा हो गया है, खासकर अकुशल मज़दूरों के बीच। विश्व बैंक के अनुसार, भारत जैसे विकासशील देशों में स्वचालन के कारण 69% नौकरियाँ ख़तरे में हैं।
- वैश्वीकरण और तकनीकी क्रांति के कारण पारंपरिक हस्तनिर्मित उद्योगों की उपेक्षा हुई है, जिसके परिणामस्वरूप खादी उद्योग के पतन के साथ-साथ कई लोगों की आजीविका भी प्रभावित हुई है।

आधारभूत संरचना

- बुनियादी ढाँचा अर्थव्यवस्था का एक अनिवार्य आधार है। परिवहन, संचार, सीवेज, जल और विद्युत प्रणालियाँ, सभी बुनियादी ढाँचे के उदाहरण हैं। बुनियादी ढाँचा व्यापार को सक्षम बनाता है, व्यवसायों को शक्ति प्रदान करता है, श्रमिकों को उनकी नौकरियों से जोड़ता है, संघर्षरत समुदायों के लिए अवसर पैदा करता है और राष्ट्र को तेजी से अप्रत्याशित होते प्राकृतिक वातावरण से बचाता है। अर्थव्यवस्था को आपूर्ति श्रृंखलाओं को जोड़ने और वस्तुओं एवं सेवाओं को कुशलतापूर्वक सीमाओं के पार पहुँचाने के लिए विश्वसनीय बुनियादी ढाँचे की आवश्यकता होती है। बुनियादी ढाँचा व्यापार, निवेश, प्रौद्योगिकी और पूँजीगत बुनियादी ढाँचों के माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों के परिवारों को रोज़गार, स्वास्थ्य सेवा और शिक्षा के उच्च-गुणवत्ता वाले अवसरों से जोड़ता है। इसके कुछ सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव इस प्रकार हैं:

सकारात्मक प्रभाव

1. परिवहन और दूरसंचार के रूप में बेहतर बुनियादी ढांचा दूरी की बाधाओं को तोड़कर लोगों और समुदायों को जोड़ने में मदद करता है।
2. बेहतर बुनियादी ढाँचे ने तकनीकी बदलावों के रूप में ज़्यादा धन और बेहतर संसाधन लाने में मदद की है। उदाहरण के लिए, लॉजिस्टिक इंडेक्स में बेहतर रैंकिंग किसी देश को निवेश के लिए एक अनुकूल देश के रूप में दर्शाती है।
3. इससे सार्वजनिक निजी भागीदारी (पीपीपी) को बढ़ावा मिला है, जिससे बुनियादी ढांचे पर व्यय की दक्षता और मितव्ययिता में सुधार करने में मदद मिली है।

नकारात्मक प्रभाव

1. विशेषकर बुनियादी ढांचे के क्षेत्र में क्रोनी पूंजीवाद का उदय और इस प्रकार सार्वजनिक संसाधनों की बर्बादी, जैसा कि 2जी स्पेक्ट्रम आवंटन मामले में स्पष्ट है।
2. इससे राजमार्गों पर टोल जैसे भुगतान करने की मानसिकता में उपयोगकर्ताओं की संख्या बढ़ गई है। राज्य और समाज के बीच का संबंध काफी हद तक आर्थिक तर्क तक सीमित हो गया है।

स्वैच्छिक संगठन

- विश्व में विकास में आमूलचूल परिवर्तन आया है, जिसका मुख्य कारण बढ़ते वैश्वीकरण के साथ हित समूहों, वकालत समूहों या गैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ) में संगठित हितधारकों की संख्या और प्रकार में वृद्धि है। स्थानीय, राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर सार्वजनिक नीति पर और नीति-निर्माण एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के लगभग हर पहलू पर उनके प्रभाव ने उन्हें विकास के क्षेत्र में प्रमुख भूमिकाएँ प्रदान की हैं। एनजीओ और अन्य नागरिक समाज समूह न केवल शासन में हितधारक हैं, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय समझौतों के लिए जनता के सक्रिय समर्थन के माध्यम से अधिक से अधिक अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के पीछे एक प्रेरक शक्ति भी हैं। बचपन बचाओ आंदोलन जैसे एनजीओ ने बाल अधिकारों के बारे में जागरूकता बढ़ाई है और भारत ने अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) के कई बाल श्रम प्रावधानों का अनुसमर्थन किया है। कुछ सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव इस प्रकार हैं:

सकारात्मक प्रभाव

1. इससे मानवाधिकार, पर्यावरण समूह, खाद्य सुरक्षा जैसे कई क्षेत्रों में बड़ी संख्या में गैर सरकारी संगठनों का उदय हुआ है, तथा एमनेस्टी इंटरनेशनल, ग्रीन पीस, ऑक्सफैम और अन्य जैसे अन्य क्षेत्रों में भी गैर सरकारी संगठनों का उदय हुआ है, जिससे इन क्षेत्रों में ध्यान बढ़ाने में मदद मिली है।
2. गैर-सरकारी संगठनों की सक्रिय पैरवी के कारण, आज सरकारें विकास और पर्यावरणीय मुद्दों के बीच संतुलन बनाने की कोशिश कर रही हैं। उदाहरण के लिए, नर्मदा बचाओ आंदोलन द्वारा बांध के विरोध के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय पुनर्वास और पुनर्स्थापन नीति बनी है।
3. उन्होंने कमज़ोर और हाशिए पर पड़ी आबादी को आवाज़ और अधिकार देकर उनकी भागीदारी बढ़ाने में मदद की है। उदाहरण के लिए, मज़दूर किसान शक्ति संगठन के संघर्ष ने सूचना का अधिकार अधिनियम को जन्म दिया है।
4. उन्होंने हाशिए पर पड़ी आबादी के उत्थान के लिए भारत में वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई है। उदाहरण के लिए, मेलिंडा और गेट्स फाउंडेशन।

नकारात्मक प्रभाव

1. देश में विकास प्रक्रिया को कमजोर करने के लिए अंतरराष्ट्रीय संगठनों द्वारा की जा रही फर्जी गतिविधियों की रिपोर्टिंग चिंता का विषय है। यह मुद्दा न केवल पर्यावरणीय नियमों में, बल्कि मानवीय न्याय संगठनों के मामले में भी उजागर हुआ है।
2. वे जो पैसा लाते हैं, उसका ज़्यादातर इस्तेमाल वे खुद ही करते हैं, जिससे इस क्षेत्र में मुद्रास्फीति भी बढ़ गई है और स्थानीय लोगों का जीवन प्रभावित हो रहा है। यह प्रवृत्ति कई अफ्रीकी देशों में देखी गई है।

निगमित

- वैश्वीकरण ने पारंपरिक शासन प्रक्रियाओं को काफी हद तक कमजोर कर दिया है। बढ़ते आर्थिक एकीकरण ने राष्ट्रीय सरकारों की भूमिका को कम कर दिया है और कॉर्पोरेट जगत को अन्य कार्य सौंप दिए हैं। 1991 में भारतीय अर्थव्यवस्था के खुलने के साथ, कॉर्पोरेट क्षेत्र की भूमिका काफी बढ़ गई। कॉर्पोरेट्स की संख्या में वृद्धि हुई है और ऐसा माना जाता है कि विकसित देशों की कॉर्पोरेट संस्कृति भारत के कॉर्पोरेट्स को प्रभावित कर रही है। इसके कुछ प्रभाव इस प्रकार हैं:

सकारात्मक प्रभाव

1. वैश्विक प्रथाओं और प्रतिस्पर्धा को अपनाकर भारत में कंपनियों के कामकाज में परिचालन दक्षता में सुधार हुआ है। आज क्रिसिल जैसी विभिन्न भारतीय रेटिंग एजेंसियां कंपनियों की रेटिंग करने के लिए आगे आई हैं।
2. इससे कंपनी को बड़ा अप्रयुक्त बाजार उपलब्ध कराने में मदद मिली है, जिससे कंपनी की लाभप्रदता और वृद्धि में वृद्धि हुई है।
3. इसने निदेशक मंडल में स्वतंत्र निदेशकों को शामिल करने जैसे वैश्विक मानकों और प्रथाओं को शामिल करके कॉर्पोरेट प्रशासन लाने में मदद की है।
4. वैश्वीकरण के साथ, कंपनियाँ अपने कर्मचारियों को लैंगिक समानता पर शिक्षा प्रदान करके लैंगिक समानता को बढ़ावा दे रही हैं। कई पुरुष भी आगे आकर कार्यस्थल पर लैंगिक समानता के लिए आवाज़ उठा रहे हैं। उदाहरण के लिए, संयुक्त राष्ट्र द्वारा शुरू किए गए 'ही फॉर शी' अभियान के माध्यम से।
5. कार्य संस्कृति: उदाहरण के लिए, खुशी अधिकारी की नियुक्ति, कंपनी के कर्मचारियों का जन्मदिन मनाना आदि।
6. स्टार्ट अप क्रांति: कई वेंचर कैपिटलिस्ट (वीसी) फर्म भारतीय कंपनियों को फंडिंग कर रही हैं, जैसे सॉफ्ट बैंक फंडिंग ओला।

नकारात्मक प्रभाव

1. वैश्वीकरण ने बाजार को प्रतिस्पर्धियों से भर दिया है, तथा पर्याप्त संसाधन उपलब्ध नहीं हैं।

2. शीर्ष स्तर के अधिकारियों और मध्यम व निम्न स्तर के अधिकारियों के वेतन में असमानता के कारण असमानताएँ बढ़ी हैं। उदाहरण के लिए, एम. नाइक सेंसेक्स पर भारत के निजी क्षेत्र के सबसे अधिक वेतन पाने वाले सीईओ की सूची में शीर्ष पर हैं। वित्त वर्ष 2015-16 में उन्हें 66.14 करोड़ रुपये का वेतन मिला।
3. पर्याप्त बुनियादी ढांचे और प्रौद्योगिकी की कमी के कारण कई छोटी कंपनियां बड़ी कंपनियों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकीं, जिसके कारण ऐसी कंपनियां बंद हो गईं।
4. भारतीय कंपनियों को पश्चिमी दुनिया में कठिन गैर-टैरिफ चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, इसलिए लाभ दोतरफा नहीं हो रहे हैं। भारतीय आईटी पेशेवरों के लिए एच1बी वीज़ा जारी होने से भारतीय कंपनियों की परिचालन लागत बढ़ जाएगी।

सार्वजनिक क्षेत्र का उद्यम

- भारत में व्यवस्थित और नियोजित विकास प्राप्त करने में सार्वजनिक क्षेत्र ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। स्वतंत्रता के बाद, भारत अनेक समस्याओं से जूझ रहा था और निजी क्षेत्र अपने विभिन्न क्षेत्रों के विकास में एक साथ अग्रणी भूमिका निभाने की स्थिति में नहीं था। इसलिए, देश की विकास रणनीति को आवश्यक समर्थन प्रदान करने के लिए, सार्वजनिक क्षेत्र ने अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर विकास के पथ पर लाने के लिए आवश्यक न्यूनतम प्रोत्साहन प्रदान किया। हालाँकि, वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण के आगमन के साथ, सार्वजनिक उपक्रमों में उल्लेखनीय परिवर्तन आया। वैश्वीकरण के कुछ प्रभाव इस प्रकार हैं:

सकारात्मक प्रभाव

1. इसने सार्वजनिक क्षेत्र के एकाधिकार को चुनौती देकर उनके कामकाज में दक्षता, मितव्ययिता और प्रभावशीलता लाने में मदद की है। विदेशी कंपनियों को दूरसंचार, नागरिक उड्डयन, बिजली आदि जैसे पहले सरकार के लिए आरक्षित क्षेत्रों में निवेश करने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। अब उद्योग खोलने के लिए लाइसेंस की आवश्यकता नहीं है।
2. इससे सूचना का अधिकार अधिनियम जैसे बेहतर अधिनियमों और दिशानिर्देशों के माध्यम से उनके कामकाज में जवाबदेही और पारदर्शिता बढ़ाने में भी मदद मिली है।
3. इसने अमीर और गरीब के बीच की खाई को पाटकर आय और धन के वितरण में असमानताओं को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

नकारात्मक प्रभाव

1. इसके कारण विभिन्न सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम बंद हो गए हैं या सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का विनिवेश हुआ है, जिससे इस क्षेत्र में रोज़गार के अवसर कम हुए हैं। उदाहरण के लिए, आधुनिक खाद्य उद्योग के मामले में, 60% कर्मचारी पहले पाँच वर्षों में ही सेवानिवृत्त होने के लिए मजबूर हो गए।
2. विदेशी कंपनी से तीव्र प्रतिस्पर्धा के कारण इन उद्यमों का घाटा बढ़ गया है।
3. श्रमिकों का ठेकाकरण और काम की आउटसोर्सिंग बढ़ रही है। इन श्रमिकों को ज़रूरी सामाजिक सुरक्षा लाभ नहीं मिल पा रहे हैं।

सामाजिक क्षेत्रों से पीछे हट रही सरकार

- उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के साथ, भारतीय अर्थव्यवस्था ने अपने विकास में निजी क्षेत्र को समायोजित करने के लिए अच्छी तरह से आकार लिया है। घरेलू और विदेशी दोनों निजी कंपनियों की भागीदारी से निजी क्षेत्र में औद्योगिक गतिविधियों को गति मिली है। हालाँकि, सरकार ने उद्योग, कृषि, बुनियादी ढाँचे और व्यापार के क्षेत्र में कुछ विशिष्ट क्षेत्रों को निजी क्षेत्र के लिए निर्धारित किया है क्योंकि रणनीतिक क्षेत्रों में निजी खिलाड़ियों को अनुमति देना खतरनाक हो सकता था। इसके कुछ प्रभाव इस प्रकार हैं:

सकारात्मक प्रभाव

1. बाज़ार में निजी कंपनियों की भरमार होने से उपभोक्ताओं को सबसे सस्ते दामों पर बेहतरीन उत्पाद मिलते हैं। ओला-उबर की प्रतिद्वंद्विता ने परिवहन लागत को कम कर दिया है।
2. निजी क्षेत्र देश के बुनियादी ढाँचे को सक्रिय रूप से सहयोग दे रहा है। वे सड़क परिवहन, जल परिवहन आदि में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। उदाहरण के लिए, पुणे में जल वितरण में निजी क्षेत्र की बड़े पैमाने पर भागीदारी है।
3. जनता में अपने अधिकारों के प्रति बढ़ती जागरूकता के साथ, सरकार आरटीआई, मनरेगा और अन्य जैसे कानून बनाकर अधिकार आधारित दृष्टिकोण की ओर बढ़ते हुए उनकी मांगों को पूरा करने के लिए सचेत प्रयास कर रही है।
4. अधिक शिक्षित नागरिकों ने सामाजिक क्षेत्रों पर सरकारी व्यय की दक्षता में सुधार किया है।

नकारात्मक प्रभाव

1. किसी भी आवश्यक वस्तु की कमी होने पर, निजी क्षेत्र में ऐसी वस्तुओं की जमाखोरी और कालाबाज़ारी की प्रवृत्ति होती है, जिससे उपभोक्ताओं का शोषण होता है। उदाहरण के लिए, कम उत्पादन वाले मौसम में प्याज और दालों की जमाखोरी।
2. निजी क्षेत्र केवल लाभ अधिकतमीकरण के उद्देश्य से संचालित होता है और राष्ट्रीय उद्देश्यों की ओर ध्यान नहीं देता। इस प्रकार, वह कुछ अवांछनीय कदम उठा सकता है जो उपभोक्ताओं के साथ-साथ राष्ट्र के भी हित में हो सकते हैं।
3. निजी कंपनियों के बढ़ते दबदबे के कारण, बड़ी कंपनियों में एकाधिकार की प्रवृत्ति बढ़ गई है, जिससे धन और आर्थिक शक्ति कुछ ही लोगों के हाथों में केंद्रित हो गई है, जिससे असमानता बढ़ रही है। आज एप्पल का बाजार मूल्य अधिकांश देशों के सकल घरेलू उत्पाद से भी अधिक है।
4. लगभग सभी क्षेत्रों में निजी कंपनियों के आने से, उपयोगकर्ता भुगतान की मानसिकता बढ़ रही है, जो गरीब और हाशिए पर रहने वाले लोगों के लिए उतनी व्यावहारिक नहीं है। अमेरिका के कुछ शहरों में, अग्निशमन विभाग जैसी बुनियादी सेवाओं का भी निजीकरण किया जा रहा है। कई कंपनियां केवल विकसित बाज़ार का ही दोहन करने की कोशिश करती हैं ताकि हाशिए पर रहने वाले क्षेत्रों को कोई लाभ न मिले।

अनौपचारिक क्षेत्र

- अनौपचारिक क्षेत्र में अधिकांशतः अकुशल कार्यबल शामिल है। 21वीं सदी के पहले दशक में, कुल रोज़गार का लगभग 76 प्रतिशत अनौपचारिक क्षेत्र में था। वैश्वीकरण के कुछ सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव इस प्रकार हैं:

सकारात्मक प्रभाव

1. अनौपचारिक क्षेत्र में रोजगार के अधिक अवसर होने के कारण, रोजगार के अवसर सृजित करने के लिए कृषि पर दबाव कम है।
2. वैश्वीकरण ने आर्थिक कार्यक्षेत्र में महिलाओं के लिए अधिक स्थान उपलब्ध कराया है। इससे भारत के सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य में महिलाओं की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। इस प्रकार, इससे महिलाओं को लचीलापन और अवसर प्रदान करने में मदद मिली है।

नकारात्मक प्रभाव

1. ऐसे दौर में जहाँ कड़ी प्रतिस्पर्धा के कारण, खासकर निचले स्तरों पर, नौकरी पाना और भी मुश्किल हो गया है, अनौपचारिक क्षेत्र के कामगारों को बेहद खराब कामकाजी परिस्थितियों में काम करने के लिए मजबूर होना पड़ता है, जहाँ नौकरी की सुरक्षा बहुत कम होती है, कोई भत्ते या सुरक्षा नहीं मिलती, उन्हें कम वेतन मिलता है और

कल्याणकारी लाभों से भी वंचित रखा जाता है। विभिन्न कानूनों के तहत कामगारों को दी गई सुरक्षा का अनौपचारिक क्षेत्र द्वारा पालन नहीं किया जाता है।

2. अनौपचारिक क्षेत्र के कारण श्रमिकों में संविदाकरण की प्रवृत्ति बढ़ी है, जिससे कंपनी के प्रति लगाव या निष्ठा का अभाव हो गया है, जिससे उत्पादकता में बाधा उत्पन्न हो रही है।
3. कंपनियां कौशल विकास के माध्यम से मानव संसाधन में निवेश नहीं करती हैं।

अनुभागों पर प्रभाव

औरत

- वैश्वीकरण की लहर ने दुनिया भर में महिलाओं के जीवन में, विशेष रूप से विकासशील देशों की महिलाओं के जीवन में, व्यापक सुधार किया है। फिर भी, शिक्षा, रोज़गार, स्वास्थ्य और नागरिक अधिकारों सहित जीवन के कई क्षेत्रों में महिलाएँ वंचित बनी हुई हैं। इसने आर्थिक मोर्चे पर महिलाओं के लिए कई अवसर खोलकर महिलाओं के आर्थिक और सामाजिक जीवन को गहराई से प्रभावित किया है जिससे महिला सशक्तिकरण में मदद मिली है। सांस्कृतिक और आर्थिक प्रवास के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण महिलाओं को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बेहतर संभावनाओं से रूबरू करा सकेगा।

सकारात्मक प्रभाव

1. कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी बढ़ रही है। औपचारिक क्षेत्र में, विभिन्न बहुराष्ट्रीय कंपनियों की स्थापना ने महिलाओं के लिए कई आर्थिक रास्ते खोलने में मदद की है, जिससे वे आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो रही हैं।
2. अनौपचारिक क्षेत्र में, इसने व्यापार और निर्यात प्रवाह को मज़बूत करने में मदद की है जिससे मुख्य आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है। उदाहरण के लिए, 110 शिल्प महिला समूहों के एक संघ, कच्छ शिल्प ने भारत के वैश्वीकरण के पथ पर आगे बढ़ने के बाद से 6000 रोज़गार के अवसर पैदा करने में मदद की है।
3. नई नौकरियों और उच्च वेतन ने महिलाओं को अपना आत्मविश्वास बढ़ाने में मदद की है, जिससे परिवार के निर्णय लेने की शक्ति में उनकी भागीदारी बढ़ रही है।
4. वैश्वीकरण ने लैंगिक समानता के विचारों और मानदंडों को बढ़ावा दिया है, जिससे जागरूकता आई है और समान अधिकारों और अवसरों के लिए उनके संघर्ष में प्रेरक के रूप में कार्य किया है।
5. वैश्वीकरण महिलाओं को पारिवारिक और सामाजिक परिवेश की मुख्यधारा में लाकर महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। परिवार में महिलाओं की बदलती भूमिका ने भारत में पितृसत्ता की पुरानी संस्था के लिए खतरा पैदा कर दिया है।
6. एकल परिवारों के बढ़ने से महिलाओं के लिए अपने अधिकारों की मुखरता से मांग करना आसान हो गया है। भारत की महिलाएं दुनिया भर की महिलाओं से अपने अधिकारों के लिए लड़ने के लिए प्रेरित हो रही हैं। उदाहरण के लिए, 2012 के निर्भया कांड के बाद हालिया विरोध प्रदर्शन।
7. वैश्विक संचार नेटवर्क और अंतर-सांस्कृतिक आदान-प्रदान के आगमन के साथ, महिलाओं की स्थिति में बदलाव आ रहा है। महिलाओं के प्रति, खासकर शहरी क्षेत्रों में, बदलता नज़रिया एक बड़ी सकारात्मक बात है।

नकारात्मक प्रभाव

1. कई सकारात्मक पहलुओं के बावजूद, अधिकांश रोज़गार अवसरों में अभी भी अवरोध मौजूद हैं। इसके अलावा, बेरोज़गारी, अल्प-रोज़गार और अस्थायी काम पुरुषों की तुलना में महिलाओं में ज़्यादा आम हैं।

2. काम की अनियमित उपलब्धता के कारण, विशेष रूप से असंगठित क्षेत्र में, महिलाओं को दिन में बारह घंटे काम करने के लिए मजबूर किया जा रहा है, जिससे श्वसन संबंधी समस्याएँ, श्रोणि सूजन संबंधी बीमारियाँ आदि जैसी स्वास्थ्य समस्याएँ पैदा हो रही हैं। उदाहरण के लिए, बीड़ी बनाने वाली महिलाएँ और परिधान उद्योग में भी।

3. वैश्वीकरण द्वारा चुनौती दी गई पितृसत्तात्मक प्रवृत्ति और सांस्कृतिक मानदंड अक्सर हिंसा, अवरोध, घरेलू और

कार्यस्थल पर उत्पीड़न आदि के रूप में प्रकट हुए हैं, जैसा कि हरियाणा में अंतर्जातीय विवाह के खिलाफ ऑनर किलिंग के मामलों से उजागर होता है।

4. कई पारंपरिक उद्योग, जहाँ महिलाएँ बड़ी संख्या में काम करती थीं, जैसे हथकरघा और खाद्य प्रसंस्करण, मशीनों और पावरलूम के आने से उत्पादन के तरीकों में बदलाव आया है, जिससे इस क्षेत्र में महिलाओं के लिए रोज़गार का नुकसान हुआ है।

5. महिलाओं का वस्तुकरण, पोर्नोग्राफी और अश्लील रियलिटी शो के कारण भी लैंगिक हिंसा, छेड़छाड़, उत्पीड़न, बलात्कार और दहेज हत्याओं में वृद्धि हुई है।

वैश्वीकरण की बदौलत, भारत में महिलाएँ अब पुरानी परंपराओं की छाया से आज़ादी और अधिकारों के नए युग में प्रवेश कर रही हैं। दीर्घकाल में, महिलाओं के कौशल को उन्नत करके, नवीन नीतियों की मदद से, उनके आर्थिक और सामाजिक सशक्तिकरण के लिए एक स्थायी वातावरण तैयार करके, वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभावों को कम करना आवश्यक हो जाता है।

- **श्रम का स्त्रीकरण:** यह शब्द वैश्विक पूंजीवाद के उदय के कारण उभरते श्रम संबंधों का वर्णन करने के लिए प्रयुक्त होता है। यह उन महिलाओं और पुरुषों के लिए अधिक रोज़गार की ओर एक प्रवृत्ति है जो इन अधिक स्त्री-प्रधान कार्यस्थलों के साथ काम करने के इच्छुक और सक्षम हैं। व्यापार, पूँजी प्रवाह और प्रौद्योगिकी के वैश्विक विस्तार ने महिलाओं के लिए औपचारिक और अनौपचारिक बाज़ार के अवसरों में वृद्धि की है, क्योंकि उनकी मज़दूरी कम है और वे लचीले और अंशकालिक रोज़गार अपनाने को तैयार हैं। महिलाओं को बिना किसी रोज़गार सुरक्षा या स्वायत्तता के कम मज़दूरी पर काम करने के लिए मजबूर किया जाता था। श्रम का स्त्रीकरण आंशिक रूप से वैश्विक अर्थव्यवस्था के नवउदारवादी पुनर्गठन के कारण है, जो उत्पादन प्रक्रिया में बड़े कारखानों के कार्यस्थलों से हटकर अनौपचारिक उत्पादन की ओर बदलाव को संदर्भित करता है।

उत्पाद बनाए

- महिलाओं का वस्तुकरण एक ऐसा शब्द है जो महिलाओं को एक वस्तु के रूप में वर्णित करता है। निर्माता महिलाओं के स्त्रीत्व और घरेलूपन का शोषण करके रणनीतिक रूप से उनके लिए उत्पादों का विपणन करते हैं। ये प्रथाएँ महिलाओं को पारंपरिक रूप से निर्दिष्ट "स्त्री" भूमिकाओं और व्यवसायों को बनाए रखने के लिए लक्षित करती हैं, इस प्रकार महिलाओं की पुरुषों के अधीनता को उजागर करती हैं। महिलाओं को वस्तुओं के रूप में इस्तेमाल किया जाता है और महिलाओं का वस्तुकरण कई कंपनियों के विज्ञापनों में, यहाँ तक कि सौंदर्य उत्पादों, बार्बी डॉल और अन्य खिलौनों के विज्ञापनों में भी आम रहा है। महिलाओं और उनकी भूमिकाओं का वस्तुकरण और निर्विवाद लैंगिक रूढ़िवादिता भारत में महिला सशक्तिकरण योजनाओं की विफलता के प्रमुख कारणों में से एक है।

वैश्वीकरण और वृद्धावस्था

- प्रजनन दर में कमी और महिलाओं की बदलती भूमिकाओं ने समाज में बुजुर्गों को एक अलग नज़रिए से देखा है। 1980 के दशक की शुरुआत तक भारत में बुजुर्गों को एक सामाजिक घटना माना जाता था। लेकिन अब उन्हें एक आर्थिक घटना के रूप में देखा जाता है क्योंकि समाज मानवतावादी (सामाजिक) से भौतिकवादी (आर्थिक) की ओर बढ़ रहा है।
- पिछले दशक में भारत में हुए सामाजिक परिवर्तन दर्शाते हैं कि कई सामाजिक श्रेणियाँ आर्थिक और राजनीतिक श्रेणियों में बदल गई हैं। वृद्धजन स्वयं को किसी राजनीतिक या आर्थिक श्रेणी में नहीं बदल सकते क्योंकि वे एक संगठित समूह नहीं हैं। परिणामस्वरूप, भारत में जीवन संतुष्टि कम हो रही है और अलगाव बढ़ रहा है।
- देखभाल करने वालों और बुज़ुर्गों के बीच लगातार संघर्ष होता रहता है। सामाजिक आदान-प्रदान धीरे-धीरे आर्थिक आदान-प्रदान की ओर बढ़ रहा है। जब यह आर्थिक आदान-प्रदान में बदल रहा होता है, तो परिवार और समाज द्वारा बुज़ुर्गों का शोषण किया जाता है।

- समाज विधवाओं को उनकी उम्र और स्थिति के कारण हाशिये पर समझता है। आज ग्रामीण भारत में वृद्ध होती महिलाओं को तिहरे संकट का सामना करना पड़ रहा है। सबसे पहले, एक ऐसे समाज में वृद्धावस्था का संकट, जहाँ वृद्धों को अस्थिर अर्थव्यवस्था पर बोझ समझा जाने लगा है। संकट का दूसरा स्रोत पुरुष-प्रधान, मुख्यतः पितृसत्तात्मक समाज में महिला होना है, जहाँ स्त्रीत्व का अवमूल्यन किया जाता है। तीसरा संकट उन मौजूदा परिस्थितियों के कारण है जिनमें अधिकांश महिलाएँ रहती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली अधिकांश महिलाएँ गरीबी की चपेट में हैं या शहरी क्षेत्रों में आश्रित हैं।
- खाली घोंसला सिंड्रोम (Empty Nest Syndrome) दुःख और अकेलेपन की एक भावना है जो माता-पिता तब महसूस कर सकते हैं जब उनके बच्चे पहली बार घर से बाहर जाते हैं, जैसे कि अकेले रहने के लिए या कॉलेज या विश्वविद्यालय जाने के लिए। वैश्वीकरण के दौर में, यह सिंड्रोम स्थायी होता जा रहा है और इसके परिणामस्वरूप माता-पिता अकेलेपन का शिकार हो रहे हैं।

वैश्वीकरण और बच्चे

- दोहरी नौकरी वाले परिवारों में वृद्धि के कारण, बच्चों का प्राथमिक समूह बदल गया है। अब बातचीत आम तौर पर आभासी हो गई है, जिसके परिणामस्वरूप ऑनलाइन गेम्स की महामारी फैल रही है, जिसका असर बच्चों के सामाजिक विकास पर पड़ रहा है।
- इसके अलावा, माता-पिता द्वारा स्थानांतरण की समस्या के कारण सामाजिक बंधन में कमी आती है, क्योंकि बच्चों का समूह लगातार बदलता रहता है।

वैश्वीकरण और पहचान

- दुनिया भर में लोकलुभावनवाद का उदय निरंतर वैश्वीकरण का एक अपरिहार्य परिणाम हो सकता है। फ्लाइपरग्लोबलाइज़ेशन समाज में बढ़ती दरारों को जन्म देता है क्योंकि यह विजेताओं और पराजितों का चयन करता है। वैश्वीकरण समाज में दरार पैदा करता है, कभी पूंजी और श्रम के बीच, कुशल और अकुशल श्रम के बीच, क्षेत्रों के बीच, आदि। जब बहुसंख्यक निरंतर वैश्वीकरण के कारण असुरक्षित महसूस करने लगते हैं, तो उनका गुस्सा या तो अभिजात वर्ग के खिलाफ या अल्पसंख्यकों के खिलाफ हो सकता है। पूर्व वामपंथी लोकलुभावनवाद की ओर ले जाता है, जैसा कि लैटिन अमेरिका, स्पेन और ग्रीस में देखा गया है, जबकि उत्तरार्द्ध दक्षिणपंथी लोकलुभावनवाद की ओर ले जाता है, जैसा कि भारत और अन्य यूरोपीय देशों में देखा गया है।
- इस प्रकार, आधुनिकीकरण के साथ-साथ नव-परंपराकरण का एक रूप आगे बढ़ता है।" जाति, परिवार और ग्राम समुदाय जैसी सूक्ष्म संरचनाओं की अनुकूलन क्षमता ने भारतीय सामाजिक संस्थाओं की अप्रत्याशित लोच और अंतर्निहित क्षमता को दर्शाया है। परिणामस्वरूप, भारत में वैश्वीकरण की प्रक्रिया से कई संरचनात्मक विसंगतियाँ उत्पन्न हो रही हैं। इनमें से कुछ विसंगतियाँ इस प्रकार हैं:
  - नागरिक संस्कृति (शिक्षा) के प्रसार के बिना लोकतंत्रीकरण,
  - सार्वभौमिक मानदंडों के प्रति प्रतिबद्धता के बिना नौकरशाही,
  - संसाधनों और वितरणात्मक न्याय में आनुपातिक वृद्धि के बिना मीडिया की भागीदारी और आकांक्षाओं में वृद्धि,
  - सामाजिक संरचना में प्रसार के बिना कल्याणकारी विचारधारा का मौखिककरण और सामाजिक नीति के रूप में इसका कार्यान्वयन,
  - औद्योगीकरण के बिना अति-शहरीकरण और
  - स्तरीकरण प्रणाली में सार्थक परिवर्तन के बिना आधुनिकीकरण।

आदिवासियों

- भारत, अफ्रीका के बाद, दुनिया में दूसरी सबसे बड़ी जनजातीय आबादी का घर है। भारत में जनजातियाँ देश के कोने-कोने में फैली हुई हैं। उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (एलपीजी) के आगमन के बाद से, आर्थिक विकास के नाम पर जबरन विस्थापन के कारण जनजातीय क्षेत्रों को विभिन्न विरोधों का सामना करना पड़ा है। गरीब

मूलनिवासी आदिवासियों को बेहतर जीवनशैली प्रदान करने के नाम पर, बाज़ार की ताकतों ने कई बार इन क्षेत्रों में इन जनजातियों की आजीविका और सुरक्षा की कीमत पर धन अर्जित किया है।

सकारात्मक प्रभाव

1. मीडिया और जनसंचार के अन्य संसाधनों के संपर्क से उन्हें अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने में मदद मिली है, जिसके कारण सरकार के अधीन जनजातीय मामलों के लिए अलग मंत्रालय का गठन हुआ है और ओडिशा से पॉस्को स्टील प्लांट को वापस ले लिया गया है।
2. बेहतर रोजगार के अवसर, शिक्षा और जीवनशैली ने जातिगत कठोरताओं को चुनौती दी है और इस प्रकार जनजातीय आबादी की समग्र स्थिति में सुधार लाने में मदद की है।
3. बेहतर दवाओं और जीवन रक्षक दवाओं के माध्यम से स्वास्थ्य लाभ में सुधार से आदिवासियों की समग्र जीवन प्रत्याशा में सुधार करने में मदद मिली है।

नकारात्मक प्रभाव

- उनके पारंपरिक रोज़गार और जीवन-यापन के तरीके में चुनौतियाँ आई हैं। साथ ही, विभिन्न बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन के कारण हुए विस्थापन ने भी उनकी आजीविका को प्रभावित किया है। उदाहरण के लिए, बुलेट ट्रेन के लिए भूमि अधिग्रहण से लेकर संभावित विस्थापन तक।
- आदिवासियों को प्रभावी कानूनी संरक्षण का अभाव और उनके अनैच्छिक विस्थापन ने भाषा और संस्कृति के रूप में उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत को नष्ट कर दिया है।
- औषधीय प्रयोजन के लिए लंबे समय से उपयोग में आने वाले पौधों का पेटेंट कराने से स्वास्थ्य रखरखाव की लागत बढ़ गई है।
- पर्यावरणीय क्षरण के कारण वे बुरी तरह प्रभावित हो रहे हैं और परिणामस्वरूप उनकी कुछ पारंपरिक प्रथाओं जैसे झूम खेती पर प्रतिबंध लगा दिया गया है।

जनजातीय आबादी का एक बड़ा हिस्सा अभी भी हाशिये पर जीवन जी रहा है और वैश्वीकरण के कारण सरकार से प्रभावी समर्थन न मिलने के कारण उनकी कठिनाइयां और बढ़ गई हैं।

दलितों

- वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने भारत के सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में गहरी पैठ बना ली है। इसने न केवल मानव जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित किया है, बल्कि सामाजिक संस्थाओं को भी व्यापक रूप से प्रभावित किया है। सामाजिक-आर्थिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए, विशेष रूप से अनुसूचित जातियों और दलितों जैसे वंचित वर्गों के लिए, भारतीय संविधान में कई सकारात्मक उपाय पेश किए गए। इसके अतिरिक्त, दलितों के उत्थान के लिए कई कल्याणकारी योजनाएँ शुरू की गईं।

सकारात्मक प्रभाव

1. एक नई विश्व आर्थिक व्यवस्था के रूप में वैश्वीकरण सभी के लिए अधिक समृद्धि, प्रगति और स्वतंत्रता का वादा करता है। उदाहरण के लिए, दलित पूंजीवाद का उदय भी इस विचार को प्रकट करता है।
2. सार्वजनिक नौकरियों में आरक्षण ने दलितों की उन्नति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आरक्षण के कारण विभिन्न सरकारी और अर्ध-सरकारी सेवाओं में दलितों की हिस्सेदारी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।
3. शैक्षिक संस्थानों में आरक्षण और छात्रवृत्ति के रूप में वित्तीय सहायता उन्हें गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक बेहतर पहुंच प्रदान करती है।
4. गैर-सरकारी संगठनों ने उन्हें उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठाने का मौका दिया है। उदाहरण के लिए, दलित अधिकार कार्यकर्ता मार्टिन मैकवान ने नवसर्जन ट्रस्ट की स्थापना की थी। यह ट्रस्ट दलितों पर अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाता है।

नकारात्मक प्रभाव

1. वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने दलितों के पारंपरिक व्यवसायों को सीधे तौर पर प्रभावित किया है। उनकी आजीविका और विशिष्ट व्यवसायों का स्थान अब वैश्विक पूँजीवादी उत्पादनों ने ले लिया है। नवीनतम तकनीक आधारित उद्योगों से बड़े पैमाने पर उत्पादित वस्तुओं की सस्ती कीमतों पर आसान उपलब्धता उनके पारंपरिक व्यवसाय के लिए एक बड़ी चुनौती साबित हुई है।
2. वैश्वीकरण के बाजार समर्थक रुख के कारण कुछ विशेषाधिकार प्राप्त लोगों और अनुसूचित जातियों व दलितों सहित समाज के हाशिए पर पड़े वर्गों के बड़े समूह के बीच की खाई चौड़ी हो गई है।
3. वैश्वीकरण ने समाज के पहले से ही हाशिए पर पड़े वर्गों को और हाशिए पर धकेल दिया है क्योंकि वंचित वर्ग के पास खुली अर्थव्यवस्था में दूसरों के साथ प्रतिस्पर्धा करने का कौशल नहीं है। निजीकरण के साथ, आरक्षण के शुरुआती लाभ भी लुप्त होने लगे हैं। आज सरकार प्रमुख रोज़गार प्रदाता नहीं है।
4. सेवाओं के बढ़ते व्यावसायीकरण के कारण दलितों, अनुसूचित जातियों और समाज के अन्य वंचित वर्गों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और लागत-कुशल स्वास्थ्य सेवा तक पहुंचने में भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।
5. दलितों की एक बड़ी आबादी ग्रामीण इलाकों में रहती है। कृषि के मशीनीकरण ने दलितों और अनुसूचित जातियों की समस्याओं को और बढ़ा दिया है क्योंकि दलितों की एक बड़ी आबादी अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है। काम के अवसरों में कमी के कारण गांवों से शहरों की ओर पलायन बढ़ा है और झुग्गी-झोपड़ियों का विस्तार हुआ है।

श्रमिक वर्ग

किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास के लिए मानव पूँजी महत्वपूर्ण है। वैश्वीकरण के कारण:

सकारात्मक प्रभाव

1. वैश्वीकरण ने देशों के बीच की बाधाओं को कम किया है जिससे काम की तलाश में दूसरे देशों में प्रवासन में मदद मिली है। उदाहरण के लिए, केरल के लोग खाड़ी देशों में जाकर मज़दूरी करके काम कर रहे हैं जिससे उन्हें बेहतर आर्थिक अवसर मिले हैं।
2. इससे बेहतर कार्य संस्कृति के प्रसार और बाल श्रम के विनियमन जैसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत श्रम मानकों को साझा करने में मदद मिली है।
3. अधिक वित्त और बेहतर प्रौद्योगिकी के साथ, विशेष रूप से विकासशील देशों में श्रम की क्षमता में वृद्धि होती है, जिससे काम और उत्पादन के नए अवसर पैदा होते हैं।

नकारात्मक प्रभाव

1. वैश्वीकरण के कारण तकनीकी प्रगति हुई है, जिसके कारण श्रम की आवश्यकता कम हो गई है, जिससे विशेष रूप से रसायन, विनिर्माण, सीमेंट उद्योगों में बेरोजगारी बढ़ी है।
2. इससे मजदूरी पर दबाव बढ़ा है, नौकरी की असुरक्षा बढ़ी है और श्रम का समग्र अनौपचारिकीकरण हुआ है। इससे ठेका मजदूरों की संख्या बढ़ी है और इस तरह अप्रत्यक्ष रूप से श्रमिक आंदोलन भी प्रभावित हुआ है।
3. प्रौद्योगिकी में तीव्र प्रगति के कारण 'काम' की पारंपरिक प्रकृति लुप्त हो सकती है, जबकि इसके साथ ही अत्यधिक विशिष्ट व्यवसायों के पक्ष में नए और अभिनव व्यवसायों का सृजन भी हो सकता है।
4. नये रोजगार के अवसरों की कमी, तथा वास्तविक मजदूरी दरों में गिरावट, अधिकांश विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में वैश्वीकरण के परिणाम हैं, जो नई प्रौद्योगिकियों को अपनाने में असमर्थ रहे।
5. कार्य स्थितियों में गिरावट: खान अधिनियम 1952 में एक व्यक्ति से एक सप्ताह में अधिकतम कितने घंटे काम करवाया जा सकता है, अतिरिक्त काम के लिए ओवरटाइम भुगतान की आवश्यकता और सुरक्षा नियम निर्धारित हैं। बड़ी कंपनियों में इन नियमों का पालन किया जा सकता है, लेकिन छोटी खदानों और खदानों में नहीं। इसके

अलावा, उप-ठेका प्रथा व्यापक है। कई ठेकेदार श्रमिकों का उचित रजिस्टर नहीं रखते हैं, जिससे दुर्घटनाओं और लाभों की किसी भी ज़िम्मेदारी से बचा जा सकता है।

6. प्रवासी मज़दूरों का शोषण: कई उद्योगों में मज़दूर प्रवासी ही होते हैं। समुद्र तट पर स्थित मछली प्रसंस्करण संयंत्रों में ज़्यादातर तमिलनाडु, कर्नाटक और केरल की अविवाहित युवतियाँ काम करती हैं। उनमें से दस-बारह को छोटे-छोटे कमरों में रखा जाता है, और कभी-कभी एक शिफ्ट के लिए दूसरी शिफ्ट की जगह लेनी पड़ती है। युवतियों को आज्ञाकारी मज़दूर माना जाता है।
7. ट्रेड यूनियनवाद का अभाव: उद्योगों में औपचारिक रोजगार के अवसरों में गिरावट के कारण ट्रेड यूनियनों की सौदेबाजी शक्ति का अभाव।

विपरीतलिंगी

- वैश्वीकरण का जीवन के सभी पहलुओं पर प्रभाव पड़ रहा है, जिसमें कामुकता और ट्रांसजेंडर के निर्माण, कल्पना और नियमन भी शामिल हैं। अन्य क्षेत्रों की तरह, कामुकता के मुद्दों में भी वैश्वीकरण ने असमानताओं को बढ़ाया है। ट्रांसजेंडरों पर वैश्वीकरण के कुछ प्रभाव इस प्रकार हैं:

सकारात्मक प्रभाव

1. वैश्वीकरण ने भारत के बाहर से विचारों के प्रसारण के माध्यम से उन्हें आवाज़ देने में मदद की है। बाहर बढ़ती मान्यता ने भारत में उनके सामाजिक आंदोलनों को प्रभावित किया है। यह नालसा के उस फैसले से स्पष्ट है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने ट्रांसजेंडरों के अधिकारों को मान्यता दी है।
2. इससे अतीत में प्रचलित लिंग की द्विआधारी प्रणाली से दूर जाने में भी मदद मिली है। इससे ट्रांसजेंडरों को मुख्यधारा में लाने में मदद मिलेगी। उदाहरण के लिए, मानबी बंदोपाध्याय पहली ट्रांसजेंडर कॉलेज प्रिंसिपल हैं।

नकारात्मक प्रभाव

1. वैश्विक दुनिया में, मूल उद्देश्य पूंजीवाद से जुड़ा हुआ माना जाता है जो कुशल व्यवसाय के माध्यम से लाभ की तलाश करता है। कौशल की कमी ने अब तक ट्रांसजेंडरों को कोई विशिष्ट आर्थिक अवसर प्रदान नहीं किया है।

शरणार्थियों

- कोई भी समाज स्थिर नहीं होता, और हर महाद्वीप का इतिहास हर स्तर पर महत्वपूर्ण प्रवासी आंदोलनों से चिह्नित रहा है। अंतर्राष्ट्रीय प्रवास हमेशा से आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों में बदलाव के जवाब में व्यक्तियों के 'संरचित' आंदोलनों का परिणाम रहा है। कई देश अपनी आर्थिक संभावनाओं को बेहतर बनाने और/या उत्पीड़न से बचने के इच्छुक लोगों के प्रवेश पर प्रतिबंध लगा रहे हैं। यूरोप और उत्तरी अमेरिका में शरणार्थियों की संख्या के बावजूद, अफ्रीकी और एशियाई देश शरणार्थियों का सबसे बड़ा बोझ वहन करते हैं। शरणार्थियों के कारण समाज पर पड़ने वाले कुछ प्रभाव इस प्रकार हैं:

सकारात्मक प्रभाव

1. इसने शरणार्थियों को मान्यता देने और शरणार्थी सम्मेलन 1951 के माध्यम से इन मुद्दों को समझने में मदद की है।
2. अंतर्राष्ट्रीय प्रवास के कारण होने वाले सांस्कृतिक परिवर्तन सांस्कृतिक अंतर्मिश्रण को जन्म देते हैं, क्योंकि विभिन्न संस्कृतियां आपस में परस्पर क्रिया करती हैं और संस्कृतियों का मिश्रण विकसित करती हैं।
3. इससे मानवीय मूल्यों की बेहतर समझ विकसित होती है क्योंकि लोग उन परिस्थितियों को पहचानते हैं जिनके कारण शरणार्थियों को पलायन करना पड़ा। विदेशी सहायता में वृद्धि और सीरिया/लीबिया में विदेशी हस्तक्षेप की निंदा।
4. इससे बेहतर आर्थिक अवसर पैदा हुए हैं और इस तरह उनके जीवन स्तर में सुधार हुआ है। उदाहरण के लिए, जर्मनी ने कई शरणार्थियों को स्वीकार किया है।

नकारात्मक प्रभाव

1. इससे गंतव्य देश में सामाजिक-आर्थिक समस्याएँ पैदा हुई हैं और इस तरह उन्हें स्थानीय आबादी के गुस्से का सामना करना पड़ रहा है। उदाहरण के लिए, असम और बांग्लादेश में रोहिंग्या शरणार्थी
2. इस्लामोफोबिया बढ़ रहा है क्योंकि अधिकांश प्रवासी मुस्लिम हैं।

युवा

- अर्थव्यवस्था के विकास में युवाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वैश्वीकरण आर्थिक अवसर और लाभ प्रदान करता है, लेकिन इसके साथ भारी सामाजिक लागत भी आती है, जिसका अक्सर युवाओं पर असमान रूप से प्रभाव पड़ता है। वैश्वीकरण से युवाओं को सबसे अधिक लाभान्वित वर्ग माना जाता है क्योंकि इसने रोज़गार के नए अवसर, शिक्षा, बेहतर जीवनशैली और वेतन के अवसर प्रदान किए हैं।

सकारात्मक प्रभाव

1. वैश्वीकरण ने युवाओं को इंटरनेट, प्रिंट और सोशल मीडिया तथा रेडियो सहित अनेक ज्ञान स्रोतों तक पहुंच प्रदान की है, जिससे उनमें आत्मविश्वास पैदा हुआ है, जैसे यूट्यूब पर ऑनलाइन वीडियो।
2. अधिक ज्ञान और उच्च आत्मविश्वास युवाओं को स्वतंत्र, तर्कसंगत और निष्पक्ष निर्णय लेने में सक्षम बनाता है।
3. वैश्वीकरण के कारण राष्ट्रीय नीतियों और कानूनों का निर्माण हुआ है जो युवा विकास को बढ़ावा देते हैं और युवाओं को शोषण और मानवाधिकारों के हनन से बचाते हैं, जिनमें श्रम कानून, विवाह की न्यूनतम आयु से संबंधित कानून, उत्तराधिकार कानून और मानव तस्करी रोकने वाले कानून शामिल हैं। राष्ट्रीय युवा नीति युवाओं के एक संसाधन के रूप में समग्र उपयोग की बात करती है।
4. वैश्वीकरण ने युवाओं को श्रम बाजार में सफल भागीदार बनने के लिए एक मंच प्रदान करने हेतु शिक्षा, प्रशिक्षण और आवश्यक कौशल प्रदान करने के महत्व को उजागर किया है। उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय कौशल विकास मिशन का लक्ष्य 2022 तक भारत में 40 करोड़ से अधिक लोगों को विभिन्न कौशलों में कुशल बनाना है।
5. सोशल मीडिया और इंटरनेट के माध्यम से अपने सामाजिक-राजनीतिक अधिकारों के बारे में बढ़ती जागरूकता के साथ, युवा अपने अधिकारों के प्रति अधिक मुखर हो रहे हैं। परिणामस्वरूप, सरकार परामर्श, सर्वेक्षण आदि के माध्यम से निर्णय लेने की प्रक्रिया में लोगों को शामिल करके नीति निर्माण में उनकी अधिक भागीदारी सुनिश्चित कर रही है। 2014 में, 14 सांसद 25-40 वर्ष की आयु के थे।

नकारात्मक प्रभाव

1. व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर कम सामाजिक संपर्क के कारण युवाओं की बदलती मूल्य प्रणाली चिंता का विषय है, क्योंकि वे भारतीय संस्कृति के महान मूल्यों जैसे बुजुर्गों का सम्मान करना, वृद्ध माता-पिता की देखभाल करना आदि से दूर हो रहे हैं।
2. शारीरिक गतिविधियों की कमी के कारण युवा एक गतिहीन जीवनशैली अपना रहे हैं, जिससे अवसाद, मोटापा और उच्च रक्तचाप जैसी स्वास्थ्य संबंधी बीमारियाँ हो रही हैं। धूम्रपान, शराब और नशीली दवाओं के सेवन जैसी अस्वास्थ्यकर आदतों से यह समस्या और भी बढ़ जाती है।
3. अपने परिवार के सदस्यों के साथ मज़बूत भावनात्मक जुड़ाव के अभाव में, युवा धन और संपत्ति को ज़्यादा प्राथमिकता देते हैं, जिससे अवसाद और चिंता जैसी अनगिनत समस्याएँ पैदा होती हैं। इससे, खासकर शिक्षित और बेरोज़गार युवाओं में आत्महत्या की प्रवृत्ति बढ़ रही है।

मध्य वर्ग

- वैश्वीकरण दुनिया भर की अर्थव्यवस्थाओं और लोगों को एकीकृत करता है और किसी भी अर्थव्यवस्था के बेहतर प्रदर्शन के लिए मध्यम वर्ग की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। परिणामस्वरूप, सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों का मध्यम वर्ग पर गहरा प्रभाव पड़ता है। वैश्वीकरण के कुछ प्रभाव इस प्रकार हैं:

सकारात्मक प्रभाव

1. वैश्वीकरण ने बहुत से लोगों, खासकर उच्च मध्यम वर्ग के लिए, बड़े अवसर पैदा किए हैं। प्रमुख संस्थानों के छात्र अभूतपूर्व वेतन पैकेज पर निकल रहे हैं। आईआईएम से पास हुए छात्रों को छह अंकों में वेतन मिलता है।
2. वैश्विक ब्रांडों के आगमन ने मध्यम वर्ग को अपने दैनिक घरेलू सामानों के लिए प्रतिस्पर्धा बढ़ाकर और कीमतें कम करके ढेरों विकल्प उपलब्ध कराए हैं। उदाहरण के लिए, सौंदर्य साबुन के मामले में, भारतीय ब्रांड सिंथॉल, डव और लक्स जैसे विदेशी ब्रांडों से प्रतिस्पर्धा कर रहा है, जिससे कीमतों में कमी आई है।
3. वैश्वीकरण ने मध्यम वर्ग की महिलाओं को शिक्षा और रोज़गार के अवसर प्रदान किए हैं जिससे समाज का उनके प्रति नज़रिया बदल गया है। इसने मध्यम वर्ग की महिलाओं को न केवल आर्थिक रूप से, बल्कि सामाजिक रूप से भी अपने जीवन स्तर को बेहतर बनाने में मदद की है। उदाहरण के लिए, चंदा कोचर आईसीआईसीआई बैंक की सीईओ हैं।
4. बाज़ारों के खुलने और बहुराष्ट्रीय कंपनियों की बढ़ती उपस्थिति के कारण भारतीय मध्यम वर्ग को बेहतर अवसर मिल रहे हैं। साथ ही, कई देशों में नौकरियों की उपलब्धता ने प्रवासी भारतीयों की संख्या में भी वृद्धि की है।

नकारात्मक प्रभाव

1. इससे एकल परिवारों की संख्या बढ़ी है तथा पश्चिमीकरण के कारण सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास हुआ है।
2. हाल के दिनों में मध्यम वर्ग के बीच कृषि संकट बढ़ा है। इससे उनके आर्थिक अवसरों की कमी के कारण आरक्षण से जुड़े मुद्दे भी उठे हैं। कृषि संकट के बाद जाटों और पाटीदारों द्वारा हाल ही में किए गए विरोध प्रदर्शनों में यह बात स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।
3. असमान लाभ और स्वास्थ्य, शिक्षा और अन्य बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति के बढ़ते बोझ के कारण उच्च और निम्न मध्यम वर्ग का उदय।
4. वैश्वीकरण के कारण बांग्लादेश और चीन जैसे देशों में उत्पादित सस्ते माल के आयात के कारण कई मध्यम वर्ग के व्यापारियों की आजीविका छिन गई है।
5. तकनीकी प्रगति के कारण बढ़ते स्वचालन के कारण श्रम की कमी हो रही है। आज कई लिपिकीय नौकरियाँ कंप्यूटर द्वारा ली जा रही हैं।
6. वैश्वीकरण ने कौशल और योग्यता को सामाजिक मूल्यांकन का आधार माना है, जो मध्यम वर्ग को बढ़ते अवसरों के साथ विकास के लाभों तक पहुंच प्रदान करता है।

उद्यमियों

- हाई-स्पीड इंटरनेट, टीमवर्क को बढ़ावा देने वाले प्लेटफॉर्म्स की संस्कृति और एक साझा भाषा के साथ, दुनिया भर के लोग एक साथ काम कर रहे हैं और भारतीय स्टार्टअप्स के पास अब अपने विदेशी समकक्षों के साथ सहयोग करने और प्रक्रियाओं से समझौता किए बिना नए बाज़ार तलाशने का अवसर है। इस प्रकार एक रचनात्मक अल्पसंख्यक वर्ग का विकास हुआ है, जो चुनौतियों और जोखिमों के लिए तैयार है। यह नया वर्ग है जिसे उद्यमी कहा जाता है। उद्यमियों पर वैश्वीकरण के कुछ प्रभाव इस प्रकार हैं:

सकारात्मक प्रभाव

1. वैश्वीकरण नवाचार पारिस्थितिकी तंत्र के उदय को बढ़ावा देकर प्रौद्योगिकी उद्यमिता को सुगम बनाता है। इसमें नए उद्यमों और बड़े बहुराष्ट्रीय उद्यमों के बीच जुड़ाव शामिल हो सकता है। उदाहरण के लिए, सॉफ्ट बैंक फाइनेंसिंग, ओला, ग्रोफर्स आदि।
2. वैश्वीकरण अंतरराष्ट्रीय उद्यमिता को सुगम बनाता है। विभिन्न देशों में प्रवासियों का एक समूह, निगमों में सीखी गई बातों का उपयोग उसी या मिलते-जुलते क्षेत्रों में अपना खुद का व्यवसाय स्थापित करने के लिए करता है। अरबपति आईआईटीयन प्रेम वत्स को कनाडा का वॉरेन बफेट कहा जाता है।

3. वैश्वीकरण सामाजिक उद्यमिता को बढ़ावा देता है। इसमें धन सृजन के साथ-साथ पर्यावरणीय क्षरण, गरीबी और खराब स्वास्थ्य जैसी सामाजिक समस्याओं का समाधान भी शामिल है। उदाहरण के लिए, SELCO के संस्थापक हरीश फ्लैंडे ने एक सहयोग संस्था की स्थापना की है जो ग्रामीण भारत में नवीकरणीय संसाधनों को बढ़ावा देती है।
4. भारत में उद्यमशीलता के महत्व को समझते हुए सरकार उद्यमशीलता को प्रोत्साहित करने के लिए स्टार्टअप इंडिया, स्टैंड-अप इंडिया और अटल नवाचार मिशन जैसे कदम उठा रही है।

नकारात्मक प्रभाव

1. एक उद्यमी को व्यवसाय प्रबंधन से जुड़ी कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है, खासकर वैश्वीकरण के इस युग में उद्यम शुरू करते समय। उदाहरण के लिए, टास्कबॉब, शॉपो और स्टेज़िला जैसी स्टार्टअप कंपनियाँ अपनी कंपनी बंद कर देती हैं।
2. उद्यमियों को प्रभावी विपणन योजना बनाने में समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिसके कारण वे उत्पाद या सेवाएं बेचने में असमर्थ होते हैं।
3. उद्यमिता को समाज के अभिजात वर्ग तक ही सीमित माना जाता है, जिससे महिलाओं और हाशिए पर पड़े वर्गों सहित आबादी का एक बड़ा हिस्सा इससे वंचित रह जाता है। 2017 में, केवल 17% स्टार्टअप की संस्थापक महिलाएँ थीं।
4. कई उद्यमी कड़ी प्रतिस्पर्धा की दुनिया में खुद को बनाए रखने में असफल रहते हैं।

बिजनेस क्लास

- आर्थिक वृद्धि और विकास सुनिश्चित करने के लिए मानव, भौतिक और वित्तीय पूँजी का उपयोग करके आय अर्जित करने हेतु किसी न किसी प्रकार के व्यवसाय में लगे लोगों को व्यवसायी वर्ग कहा जाता है। वैश्वीकरण के व्यवसायी वर्ग पर पड़ने वाले कुछ प्रभाव इस प्रकार हैं:

सकारात्मक प्रभाव

1. इसने स्टार्टअप्स और व्यावसायिक घरानों के लिए पसंदीदा व्यवसायों में निवेश के अवसर प्रदान किए हैं। उदाहरण के लिए, टाटा कैपिटल इनोवेशन फंड।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था के खुलने से भारतीय व्यापारियों को अधिक धन और समृद्धि मिली है। उदाहरण के लिए, टाटा मोटर्स द्वारा जगुआर का अधिग्रहण।

नकारात्मक प्रभाव

1. धन के विशाल संकेन्द्रण के कारण, व्यापारी वर्ग के लोगों में भी भारी विभाजन है, जिससे असमानता बढ़ रही है।

नागरिक समाज

- वैश्विक नागरिकों के साझा लक्ष्यों और आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए सार्वजनिक नीतियों के निर्माण में नागरिक समाज की महत्वपूर्ण भूमिका है। वैश्वीकृत दुनिया में अर्थव्यवस्था के कामकाज को आधार देने वाले तंत्रों, प्रक्रियाओं और नीतियों को पुनर्निर्देशित करने हेतु एक प्रभावी गठबंधन बनाने में इसने महत्वपूर्ण और प्रेरक भूमिका निभाई है। नागरिक समाज पर वैश्वीकरण के कुछ प्रभाव इस प्रकार हैं:

सकारात्मक प्रभाव

1. वैश्वीकरण के आगमन के साथ, नागरिक समाज अधिक संगठित, औपचारिक और संरचित हो गए। इसके अलावा, उन्हें विशिष्ट उद्देश्यों के लिए अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से धन भी मिलने लगा। उदाहरण के लिए, ऑक्सफैम ट्रस्ट, अमेरिकन इंडिया फाउंडेशन आदि।
2. धन के बढ़ते आवंटन के साथ, कई अंतर्राष्ट्रीय नागरिक समाज संगठनों ने भारत में अपनी शाखाएं खोलीं, जिससे भारत को विभिन्न विकासात्मक क्षेत्रों को कवर करने में मदद मिली, जिन्हें पहले छुआ नहीं गया था।

3. नागरिक समाज उन्नत संचार माध्यमों के माध्यम से परस्पर संवादात्मक निर्णय लेने के एक मंच के रूप में कार्य करने लगे हैं। जिस समयबद्धता के साथ नागरिक समाज आने वाले मुद्दों का पूर्वानुमान लगाने और उन पर प्रतिक्रिया देने में सक्षम रहे हैं, उससे अर्थव्यवस्थाओं और समाजों में टकराव को कम करने में मदद मिली है।
4. अधिक न्यायसंगत रिटर्न और विकासशील देशों का वैश्विक प्रणाली में बेहतर एकीकरण।
5. नागरिक समाज संगठन अपने बोर्ड में विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधियों को शामिल करते हैं, जिससे विचारों में विविधता आती है।

नकारात्मक प्रभाव

1. हालाँकि नागरिक समाज संगठनों को सामाजिक समस्याओं के विरुद्ध आवाज़ उठाने का अधिकार है, फिर भी कई बार इनका दुरुपयोग होता है जिससे समाज के विभिन्न वर्गों के बीच क्रोध, हिंसा और वर्ग संघर्ष को बढ़ावा मिलता है। आईबी की हालिया रिपोर्ट में भारत के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) को 2-3% तक का नुकसान होने की बात कही गई है।
2. जैसे-जैसे नागरिक समाज संगठन औपचारिक होते जा रहे हैं, इन संगठनों पर भी भ्रष्टाचार और अलोकतांत्रिक रवैये के आरोप लग रहे हैं। भारत में केवल 10% एनजीओ ही आयकर रिटर्न दाखिल करते हैं।

नागरिक समाज को लोकतंत्र, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए, उसे अपने मध्यवर्गीय दृष्टिकोण से आगे बढ़कर, स्वयं को राजनीतिक सक्रियता के अधिक समावेशी और अधिकार आधारित क्षेत्र में परिवर्तित करना होगा।

किसानों

- किसान किसी भी सभ्यता की रीढ़ होते हैं क्योंकि हर कोई किसी न किसी रूप में खेती से जुड़ा होता है। वे भोजन प्रदान करते हैं और इस प्रकार समाज के स्वास्थ्य को सीधे प्रभावित करते हैं। वैश्वीकरण के साथ, कृषि पद्धतियों में भी काफी बदलाव आया है। इसके कुछ प्रभाव इस प्रकार हैं:

सकारात्मक प्रभाव

1. कृषि उत्पादों की गिरती कीमतों, कृषि में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के खिलाफ कुछ ज्वलंत मुद्दों के खिलाफ किसानों को गैर सरकारी संगठनों से सक्षम समर्थन मिला है।
2. खेती ने व्यापार के अवसरों में वृद्धि के माध्यम से समृद्धि प्रदान की है, जिससे उनकी आजीविका में सुधार हुआ है।
3. वैश्वीकरण ने किसानों को बेहतर गुणवत्ता वाले बीज उपलब्ध कराए हैं जिससे उन्हें अपनी उपज बढ़ाने में मदद मिली है।
4. उन्नत प्रौद्योगिकियों के साथ, किसानों को मौसम पूर्वानुमान प्रणाली तक बेहतर पहुंच प्राप्त होती है, जिससे फसल खराब होने की संभावना कम हो जाती है।

नकारात्मक प्रभाव

1. आधुनिक युग में मजबूत पेटेंट संरक्षण, संरक्षित किस्मों जैसे टर्मिनेटर बीजों के अगले सीजन में उपयोग को सीमित कर देता है, जिससे कृषि उत्पादन की लागत बढ़ जाती है।
2. तकनीकी प्रगति के कारण स्वचालन में वृद्धि के कारण छिपे हुए रोजगार पैदा हुए हैं तथा हाशिए पर पड़े किसानों की संख्या में भी वृद्धि हुई है, जिसका प्रभाव विशेष रूप से ग्रामीण महिलाओं पर पड़ा है।
3. किसानों के बच्चे नए रोजगार के अवसरों की तलाश में कृषि से बाहर जा रहे हैं, क्योंकि उन्हें कृषि व्यवसाय पर्याप्त लाभदायक नहीं लगता।
4. वैश्वीकरण के साथ, वैश्विक बाजार में बड़े फार्म छोटे फार्मों का स्थान ले रहे हैं, क्योंकि बड़े फार्म विशाल बहुराष्ट्रीय निगमों के नियंत्रण में हैं।

5. यह धारणा बढ़ती जा रही है कि वैश्वीकरण से केवल अमीर किसानों को ही लाभ हुआ है, क्योंकि उन्हें कृषि आधारित उद्योगों में नए निवेश के अवसर मिले हैं।
6. वैश्वीकरण के इस चरण में बढ़ते निजीकरण के कारण बीजों और कीटनाशकों की लागत में वृद्धि हुई है, जिसके कारण किसानों की आत्महत्या में वृद्धि हुई है, जो वैश्वीकरण के बाद की घटना है।
7. निजी उद्योग के लिए राज्य द्वारा सस्ते दामों पर भूमि अधिग्रहण, उदाहरण के लिए सिंगूर में टाटा नैनो के लिए।

संस्कृति का वैश्वीकरण

- वैश्वीकरण जीवन के हर क्षेत्र में व्यापक भूमिका निभा रहा है। सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में बदलाव और तकनीकी उन्नति के कारण विचारों और अवधारणाओं के मुक्त आदान-प्रदान ने लोगों के जीवन जीने के तरीके में एक बड़ा बदलाव लाया है। भारत में प्रचलित परंपराओं और रीति-रिवाजों की जगह अब एक नई जीवनशैली ने ले ली है जहाँ विभिन्न जाति, धर्म और क्षेत्र के लोग एक-दूसरे से मिलते-जुलते हैं और अपनी खुशियाँ और समस्याएँ साझा करते हैं। वैश्विक नेटवर्क और समुदायों के निर्माण के माध्यम से सामाजिक संबंधों का वैश्विक स्तर पर विस्तार होने के साथ, दुनिया एक वैश्विक गाँव बन गई है। इसके अलावा, वैश्वीकरण के इस युग में सोशल मीडिया, दूरसंचार और इंटरनेट जैसे विभिन्न माध्यम लोगों को जोड़ने और संस्कृति के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। आजकल हम जो कुछ भी करते हैं, जैसे कि हम जो खाना खाते हैं, जो कपड़े पहनते हैं, जिन धुनों पर हम नाचते हैं, जिस भाषा का हम संवाद करने के लिए उपयोग करते हैं, वह सब वैश्वीकरण से प्रभावित है।

एकरूपता

- राष्ट्रीय सीमाओं से परे व्यक्तिगत, सामाजिक और प्रशासनिक स्तर पर लोगों के बीच बढ़ते संपर्क ने दुनिया को एक अन्योन्याश्रित वैश्विक गाँव में बदल दिया है। कई संस्कृतियों के आपस में घुलने-मिलने से, विभिन्न संस्कृतियाँ अपने अलग-अलग पहलुओं को लेकर आती हैं और विभिन्न संस्कृतियों से मिलकर एक नई संस्कृति का निर्माण करती हैं। संचार का यह बढ़ता विकास सांस्कृतिक समरूपता को जन्म देता है। सांस्कृतिक समरूपता स्वाभाविक रूप से तब होती है जब समाज आपकी पहचान के पहलुओं पर ज़ोर देता है या कम ज़ोर देता है। इसे विभिन्न स्तरों पर देखा जा सकता है। आधुनिकीकरण, लोकतंत्र, अंग्रेजी भाषा का प्रचार, खान-पान की आदतें और उपभोक्तावाद जैसे वैश्वीकरण के कुछ मूल्यों ने एकरूपता को जन्म दिया है और अमेरिकी संस्कृति को लागू किया है। आर्थिक मोर्चे पर, कॉर्पोरेट संस्कृति ने अपनी पैठ बना ली है और भारत की कार्य संस्कृति को भी प्रभावित किया है।
- **भाषा:** आज की आधुनिक दुनिया में वैश्वीकरण तेज़ी से बढ़ रहा है। वैश्वीकरण की इस वृद्धि का भाषा पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह से प्रभाव पड़ता है, जो आगे चलकर संस्कृति को भी कई तरह से प्रभावित करता है। हालाँकि, वैश्वीकरण ने भाषाओं और संस्कृतियों को विभिन्न कोनों में तेज़ी से फैलने का अवसर दिया है, लेकिन इसने कई स्थानीय भाषाओं और संस्कृतियों को विलुप्त होने के कगार पर ला दिया है।
  शब्दावली, अभिवादन या हास्य के माध्यम से भाषाएँ संस्कृतियों के बीच संचार का एक अनिवार्य माध्यम हैं। विभिन्न भाषाओं का ज्ञान हमें नए क्षितिजों को देखने, वैश्विक रूप से सोचने और स्वयं तथा अपने पड़ोसियों के बारे में अपनी समझ बढ़ाने में सक्षम बनाता है। हालाँकि अब लोग एक से अधिक भाषाएँ बोलने के आदी हो गए हैं, फिर भी वैश्विक भाषा के रूप में अंग्रेजी का प्रयोग तेज़ी से बढ़ा है। अंग्रेजी अन्य भाषाओं से इस मायने में अलग है कि इसमें गैर-देशी वक्ताओं की संख्या बहुत अधिक है।
- हालाँकि, कुछ भाषाओं पर ज़्यादा ज़ोर देने से दूसरी भाषाएँ अपनी प्रासंगिकता खो रही हैं, जिनमें से कुछ विलुप्त होने के कगार पर हैं। इसके अलावा, पारंपरिक भाषाओं के विलुप्त होने के साथ, मूल निवासियों का पारंपरिक ज्ञान और उनसे जुड़ी संस्कृतियाँ भी विलुप्त हो रही हैं।
- **भोजन:** भोजन का वैश्वीकरण सदियों पहले शुरू हुआ था। कई संस्कृतियों में ऐसे खाद्य पदार्थ शामिल हैं जिनकी उत्पत्ति हज़ारों मील दूर हुई थी। उदाहरण के लिए, आलू दक्षिण अमेरिका से और लाल मिर्च मेक्सिको से। वैश्वीकरण ने दुनिया भर की खाद्य प्रणालियों में महत्वपूर्ण बदलाव लाए हैं। इसने समग्र रूप से भोजन की विविधता और

उपलब्धता में वृद्धि की है। हालाँकि, बड़ी संख्या में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रवेश के साथ, छोटे खाद्य उत्पादकों और पारंपरिक खाद्य बाजारों के लिए प्रतिस्पर्धी मूल्य पर बेहतर मानकों, गुणवत्ता और सुरक्षा के साथ जीवित रहना मुश्किल हो रहा है। पिज्जा, बर्गर, चीनी भोजन और अन्य पश्चिमी खाद्य पदार्थ काफी लोकप्रिय हो गए हैं, जिसका लोगों, खासकर युवाओं की जीवनशैली पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

- हालाँकि, वैश्वीकरण ने न केवल भारत में पश्चिमी और आधुनिक विचारों को थोपा है, बल्कि ग्लोकलाइज़ेशन (अर्थात् वैश्विक और स्थानीय का मिश्रण) को भी बढ़ावा दिया है। खाने-पीने की चीज़ों की बात करें तो मैकडॉनल्ड भी भारत में केवल शाकाहारी और चिकन उत्पाद ही बेचता है, अपने बीफ़ उत्पाद नहीं। इसके अलावा, यह नवरात्रि के दौरान शाकाहारी भोजन भी उपलब्ध कराता है।
- **पहनावा:** सदियों से, कपड़ों की शैलियाँ अंतर-सांस्कृतिक आदान-प्रदान के सबसे स्पष्ट संकेतकों में से एक रही हैं। पिछले कुछ दशकों में, विभिन्न संस्कृतियों में फैशन का प्रसार वैश्वीकरण के कारण संस्कृति और अर्थव्यवस्था में आए बदलावों को प्रतिध्वनित करता है। पश्चिमी परिधानों की सुविधा और आराम ने लोगों, खासकर युवा पीढ़ी को, पारंपरिक परिधानों से हटकर टी-शर्ट, जींस और शॉर्ट्स जैसे पश्चिमी और आधुनिक परिधानों की ओर आकर्षित किया है। खादी जैसे पारंपरिक परिधानों की मांग में कमी के कारण, पारंपरिक हथकरघा उद्योग बाजार में अपना अस्तित्व बचाने के लिए संघर्ष कर रहा है।
- **लोकप्रिय संस्कृति:** भारत अपने विविध नृत्य और संगीत रूपों के लिए प्रसिद्ध है। वैश्वीकरण के साथ, भारतीय शास्त्रीय संगीत ने दुनिया भर का ध्यान आकर्षित किया है जिससे इस उद्योग के पुनरुद्धार में मदद मिली है। इसके अलावा, विदेशी भरतनाट्यम, कथकली और कुचिपुड़ी जैसी भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैलियाँ सीख रहे हैं। साथ ही, भारतीय विदेशी नृत्य शैलियों जैसे साल्सा, हिप हॉप और अन्य पश्चिमी नृत्य शैलियों की ओर आकर्षित हो रहे हैं। हालाँकि, लोक और आदिवासी संगीत विलुप्त हो रहे हैं क्योंकि वैश्विक पॉप संगीत के प्रवेश ने उन्हें हाशिए पर डाल दिया है। संगीत के क्षेत्र में, भांगड़ा पॉप, भारतीय पॉप फ्यूजन संगीत और यहाँ तक कि रीमिक्स का भी तेजी से विकास हो रहा है। अंग्रेजी फिल्मों की बाज़ार क्षमता बढ़ाने के लिए उन्हें हिंदी में डब किया जा रहा है जिससे बड़ी संख्या में दर्शकों तक उनकी पहुँच बढ़ रही है।
- वैश्वीकरण ने स्थानीय संस्कृतियों को समझने और उन्हें संरक्षित करने की दिशा में एक प्रेरणा पैदा की है ताकि भारतीय संस्कृति को विश्व स्तर पर फैलाया जा सके। इसके अलावा, वैश्विक पर्यटन ने सांस्कृतिक पुनरुत्थान के साथ-साथ पर्यटकों की माँग के अनुरूप एकरूपता को भी बढ़ावा दिया है। योग, आयुर्वेद, ध्यान और अध्यात्म जैसी भारत की आध्यात्मिक और सांस्कृतिक शक्तियों ने वैश्विक ध्यान और प्रशंसा प्राप्त की है।
- वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप भारतीय समाज और संस्कृति की विशेषताओं में उल्लेखनीय परिवर्तन आया है। एकल परिवार एक आदर्श बनते जा रहे हैं, युवा तेज़ी से पश्चिमी जीवनशैली अपना रहे हैं और लोग अपनी सोच में उपभोक्तावादी होते जा रहे हैं। बुजुर्गों के बीच मूल्यों का टकराव हो रहा है जिससे पीढ़ीगत अंतराल बढ़ रहा है और आधुनिक जीवनशैली के कारण विवाह टूट रहे हैं। इसके अलावा, पश्चिमी संस्कृति पर भारत को सांस्कृतिक पतन की ओर ले जाने का आरोप लगाया जाता रहा है।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का पीछे हटना

- सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से तात्पर्य उस राष्ट्रवाद से है जिसके बारे में माना जाता है कि वह किसी राजनीतिक या सामाजिक अनुबंध के कारण नहीं, बल्कि साझा अतीत और सांस्कृतिक समानताओं के कारण अस्तित्व में था। वैश्वीकरण ने समाजों को बहुसांस्कृतिक बनाने में मदद की है। वैश्वीकरण ने न केवल पसंद की स्वतंत्रता, व्यक्तिगत पसंद, तर्कसंगतता और मतभेदों के प्रति सहिष्णुता को मजबूत करने में मदद की है, बल्कि एक नई पीढ़ी को लाने में भी मदद की है जो अधिक तर्कसंगत, मानवता, सहिष्णुता और अन्य प्रथाओं के प्रति सम्मान रखती है। अधिक स्व-चयनित संस्कृति का विकास हुआ है जिससे सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पीछे हट गया है। हालाँकि, वैश्वीकरण से कथित भय ने समाज के कुछ वर्गों को जातीय अंधराष्ट्रवाद की ओर मोड़ने के लिए मजबूर किया है। समय-समय

पर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के उदाहरण रहे हैं क्योंकि द्विआधारी विचारों के उदाहरण भी रहे हैं जिन्हें राष्ट्रवादी या राष्ट्र-विरोधी के रूप में बदल दिया जा सकता है जिससे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगता है।

स्वदेशी ज्ञान का व्यावसायीकरण

- स्वदेशी ज्ञान उन चिरस्थायी प्रथाओं को संदर्भित करता है जिनका विकास, विकास, संरक्षण और उपयोग स्थानीय समुदायों द्वारा सदियों से किया जाता रहा है। यह ज्ञान विविध क्षेत्रों, विशेषकर औषधियों और कृषि, में फैला हुआ है, जिसे कहानियों और अनुष्ठानों के माध्यम से मौखिक रूप से युवा पीढ़ी तक पहुँचाया जाता है। ये मूलतः बौद्धिक गतिविधियाँ हैं जो सदियों से सामुदायिक स्तर पर विकसित हुई हैं और इस प्रकार पूरे समुदाय के लिए महत्वपूर्ण हैं। इसका एक भाग प्राचीन शास्त्रीय और अन्य साहित्य में वर्णित है, जो प्राचीन धर्मग्रंथों में स्थानीय भाषाओं में संहिताबद्ध है, लेकिन उनमें से अधिकांश का दस्तावेजीकरण नहीं किया गया है।
- पारंपरिक ज्ञान का व्यावसायिक मूल्य बहुत अधिक हो सकता है, विशेष रूप से औषधीय प्रभाव या गुण जो किसी बीमारी के इलाज में कारगर हो सकते हैं। यही कारण है कि निगम और व्यक्ति ऐसे ज्ञान-आधारित आविष्कारों के लिए पेटेंट संरक्षण प्राप्त करने का प्रयास करते हैं ताकि उन पर एकाधिकार प्राप्त किया जा सके। यह उल्लेख करना उचित है कि जो चीज़ दुनिया के एक क्षेत्र में सार्वजनिक ज्ञान का हिस्सा है, वह दूसरे क्षेत्रों के लिए पूरी तरह से अज्ञात हो सकती है। अतीत में, ऐसे मामले सामने आए हैं जहाँ पेटेंट के माध्यम से ऐसे ज्ञान पर एकाधिकार किया गया। 1997 में अमेरिकी पेटेंट ट्रेडमार्क कार्यालय (यूएसपीटीओ) में हल्दी के घाव भरने वाले गुणों के लिए पेटेंट, और 2005 में यूरोपीय पेटेंट कार्यालय (ईपीओ) में नीम के कवकरोधी गुणों के लिए पेटेंट, भारत के पारंपरिक ज्ञान के ऐसे ही दो दुरुपयोग हैं।
- वैश्वीकरण ने ज्ञान का वस्तुकरण और निजीकरण किया है, जिसके परिणामस्वरूप ज्ञान अर्थव्यवस्था का उदय हुआ है। स्वदेशी ज्ञान भी इस निजीकरण से अछूता नहीं रहा है। वह ज्ञान जो सार्वजनिक क्षेत्र में था, समुदायों के स्वामित्व में था और पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होता था, उसे बौद्धिक संपदा अधिकारों (आईपीआर) के ज़रिए निजीकृत कर दिया गया है, जो व्यक्तियों को अधिकार प्रदान करते हैं, और इस प्रकार, प्रभावी रूप से पूरे समुदाय को लूटा जा रहा है।
- आयुष मंत्रालय ने वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सीएसआईआर) के सहयोग से पारंपरिक ज्ञान डिजिटल लाइब्रेरी (टीकेडीएल) की स्थापना की है। उल्लेखनीय है कि भारत दुनिया का पहला और एकमात्र देश है जिसने अपने पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण हेतु एक संस्थागत तंत्र स्थापित किया है ताकि गलत पेटेंट दिए जाने से बचा जा सके। देश के पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण को सुगम बनाने के लिए, अंतर्राष्ट्रीय समझौते के तहत टीकेडीएल को अंतर्राष्ट्रीय पेटेंट कार्यालयों (आईपीओ) तक पहुँच प्रदान की गई है। टीकेडीएल पहले ही 220 मामलों में गलत पेटेंट दिए जाने से रोकने में सफल रहा है।
- वैश्वीकरण और ज्ञान अर्थव्यवस्था ने उस संभावित मूल्य को उजागर किया है जो 'स्वदेशी ज्ञान' ने दुनिया की शक्तिशाली बहुराष्ट्रीय कंपनियों को प्रदान किया है। साथ ही, वैश्वीकरण ने स्वदेशी ज्ञान को पश्चिमी तकनीक द्वारा संसाधित किए बिना अप्रमाणित और अपरीक्षित मानकर नकार दिया है। इसका इतना व्यक्तिगत और व्यावसायिकरण भी हो गया है कि समुदायों द्वारा पवित्र माने जाने वाले प्रतीकों को नारों और लोगो के रूप में तुच्छ बना दिया गया है, जिनका उपयोग और पेटेंट कराया जाता है। टीकेडीएल के निर्माण द्वारा अपने पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण में भारत की सफलता ने पहले ही कई विकासशील देशों को प्रभावित किया है। यहाँ तक कि विश्व बौद्धिक संपदा संगठन (डब्ल्यूआईपीओ) ने भी स्वदेशी पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण में भारत के प्रयास की सराहना की है।

प्रवास

- वैश्वीकरण का तात्पर्य मुक्त व्यापार और मुक्त पूँजी गतिशीलता के माध्यम से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं के आर्थिक एकीकरण से है। इससे बेहतर रोज़गार के अवसरों की तलाश में लोगों का प्रवास होता है। लोग विभिन्न आर्थिक,

सामाजिक, राजनीतिक या पर्यावरणीय कारणों से प्रवास करते हैं। वैश्वीकरण अंतर्संबंधों, विशेषकर आर्थिक, के माध्यम से राष्ट्रीय सीमाओं को कम करता है। इसके कारण प्रवास को प्रभावित करने वाले जनसांख्यिकीय कारकों में बदलाव आया है। इस वैश्वीकृत दुनिया में आकर्षण कारकों के साथ-साथ दबाव कारक भी तीव्र हो गए हैं।

आकर्षण के कारकों में बेहतर रोज़गार के अवसर, गुणवत्तापूर्ण सेवाएँ, पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाएँ, बेहतर शिक्षा सुविधाएँ, व्यापार केंद्र, संस्थागत व्यवस्थाएँ और अवसरों की समग्र उपलब्धता शामिल हैं। विभिन्न बहुराष्ट्रीय कंपनियों और अनौपचारिक क्षेत्र में रोज़गार के अवसरों में वृद्धि हुई है। साथ ही, शहरी क्षेत्रों में शिक्षा के अवसरों में भी बदलाव और सुधार आया है।

- ग्रामीण क्षेत्रों में संसाधनों की कमी, उद्योगों के आगमन के कारण भूमि परिवर्तन और विस्थापन, बुनियादी सुविधाओं का अभाव, सुरक्षा का अभाव, फसल विफलता, बाढ़, सूखा और गरीबी के कारण ये दबाव कारक और भी तीव्र हो गए हैं। इसके अलावा, ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच जीवन स्तर में भारी असमानता के कारण भी प्रवास में वृद्धि हुई है।
- 1991 के बाद से, बाहरी प्रवास की प्रवृत्ति में बदलाव आया है क्योंकि भारतीय पहले की तुलना में पश्चिमी विकसित देशों की ओर अधिक रुख कर रहे हैं। इसके कारण इस प्रकार हैं:
- बेहतर शिक्षा के अवसर, विशेषकर उच्च शिक्षा में।
- उच्च वेतन के साथ रोजगार के अवसरों में वृद्धि और इस प्रकार जीवन स्तर में सुधार।

इस घटना के कारण प्रतिभा पलायन की स्थिति पैदा हो गई है और देश में आंतरिक बुनियादी ढांचे को बेहतर बनाने पर ध्यान केंद्रित किया गया है।

मैकडॉनल्डाइज़ेशन

- मैकडॉनल्डाइज़ेशन अमेरिकीकरण या पश्चिमीकरण का एक उपोत्पाद है जो वैश्वीकरण की एक व्यापक परिघटना का हिस्सा है। यह तब प्रकट होता है जब कोई संस्कृति फास्ट फूड रेस्टोरेंट की विशेषताओं को अपना लेती है। यह पारंपरिक से हटकर तर्कसंगत विचारों और वैज्ञानिक प्रबंधन की ओर बढ़ना है। इसके चार प्रमुख आयाम हैं दक्षता, पूर्वानुमेयता, गणनाशीलता और नियंत्रण। तेज़ गति वाली ज़िंदगी में, यह समय का लाभ प्रदान करता है और इतना महंगा भी नहीं है जिससे यह मध्यम वर्ग के लिए वहनीय हो जाता है। मैकडॉनल्डाइज़ेशन लोगों के बीच संपर्क को कम कर रहा है और परिवार के भीतर संचार बुरी तरह प्रभावित हो रहा है। पारंपरिक खाद्य पदार्थ लोकप्रियता खो रहे हैं क्योंकि प्रतिस्पर्धी बाजार में प्रासंगिक बने रहना उनके लिए मुश्किल हो रहा है। भारतीय दृष्टिकोण से मैकडॉनल्डाइज़ेशन के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:
- डोमिनोज़, पिज्जा हट्स आदि जैसे फास्ट फूड श्रृंखलाओं का प्रसार।
- पुस्तकालयों से पुस्तकें लेने के बजाय शोध और असाइनमेंट के लिए इंटरनेट का उपयोग करना।
- ऑनलाइन शॉपिंग, नकद हस्तांतरण के लिए कार्ड का उपयोग करना।

संकरण

- संस्कृति उद्योग के वैश्वीकरण और स्थानीयकरण, दोनों के साथ, संकरण सांस्कृतिक उत्पादन में एक सतत प्रवृत्ति का हिस्सा बन गया है। हालाँकि, संकरण केवल विभिन्न तत्वों का मिश्रण, सम्मिश्रण और संश्लेषण मात्र नहीं है जो अंततः एक सांस्कृतिक रूप से अरूपी समग्रता का निर्माण करता है।
- यह निरंतर संपर्क और अंतःक्रिया के माध्यम से दो या दो से अधिक संस्कृतियों के विलय से एक नई संस्कृति का विकास है। सांस्कृतिक संकरण वैश्वीकरण और स्थानीयकरण के परिणामस्वरूप संस्कृतियों के मिश्रण पर ज़ोर देता है, जिससे एक नई और अनूठी संकर संस्कृति का निर्माण होता है जिसे स्थानीय या वैश्विक संस्कृति में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। हालाँकि, संकरण केवल विभिन्न तत्वों का मिश्रण, सम्मिश्रण और संश्लेषण नहीं है। वे अक्सर नए रूप उत्पन्न करते हैं और एक-दूसरे के साथ नए संबंध बनाते हैं जिससे एक नई संकर संस्कृति का निर्माण होता है।

- संकर सांस्कृतिक पहचान का एक उदाहरण भारत का एक शिक्षित युवा हो सकता है, जो वैश्विक तेज़-तर्रार तकनीकी दुनिया में एकीकृत होने के बावजूद, पारंपरिक भारतीय मूल्यों, जैसे कि अरेंज मैरिज, वृद्धावस्था में अपने माता-पिता की देखभाल, से जुड़ा हुआ है। इस प्रकार, संकर संस्कृति में पारंपरिक मूल्यों का अन्य आयातित वैश्विक मूल्यों के साथ सम्मिश्रण शामिल होता है।

योग उत्सव

संयुक्त राष्ट्र द्वारा 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस घोषित किए जाने के बाद, योग ने सांस्कृतिक और भाषाई बाधाओं को पार करते हुए, दुनिया को भारत से जोड़ने में मदद की है। योग को दुनिया भर में मान्यता और सराहना मिली है और इसके लाभों को दुनिया भर में अच्छी तरह से स्वीकार किया गया है।

योग को लंबे समय से देश की एक सौम्य शक्ति माना जाता रहा है और वैश्वीकरण ने इसे नया जीवन देने में मदद की है। पश्चिमी जगत की इसमें भारी रुचि के कारण अब भारत में भी इसके अनुयायियों की संख्या में वृद्धि हुई है। पिछले कुछ दशकों में, विभिन्न गुरुओं के सक्रिय योगदान ने योग को लोकप्रिय बनाने में मदद की है। वे योग के माध्यम से भारतीय संस्कृति का संचार कर रहे हैं और प्राचीन भारतीय कला को लोकप्रिय बना रहे हैं।

निष्कर्ष

- वैश्वीकरण एक गतिशील विश्व का प्रतीक है जो व्यक्ति और समाज के लिए महत्वपूर्ण निहितार्थों के साथ एक नई जीवन शैली प्रदान करता है। यद्यपि इसने भारतीय अर्थव्यवस्था को बहुत लाभ पहुँचाया है, लेकिन इसने अमीर और गरीब के बीच की खाई को भी चौड़ा किया है। भारत के मामले में, स्वदेशी और पारंपरिक उत्पादन एवं ज्ञान प्रणाली पर ज़ोर देते हुए आत्मनिर्भरता और आत्म-निर्वाह की आवश्यकता है। इससे देश में बुनियादी ढाँचे को बेहतर बनाने में मदद मिलेगी जिससे वैश्वीकरण के लाभों को बेहतर ढंग से प्राप्त करने में मदद मिलेगी। वैश्वीकरण के विभिन्न पहलुओं को क्रमिक रूप से अपनाकर विवेकपूर्ण तरीके से वैश्वीकरण को आत्मसात करने की आवश्यकता है ताकि सामाजिक उथल-पुथल को रोका जा सके। हालाँकि, संरक्षणवाद और राष्ट्रवादी कट्टरवाद के पुनरुत्थान की प्रवृत्ति बढ़ रही है जो वैश्वीकरण की दिशा को या तो विफल कर सकती है या पुनर्निर्देशित कर सकती है।

सांप्रदायिकता

- सांप्रदायिकता शब्द की उत्पत्ति "समुदाय" शब्द से हुई है, जो सामान्य सामाजिक मानदंडों के आधार पर संगठित लोगों के एक समूह को दर्शाता है, जिसमें एक निश्चित मात्रा में पहचान "हम-भावना" के भाव में परिवर्तित हो जाती है। इस अर्थ में, विभिन्न सामाजिक मान्यताओं और संबद्धताओं वाले सामाजिक समूह, जैसे जाति समूह, भाषाई समूह, संप्रदाय और पंथ भी समुदाय हैं। हालाँकि, दक्षिण-एशियाई संदर्भ में, सांप्रदायिकता एक सचेत रूप से साझा धार्मिक विरासत को अभिव्यक्त करती है जो समाज के एक निश्चित वर्ग के लिए पहचान का प्रमुख रूप बन जाती है। सांप्रदायिकता को केवल धार्मिक समुदायों तक सीमित करने की यह संकीर्णता भारत में समुदायों की औपनिवेशिक समझ से विरासत में मिली है। उपनिवेशवाद के तहत, समुदाय की धार्मिक परिभाषा इतनी प्रमुख हो गई है कि आम विमर्श में सांप्रदायिकता कमोबेश धार्मिक किस्म की सांप्रदायिकता का पर्याय बन गई है।

  इस संदर्भ में, सांप्रदायिकता मूलतः एक विचारधारा है जिसमें तीन प्रतिमानों का परस्पर प्रभाव शामिल है:
- यह विश्वास है कि एक ही धर्म को मानने वाले लोगों के समान धर्मनिरपेक्ष हित होते हैं, जो एक समान राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक हित है। इन धार्मिक इकाइयों को भारतीय समाज की मूलभूत इकाइयों के रूप में देखा जाता है।
- एक समुदाय के धर्मनिरपेक्ष हित उस समुदाय के अनुयायियों के हितों से भिन्न और भिन्न होते हैं। दूसरे चरण को उदार सांप्रदायिकता कहा जाता है। उदार सांप्रदायिकतावादी मूलतः सांप्रदायिक राजनीति में विश्वास रखने वाला और उसका पालन करने वाला होता है; लेकिन फिर भी वह कुछ उदार, लोकतांत्रिक और राष्ट्रवादी मूल्यों को अपनाता है।
- विभिन्न समुदायों के हितों को परस्पर असंगत, विरोधी और शत्रुतापूर्ण माना जाता है

ऐतिहासिक विवरण

पूर्व औपनिवेशिक

- पूर्व-औपनिवेशिक काल में, विशिष्टता की चेतना सीमित थी, क्योंकि पहचान स्पष्ट रूप से एक बंधन थी।
- धार्मिक धारणा और शत्रुता स्थानीयकृत थी।
- चूँकि संचार के साधन सीमित थे, इसलिए समरूप धार्मिक चेतना के विचार का विस्तार और उसका राजनीतिकरण भी सीमित था। राजनीतिकरण और जुड़ाव तभी संभव है जब विभिन्न समान समुदायों को समान परिस्थितियों का सामना करना पड़े।
- पूर्व-औपनिवेशिक काल में धार्मिक पहचान क्षेत्रीय, जातीय, सांप्रदायिक और पंथिक पहचान के आधार पर विभेदित थी।
- चूँकि राज्य की अवधारणा स्पष्ट नहीं थी, इसलिए लोगों के समूहों के बीच विभिन्न मतभेदों के कारण टकराव और बातचीत दोनों की गुंजाइश बनी रही। अधिकांशतः इसका परिणाम विभिन्न विचारधाराओं के आत्मसातीकरण के रूप में सामने आया।
- पूर्व-औपनिवेशिक काल में पंथिक और सांप्रदायिक समूहों के बीच, यद्यपि छिटपुट, संघर्ष हुए थे। पूर्व-औपनिवेशिक काल में संघर्ष के कम से कम दो क्षेत्र थे:
  - राजनीतिक वर्चस्व को लेकर संघर्ष; और
  - सैद्धांतिक और सांप्रदायिक सर्वोच्चता के दावे पर संघर्ष।

  संघर्ष के इस क्षेत्र को आधिपत्य की स्थिति के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, आधिपत्य विचारधारा के साथ-साथ भौतिक लाभ का भी मामला था।" यह पूर्व-औपनिवेशिक शासकों द्वारा क्षेत्रीय विजय में बड़े पैमाने पर हिंसा की प्रवृत्ति की व्याख्या करता है।

औपनिवेशिक युग

- औपनिवेशिक भारत में स्थानीय स्तर पर विशिष्ट मुद्दों और अवसरों के इर्द-गिर्द धार्मिक पहचानों का क्रिस्टलीकरण हुआ। ब्रिटिश नीतियों और सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में बदलती परिस्थितियों ने इसे और भी तीव्र कर दिया। अंग्रेजों ने मुसलमानों को अपना मुख्य विरोधी माना। किसी दिन राजनीतिक सत्ता हासिल करने की उनकी उम्मीद ने उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति को और बिगाड़ दिया। 1857 के विद्रोह और बाद में वहाबी आंदोलन द्वारा अंग्रेजों को दी गई चुनौती के बारे में आधिकारिक दृष्टिकोण ने उन्हें मुसलमानों को अपना मुख्य विरोधी मानने पर मजबूर कर दिया। अंग्रेजों ने जानबूझकर उनका दमन किया और उन्हें विभिन्न गतिविधियों से व्यवस्थित रूप से दूर रखा। इस काल में एक नया वर्ग - शिक्षित मध्यम वर्ग, जो मुख्यतः उच्च जाति के हिंदुओं से बना था, उभर रहा था और ब्रिटिश प्रशासन को मजबूत करने में उसकी अपनी भूमिका थी।
- अंग्रेज़ मुसलमानों को अपना मुख्य विरोधी मानते थे। किसी दिन राजनीतिक सत्ता हासिल करने की उनकी उम्मीद ने उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति को बिगाड़ दिया। 1857 के विद्रोह और बाद में वहाबी आंदोलन द्वारा अंग्रेजों को दी गई चुनौती के बारे में सरकारी दृष्टिकोण ने उन्हें मुसलमानों को अपना मुख्य विरोधी मानने पर मजबूर कर दिया। अंग्रेजों ने जानबूझकर उनका दमन किया और उन्हें विभिन्न गतिविधियों से व्यवस्थित रूप से दूर रखा। इस काल में एक नया वर्ग - शिक्षित मध्यम वर्ग - जो मुख्यतः उच्च जाति के हिंदुओं से बना था, उभर रहा था और ब्रिटिश प्रशासन को मज़बूत करने में उसकी अपनी भूमिका थी।

ब्रिटिश नीति: फूट डालो और राज करो

- जैसा कि सर्वविदित है, ब्रिटिश प्रशासन भारत के कल्याण में नहीं, बल्कि उसके शोषण में रुचि रखता था। इसकी प्रतिक्रिया में राष्ट्रवाद का उदय और विकास हुआ, जिसने औपनिवेशिक शासन की निरंतरता के लिए गंभीर खतरा पैदा कर दिया। इसलिए, अंग्रेजों ने धार्मिक मतभेदों को पोषित और बढ़ावा दिया। उन्होंने पहले सामाजिक और सांस्कृतिक विविधताओं को बढ़ावा दिया और फिर हिंदुओं, मुसलमानों, आदिवासियों और निचली जातियों के परस्पर विरोधी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दावों को बढ़ावा देकर राजनीतिक विभाजन को बढ़ावा दिया (उदाहरण के लिए, वायसराय कर्जन द्वारा बंगाल का विभाजन)।
- 1909 में मॉर्ले मिंटो सुधारों के पारित होने के दौरान पहली बार सांप्रदायिक विचारधारा की स्पष्ट अभिव्यक्ति सामने आई। इसने सांप्रदायिक निर्वाचन मंडल के विचार को स्वीकृति प्रदान की। इसका तात्पर्य यह था कि हिंदुओं और मुसलमानों के धर्मनिरपेक्ष हित अलग-अलग थे और उनकी धार्मिक मान्यताओं से प्रभावित थे। इसके अलावा, सांप्रदायिक पंचाट, सांप्रदायिक माँगों की मान्यता आदि को इस नीति के उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है।

सांप्रदायिकता का धर्मनिरपेक्ष संसाधन चरित्र:

- अंग्रेजों के आगमन से पहले, प्रतिस्पर्धा और संघर्ष के बहुत कम क्षेत्र थे, लेकिन 19वीं शताब्दी के दौरान आधुनिकीकरण और पश्चिमीकरण के दोहरे प्रभावों ने इनमें बदलाव ला दिया। रोज़गार और आर्थिक गतिविधियों के नए क्षेत्रों ने प्रतिस्पर्धा के और अधिक अवसर खोले।
- बदलते राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में अपनी स्थिति सुधारने और उसे मज़बूत करने के लिए समुदायों ने कई नए तरीके अपनाए। उच्च जाति के हिंदुओं ने अंग्रेज़ी शिक्षा को उन्नति के एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में अपनाया। मुसलमानों ने उन्नति के इन तरीकों को अपनाने का विरोध किया; उदाहरण के लिए, अंग्रेज़ी की बजाय फ़ारसी को ज़्यादा महत्व दिया गया। परिणामस्वरूप, इस दौरान एक नया वर्ग - शिक्षित मध्यम वर्ग - जो मुख्य रूप से उच्च जाति के हिंदुओं से बना था, उभरा और ब्रिटिश प्रशासन को मज़बूत करने में उसकी अपनी भूमिका थी। 19वीं सदी के अंत तक, हिंदू अभिजात वर्ग ने अपनी स्थिति मज़बूत कर ली, जबकि मुसलमान हाशिए पर चले गए और ब्रिटिश सत्ता के लिए मुसलमानों का ख़तरा पूरी तरह से मिट गया। इस पर काबू पाने के लिए, मुस्लिम लीग के गठन के साथ, मुसलमानों के बीच एक नई पहचान उभरी, जो चुनावी और धर्मनिरपेक्ष लाभों के लिए हिंदुओं के ख़िलाफ़ खड़ी हो गई।

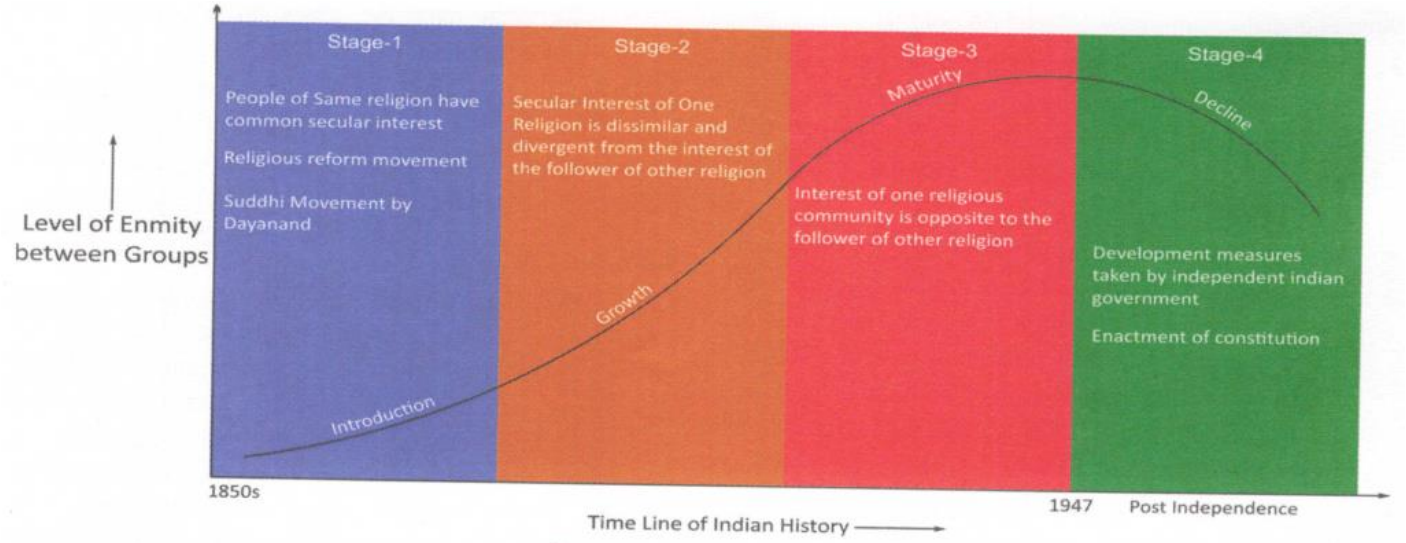

Life Cycle of Communalism

दुर्भाग्य से, राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय आंदोलन अंग्रेजों की फूट डालो और राज करो की नीति का मुकाबला नहीं कर सके। बल्कि, कुछ मायनों में, अनजाने में ही सही, लोगों को लामबंद करने के तरीके अपनाकर सांप्रदायिक पहचान को मज़बूत करने में भी मददगार साबित हुए। उदाहरण के लिए:

1. औपनिवेशिक शासकों के विरुद्ध जनता को संगठित करने के लिए तिलक द्वारा शुरू किया गया गणपति उत्सव मुसलमानों के विरुद्ध नहीं था। लेकिन मुसलमान इन उत्सवों में सक्रिय रूप से भाग नहीं ले सकते थे, जिससे वे अलग-थलग पड़ गए।
2. हिंदू-मुस्लिम एकता के प्रयास में, खिलाफत आंदोलन ने अप्रत्यक्ष रूप से सांप्रदायिकता को बढ़ावा दिया। हालाँकि, मुस्लिम लीग और हिंदू महासभा 1936 तक संगठनात्मक रूप से कमज़ोर रहीं। 1937 के चुनावों में मुस्लिम लीग का प्रदर्शन खराब रहा। 1942 के बाद ही मुस्लिम लीग एक मज़बूत राजनीतिक दल के रूप में उभरी।
3. राष्ट्रीय नेताओं ने ऊपर से एकता लाने की नीति अपनाई। धर्म से जुड़े मामलों में केवल शीर्ष नेताओं से ही सलाह ली जाती थी, जो ज़रूरी नहीं कि समुदायों के प्रतिनिधि हों।
4. राष्ट्रीय नेताओं का मानना था कि भारत में प्रत्येक समुदाय एकरूप और सुसंगठित है तथा सांप्रदायिक नेतृत्व ही प्रामाणिक है।
5. जनता को कभी विश्वास में नहीं लिया गया। इससे सांप्रदायिक नेताओं को अपने समुदायों को आक्रामक बनाए रखने और अपने निहित स्वार्थों की रक्षा के लिए इसका इस्तेमाल करने का प्रोत्साहन मिला।

इसलिए, ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन की नीतियों और राष्ट्रीय आंदोलन की ठोस सामाजिक व धर्मनिरपेक्ष आधार पर उसका मुकाबला करने में विफलता, दोनों ने सांप्रदायिक पहचानों को मज़बूत करने में मदद की। द्विराष्ट्र सिद्धांत और भारत का विभाजन इसके परिणाम थे।

जारी रखने के कारण

स्वतंत्रता के बाद की अवधि में सांप्रदायिकता:

- समकालीन राजनीतिक और आर्थिक ढाँचों में सांप्रदायिकता की जड़ें गहरी होती गईं, क्योंकि अधिकांश मुसलमान हाशिए पर थे, क्योंकि मुसलमानों में व्याप्त व्यापक गरीबी और अशिक्षा के कारण संसाधनों को लेकर धर्मनिरपेक्ष संघर्ष छिड़ गया। हालाँकि, यह स्पष्ट है कि स्वतंत्र भारत में, सांप्रदायिकता केवल धार्मिक स्रोतों से ही नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन के हर पहलू से ऊर्जा प्राप्त करती है, जो इस तथ्य से प्रकट होती है कि आम तौर पर सांप्रदायिक हिंसा के स्थलों में मुस्लिम आबादी की आर्थिक भागीदारी अधिक होती थी। इसके अलावा, विकास और आर्थिक विकास की धीमी दर, साथ ही समुदायों की राजनीतिक लामबंदी ने भी सांप्रदायिकता के विकास में योगदान दिया।

- स्वतंत्रता के समय असुरक्षा का वातावरण व्याप्त था जिसने सांप्रदायिक निष्ठाओं और पहचानों को और संकुचित कर दिया। संविधान निर्माताओं ने देश की एकता और अखंडता के लिए भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य के रूप में स्थापित करने का सही निर्णय लिया, जिससे उसके सभी नागरिकों को सुरक्षा की भावना मिले। यह अपेक्षा की गई थी कि सरकार और लोगों की धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक व्यवस्था सामूहिक रूप से आर्थिक विकास में शामिल होगी, जिससे एक नए भारतीय समाज का निर्माण होगा। मानव स्वतंत्रता, न्याय और समानता के पूर्ण सम्मान पर आधारित एक नई राजनीतिक संस्कृति की अपेक्षा की गई थी। भारत का संविधान नागरिकों (अर्थात व्यक्तियों) को कुछ मौलिक अधिकार प्रदान करता है। लेकिन अल्पसंख्यकों के मामले में, पूरे समुदाय को अनुच्छेद 28, 29 और 30 के तहत मौलिक अधिकार दिए गए हैं, जिसके अनुसार वे अपने शैक्षणिक संस्थानों का प्रबंधन करने और अपनी संस्कृति के संरक्षण का अधिकार रखते हैं। लेकिन इन अधिकारों का इस्तेमाल, व्यक्तिगत अधिकारों से ऊपर, पर्सनल लॉ बोर्ड द्वारा अपने सामुदायिक कानूनों के आधार पर किया जा रहा है। जैसा कि शाहबानो मामले में देखा गया था।
- ऐसे पर्सनल लॉ के ख़िलाफ़ भी नाराज़गी है और समान नागरिक संहिता की माँग बढ़ रही है, जिसका ज़िक्र भारतीय संविधान के राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के अनुच्छेद 44 में भी किया गया है। इससे धार्मिक मतभेद कम करने में मदद मिलेगी।
- समान नागरिक संहिता के अभाव में, यह धारणा बनी हुई है कि सभी समुदायों के हित अलग-अलग और विरोधाभासी हैं। परिणामस्वरूप, समुदाय-आधारित दबाव समूह अपने-अपने समुदाय के लिए सौदेबाज़ी करते हैं। राजनीतिक स्तर पर, ये समुदाय सत्ता और संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। यह प्रतिस्पर्धा, आगे चलकर बड़े संघर्षों का रूप ले लेती है। राजनेता इन समुदायों को वोट बैंक में बदलने की कोशिश करते हैं और विभिन्न समुदाय एक-दूसरे से असंबद्ध हो जाते हैं।
- आज़ादी के बाद से ही भारत धर्मनिरपेक्षता पर आधारित राष्ट्र-निर्माण के आदर्श पर चलता रहा है। आज़ादी के 70 साल बाद भी, भारत सांप्रदायिकता की आग में जल रहा है। हालाँकि, इसके लिए कई कारण ज़िम्मेदार हैं। यहाँ कुछ कारणों पर चर्चा की गई है, और सांप्रदायिकता के जारी रहने में भूमिका निभाने वाले कारणों को समझने के लिए ये कारण दिए गए हैं: पहला धार्मिक, दूसरा राजनीतिक, तीसरा सामाजिक-आर्थिक और चौथा अंतर्राष्ट्रीय।

धर्म की राजनीति

- लोकतंत्र के आगमन के बाद भी धर्म लोगों के जीवन और पहचान पर हावी रहा, इसलिए अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि धर्मनिरपेक्षता लोकतंत्रीकरण की ओर ले जाती है। हालाँकि, भारतीय परिदृश्य में यह त्रुटि थी कि भारत में धर्मनिरपेक्षता के बिना लोकतंत्रीकरण हुआ। दुर्भाग्य से भारत में ऐसा नहीं हुआ क्योंकि:
- राजनीतिक दल कार्यक्रमों और नीतियों के आधार पर प्रतिस्पर्धा करने की लोकतांत्रिक परंपराओं को मजबूत करने के बजाय, लोगों को लामबंद करने के आसान तरीके के रूप में वोट बैंक का सहारा ले रहे हैं।
- सामाजिक-आर्थिक आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु नियोजन की विफलता ने लोगों को व्यवस्था से अलग-थलग कर दिया। राजनीतिक दलों ने इस अलगाव की भावना का फायदा उठाया। परिणामस्वरूप, चुनावी राजनीति, उम्मीदवारों के नामांकन और प्रचार में धर्म के इस्तेमाल ने सांप्रदायिकता की प्रक्रिया को और तेज़ कर दिया।
- यद्यपि संवैधानिक ढांचा लोकतंत्र और धर्म को अलग करने के लिए मजबूत आधार प्रदान करता है, लेकिन वास्तविक व्यवहार से पता चला है कि राजनीतिक दलों और सरकारी पदाधिकारियों ने संवैधानिक ढांचे को आत्मसात नहीं किया है।
- राजकीय समारोहों में धार्मिक अनुष्ठानों का प्रयोग किया जा रहा है।
- किसी नेतृत्व द्वारा दिया गया सांप्रदायिक आह्वान भी ध्रुवीकरण की प्रक्रिया को तेज करता है तथा सांप्रदायिक दंगों की संभावना को बढ़ाता है।

राज्य मशीनरी की विफलता

सांप्रदायिक हिंसा के प्रसार को रोकने और सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने में राज्य की विफलता के कारण नीचे दिए गए हैं।

- पुलिस की भूमिका उपद्रवियों को गिरफ्तार करना, सार्वजनिक संपत्ति की रक्षा करना, अफवाहों को फैलने से रोकना और कानून-व्यवस्था बनाए रखना है। हालाँकि, राजनेताओं, नौकरशाहों, न्यायपालिका और आम जनता के सक्रिय सहयोग के बिना वे कानून-व्यवस्था लागू करने की भूमिका नहीं निभा सकते। लोगों का पुलिस पर बहुत कम भरोसा है।
- सांप्रदायिक और अर्ध-सांप्रदायिक समूहों ने कानूनी खामियों का फायदा उठाकर राजनीतिक संगठन के रूप में उभरे। चुनाव आयोग के पास उन्हें रोकने के लिए पर्याप्त शक्तियां नहीं हैं।
- धर्मनिरपेक्षता को सुदृढ़ करने तथा बहुलवादी समाज में अपेक्षित बहुसंस्कृतिवाद की नीतियां बनाने में राज्य की विफलता।
- सांप्रदायिक दंगों में पीड़ितों को न्याय में देरी।
- खुफिया एजेंसियों की अयोग्य कार्यप्रणाली।
- प्रेस और मीडिया भी कभी-कभी योगदान देते हैं।

आर्थिक कारक

सापेक्षिक वंचना की भावना असंतोष का एक कारण है। आर्थिक अवसंरचना धार्मिक अधिरचना को आकार देती है।

- संतुलित विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएँ शुरू की गईं। लेकिन यह योजना समग्र रूप से वांछित लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सकी। चूँकि संसाधन सीमित थे, इसलिए सीमित संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा शुरू हो गई।
- शिक्षित, बेरोज़गार या अल्प-रोज़गार वाले, ऊर्जा से भरपूर युवाओं को, विशेष रूप से व्यस्त रखने के लिए, और उनका ध्यान भटकाने की रणनीति के तहत निशाना बनाया जाता है। यह संयोग नहीं है कि 1980 और 1990 के दशक सांप्रदायिक हिंसा के लिहाज से भी सबसे बुरे रहे हैं।
- भारत में सर्वव्यापी गरीबी को देखते हुए, शासक वर्गों ने धर्म और धार्मिकता को अपने प्रभुत्व और सामाजिक नियंत्रण को सुदृढ़ करने के लिए सबसे अधिक उपयोगी पाया।
- अर्थव्यवस्था का विस्तार न होना, प्रतिस्पर्धी बाजार, श्रमिकों का गैर-आवेशीकरण इसमें योगदान देने वाले कारक हैं।
- झुग्गियों और बस्तियों में रहने की सामाजिक गतिशीलता दंगा-प्रवण स्थिति के लिए अनुकूल साबित होती है। बस्तीकरण और शरणार्थी समस्या सांप्रदायिकता से प्रेरित हिंसा का दूसरा आयाम है, चाहे वह देश के भीतर हो या देश के भीतर। किसी विशेष समुदाय के विरुद्ध हिंसा में अचानक वृद्धि बड़े पैमाने पर पलायन का कारण बनती है और परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में लोग मारे जाते हैं। उदाहरण के लिए, 2012 में बैंगलोर के मामले में ऐसा देखा गया था, जहाँ पूर्वोत्तर राज्यों से आए लोगों के साथ एक अफवाह के कारण हिंसा भड़क उठी थी।

आर्थिक विकास और राजनीतिक स्थिरता सांप्रदायिक स्थितियों में सुधार में योगदान देती है।

वैश्विक प्रभाव

राज्य प्रायोजित आतंकवाद, सभ्यता के टकराव से प्रेरित सांप्रदायिकता:

- राज्य प्रायोजित आतंकवाद और कट्टरवाद को अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में अपने हितों को साधने के लिए औज़ार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। कश्मीर, फ़िलिस्तीन और रोहिंग्या जैसे मुद्दों का दुनिया भर में प्रभाव है। सांप्रदायिक संगठनों को भारत का समर्थन कमज़ोर करने के लिए दूसरे देशों से प्रशिक्षण और वित्तीय सहायता।
- अमेरिकी राजनीतिशास्त्री सैमुअल पी. हटिंगटन का तर्क था कि शीत युद्ध के बाद, सांस्कृतिक और धार्मिक पहचानों के बीच युद्ध लड़े जाएँगे। इस प्रकार, सांप्रदायिकता विश्व राजनीति को आकार देने वाले पहलुओं में से एक होगी।

वैश्वीकरण के इस युग में, जनसंचार माध्यमों और सोशल मीडिया के प्रसार के साथ, कोई भी समुदाय वैश्विक राजनीति की रूपरेखा से अलग नहीं रह सकता।

बाहरी तत्व

सांप्रदायिकता की समस्या को और बिगाड़ने और उसे गंभीर बनाने में बाहरी तत्वों की भूमिका होती है। दंगों में बाहरी तत्वों की संलिप्तता या उनकी भूमिका के मुख्य कारण इस प्रकार हैं:

- अस्थिरता का माहौल बनाना, ताकि वह सामाजिक रूप से कमजोर हो जाए;
- अल्पसंख्यकों से सहानुभूति प्राप्त करने की आशा करना;
- किसी विदेशी देश की आर्थिक संरचना को कमजोर करने का प्रयास करना; और
- अपनी स्वयं की अक्षमता को छिपाने के उद्देश्य से।

समकालीन सांप्रदायिकता

समकालीन सांप्रदायिकता, राज्य सत्ता के प्रभाव को नियंत्रित करने और उसमें हेरफेर करने की बहुसंख्यक सांप्रदायिकता की बढ़ती हुई इच्छा के ढाँचे के भीतर संचालित होती है। 1990 के दशक में आर्थिक उदारीकरण के दौर में भारतीय राज्य की वैधता के गहरे संकट के परिणामस्वरूप सांप्रदायिकता का यह रूप प्रमुख हो गया। इसके अलावा, सांप्रदायिकता का स्वरूप 'दैनिक जीवन के दृष्टिकोण' से बदलकर आधुनिक चिंतन में निहित 'पारलौकिक दृष्टिकोण' के प्रभुत्व में बदल गया। इसे एक विचारधारा के रूप में साम्यवाद के पतन के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। साम्यवाद के पतन के साथ, विरोध के माध्यम के अभाव की जगह धर्म ने ले ली। इस प्रकार, एक धर्म को दूसरे धर्म के साथ सीधे टकराव में खड़ा करने से सांप्रदायिकता के साथ-साथ कट्टरवाद भी बढ़ा।

धार्मिकता और सांप्रदायिकता

- यह धार्मिक होने और सांप्रदायिक होने के बीच के अंतर को उजागर करने के लिए है। धार्मिक होने का मूल सिद्धांत ही है कि दूसरों की आस्था की अवहेलना किए बिना अपने धर्म में आस्था रखें।
- इस संदर्भ में, भारतीय संविधान प्रत्येक धर्म से सैद्धांतिक दूरी बनाए रखने और 'सर्वधर्म समभाव' के मूल्य को अक्षुण्ण रखने के बारे में बहुत स्पष्ट है। संविधान का अनुच्छेद 25 सभी को किसी भी धर्म को मानने और मानने की स्वतंत्रता देता है। भारत में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा यूरोपीय मॉडल से भिन्न है क्योंकि यहाँ अनेक धर्मों का सह-अस्तित्व है, बिना किसी अतिरिक्त पक्षपात या अरुचि के, बल्कि सभी को समान रूप से अपनाया जाता है। धार्मिक होने पर भी दूसरों को ठेस न पहुँचाने की यह वैध नींव भारतीय मानस में अंकित है। 'गंगा-जमुनी तहज़ीब' और सामासिक संस्कृति की लंबी परंपरा भारतीय समाज को काफी सहिष्णु बनाती है। धर्म एक आदिम पहचान है, इसलिए 'भारत जैसे प्रिज्मीय समाज' में लोग काफी धार्मिक पाए जाते हैं, लेकिन सनातन काल से चले आ रहे आचार-विचार और प्रथाएँ उन्हें धार्मिक रूप से धर्मी बनाती हैं।
- हाँ, इस दिव्य लोकाचार में भी समय-समय पर गिरावट आई है, जिससे सांप्रदायिकता को बढ़ावा मिला है और इस प्रकार कई अवसरों पर भारतीय ताने-बाने में दरारें उभरी हैं, जो भारत की मूल अवधारणा पर ही प्रश्नचिह्न लगाती हैं। फिर भी, कई मायनों में भारत की विविधता और हिंदू धर्म का उदार और बहुलवादी होना, धार्मिक प्रथाओं की समग्र पारिस्थितिकी को काफी उदार बनाता है और इसलिए, कुल मिलाकर, तीव्र धार्मिक मतभेदों के बावजूद सभी का शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व बना रहता है।

भारत में सांप्रदायिक दंगे

- **सिख विरोधी दंगे (1984):** यह भारत में हुए रक्तपात में से एक है, जहाँ सिख विरोधी भीड़ ने बड़ी संख्या में सिखों का नरसंहार किया था। यह नरसंहार प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की उनके ही सिख अंगरक्षकों द्वारा की गई हत्या के विरोध में हुआ था, जो उनके द्वारा सैन्य ऑपरेशन ब्लूस्टार को अधिकृत करने के कारण हुआ था।

- **कश्मीरी हिंदू पंडितों का जातीय सफाया (1989):** कश्मीर को भारत के स्वर्ग के रूप में जाना जाता है और यह अपनी कश्मीरियत के लिए जाना जाता था, अर्थात हिंदू, मुस्लिम और अन्य समुदायों के भाईचारे और एकता के माध्यम से प्रेम, शांति और सद्भाव का प्रतिबिंब। लेकिन, कश्मीर घाटी में चरमपंथी इस्लामी आतंकवाद के कारण भाईचारे को गंभीर झटका लगा, जिसके कारण बड़े पैमाने पर हत्या हुई और कश्मीरी पंडितों का घाटी से भारत के विभिन्न क्षेत्रों और कोनों में बड़े पैमाने पर पलायन हुआ, जिससे उन्हें अपने ही देश में शरणार्थी का दर्जा मिला। तब से, घाटी सांप्रदायिक हिंसा की चपेट में है और चल रही अशांति लोगों के विकास के लिए एक समस्या बन गई है। बाबरी मस्जिद विध्वंस (1992): हिंदू पौराणिक कथाओं के अनुसार, अयोध्या भगवान राम का जन्म स्थान है और इसलिए यह हिंदू धर्म के लिए पवित्र स्थान है। लेकिन मध्यकाल में मुगल जनरल मीर बाक़ी ने एक मस्जिद का निर्माण किया, जिसका नाम मुगल शासक बाबर के नाम पर रखा गया। लेकिन 1990 में, कुछ राजनीतिक लामबंदी के कारण, हिंदू धार्मिक समूहों द्वारा विरोध का माहौल बना और बाबरी मस्जिद को गिराकर वहाँ राम मंदिर बनाने के समर्थन में, देश के विभिन्न हिस्सों से बड़े पैमाने पर कारसेवक अयोध्या पहुँचे। इन आंदोलनों के कारण भारी रक्तपात हुआ और तब से यह एक विवादित मामला है।
- **मुंबई दंगे (1992):** ये बाबरी मस्जिद विध्वंस का ही एक परिणाम थे। जाँच के लिए न्यायमूर्ति बीएन श्रीकृष्ण आयोग का गठन किया गया, लेकिन उसकी सिफारिशों पर अमल नहीं किया गया। इन दंगों के बाद मार्च 1993 में मुंबई बम विस्फोट हुए।
- **गोधरा हिंसा (2002):** गोधरा कांड 2002 में हुआ था, जब अयोध्या से साबरमती एक्सप्रेस से लौट रहे 'कारसेवकों' की ट्रेन के डिब्बों में आग लगाकर हत्या कर दी गई थी। इसके बाद गुजरात में सांप्रदायिक हिंसा फैल गई। यह हिंसा गुजरात और देश के इतिहास में एक काले धब्बे की तरह है, क्योंकि इसमें लोगों को बेरहमी से मारा गया। हिंदू और मुस्लिम समुदाय एक-दूसरे के विरोधी हो गए। आज भी लोग भारतीय न्यायपालिका से एक उम्मीद की किरण लेकर सर्वोच्च न्यायालय में न्याय की लड़ाई लड़ रहे हैं।

  इस घटना की जाँच के लिए न्यायमूर्ति केजी शाह और न्यायमूर्ति नानावती की अध्यक्षता में दो सदस्यीय आयोग का गठन किया गया था। बेस्ट बेकरी मामला, बिलकिस बानो मामला, नरोदा पाटिया नरसंहार मामला गोधरा कांड से संबंधित हैं।
- **असम सांप्रदायिक हिंसा (2012):** पूर्वोत्तर राज्य अपनी विशिष्ट जनजातीय आबादी और जातीय विविधता के लिए जाने जाते हैं और बड़े पैमाने पर बांग्लादेशी आप्रवासन ने पूर्वोत्तर राज्यों की जनसांख्यिकी को बदल दिया है, जो अक्सर झड़पों का कारण बनता है। 2012 में, बोडो (आदिवासी, ईसाई और हिंदू धर्मावलंबी) और मुसलमानों के बीच जातीय झड़पें हुईं। बोडो और बंगाली भाषी मुसलमानों के बीच जातीय तनाव जुलाई 2012 में कोकराझार में एक दंगे में बदल गया, जब अज्ञात बदमाशों ने जॉयपुर में चार बोडो युवकों की हत्या कर दी।
- **मुज़फ़्फ़रनगर हिंसा (2013):** जाट और मुस्लिम समुदाय के बीच हुए इस जातीय संघर्ष का कारण काफ़ी विवादित है और इसके कई संस्करण हैं। कुछ लोगों के अनुसार, यह सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म फ़ेसबुक पर किसी संदिग्ध पोस्ट के बाद शुरू हुआ था। कारण अज्ञात हैं, लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि देश को मानव संसाधन और शांति के संदर्भ में कितना नुकसान हुआ और कितना हुआ।

सांप्रदायिकता पर अंकुश लगाने के कदम

विधायी

- भारतीय कानून सांप्रदायिक हिंसा को इस प्रकार परिभाषित करता है, "कोई भी कार्य या कार्यों की श्रृंखला, चाहे वह स्वतःस्फूर्त हो या योजनाबद्ध, जिसके परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति और/या संपत्ति को चोट पहुँचती है या नुकसान पहुँचता है, और जो किसी व्यक्ति के किसी धार्मिक या भाषाई अल्पसंख्यक होने के कारण जानबूझकर उसके विरुद्ध निर्देशित किया जाता है। भारत में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (एनएचआरसी) पीड़ितों के अधिकारों के

लिए लड़ता है, लेकिन इसकी सिफ़ारिशें केवल परामर्शात्मक प्रकृति की होती हैं, जिनसे कोई खास परिणाम नहीं निकलते।

- 2005 में गठित सच्चर समिति ने 2010 में समान अवसर आयोग (ईओसी) की स्थापना की सिफारिश की थी। ईओसी का उद्देश्य धर्म, जाति, लिंग और शारीरिक क्षमता आदि के आधार पर भेदभाव के सभी व्यक्तिगत मामलों के लिए शिकायत निवारण तंत्र स्थापित करना था।
- भारत सरकार ने रंगनाथ मिश्र आयोग को धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों के सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए व्यावहारिक उपाय सुझाने और उनके कार्यान्वयन की रूपरेखा तैयार करने का दायित्व सौंपा था। भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश रंगनाथ मिश्र की अध्यक्षता वाले राष्ट्रीय धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यक आयोग की रिपोर्ट में कहा गया है कि केंद्र और राज्य सरकार की नौकरियों में सभी संवर्गों और श्रेणियों में मुसलमानों के लिए 10% और अन्य अल्पसंख्यकों के लिए 5% पद आरक्षित किए जाने चाहिए।
  आईपीसी और सीआरपीसी के प्रावधानों के अलावा, सांप्रदायिक हिंसा के दोषियों को सज़ा देने के लिए कोई ठोस कानून नहीं है, पीड़ितों के राहत और पुनर्वास के लिए कोई स्पष्ट नीति नहीं है। गवाहों की सुरक्षा और लोक सेवकों की जवाबदेही आदि के लिए कोई नियम नहीं हैं।
- 'सांप्रदायिक एवं लक्षित हिंसा निवारण (न्याय एवं क्षतिपूर्ति तक पहुँच) विधेयक, 2011' संसद में निरस्त हो गया। इस विधेयक में सांप्रदायिक सद्भाव, न्याय और क्षतिपूर्ति के लिए सात सदस्यीय राष्ट्रीय प्राधिकरण का प्रावधान था। इसने अल्पसंख्यक वर्गों की सुरक्षा का प्रयास किया। इसमें जिला प्रशासन की जवाबदेही सुनिश्चित करने के प्रावधान थे। सच्चर समिति और राघवन मिश्रा आयोग पहले ही इसकी सिफारिश कर चुके हैं। भारत में दंगों, दंगा जैसी स्थितियों, भीड़ नियंत्रण, बचाव एवं राहत कार्यों और संबंधित अशांति से निपटने के लिए सीआरपीएफ की एक शाखा, रैपिड एक्शन फोर्स की विशेष बटालियनें हैं।

अदालती

- सर्वोच्च न्यायालय ने सरदार ताहिरुद्दीन सैयदना साहब बनाम बॉम्बे राज्य मामले में पहली बार संविधान की धर्मनिरपेक्ष प्रकृति पर अपने विचार व्यक्त किए।
- केशवानंद भारती मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने 'धर्मनिरपेक्ष चरित्र' को संविधान की मूल विशेषताओं में से एक बताया। एसआर बोम्मई बनाम भारत संघ मामले में, न्यायालय ने एक बार फिर धर्मनिरपेक्षता को संविधान का एक अंग माना।
- आई.आर. कोएलो बनाम तमिलनाडु राज्य मामले में, जिसके पहले एम. नागराज बनाम भारत संघ मामले में न्यायालय ने अनुच्छेद 15 के तहत आरक्षण के लिए समानता के दावों को संतुलित करने के लिए धर्मनिरपेक्षता का उपयोग किया था, इसने धर्मनिरपेक्षता के दायरे को महज धार्मिक अवधारणा से बढ़ाकर अनुच्छेद 14, 15 और 21 के तहत अधिकार बना दिया था।
- न्यायालय ने 2014 में अपने हिंदुत्व संबंधी फैसलों को सात न्यायाधीशों वाली एक संवैधानिक पीठ को सौंप दिया था। निस्संदेह, हिंदू धर्म एक प्राचीन और सहिष्णु धर्म है, लेकिन अन्य धर्म भी ऐसे ही हैं।
- हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने बाबरी विध्वंस मामले में तेजी लाने के लिए कदम उठाए हैं।

मिडिया

- आजकल सोशल मीडिया सांप्रदायिक नफ़रत फैलाने के लिए कुख्यात हो गया है। यह लगभग तुरंत भड़काऊ सामग्री प्रसारित करता है, जिस पर हमारी सरकार का कोई नियंत्रण नहीं है। यह धार्मिक कट्टरपंथियों के हाथों में दूसरे धर्मों के प्रति नफ़रत फैलाने का एक शक्तिशाली हथियार बन गया है।
- यह सच है कि अनुच्छेद 19(1) के अंतर्गत मौलिक अधिकार नागरिकों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान करते हैं। लेकिन इस अनुच्छेद का प्रावधान सरकार को देश की एकता और अखंडता की रक्षा के लिए युक्तिसंगत प्रतिबंध लगाने का अधिकार भी देता है। इसके अतिरिक्त, संविधान के अनुच्छेद 51A के अंतर्गत मौलिक कर्तव्यों में प्रावधान

है - "(ङ) भारत के सभी लोगों के बीच धार्मिक, भाषाई और क्षेत्रीय या वर्गीय विविधताओं से परे सद्भाव और समान भाईचारे की भावना को बढ़ावा देना; महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध अपमानजनक प्रथाओं का त्याग करना।"

- इसे राज्य द्वारा सोशल मीडिया पर नियंत्रण करके लागू किया जाना चाहिए। पुराने ज़माने में, जब भी कोई भड़काऊ प्रिंट मीडिया आता था, सरकार अपनी शक्तियों का इस्तेमाल करके उस पर प्रतिबंध लगा देती थी, लेकिन सोशल मीडिया के प्रति सरकार के पास अभी तक कोई मज़बूत/प्रभावी नीति नहीं है।
- उपर्युक्त सांप्रदायिक हिंसा पर कई फ़िल्में बनी हैं, जो हमें इन हिंसाओं से हुए नुकसान और क्षति के बारे में जानकारी देती हैं: 1992 के हमलों पर आधारित 'बॉम्बे' और 'ब्लैक फ्राइडे'। 1947 के भारत विभाजन पर खुशवंत सिंह के उपन्यास पर आधारित 'ट्रेन टू पाकिस्तान'। 'गांधी' डायरेक्ट एक्शन डे और भारत विभाजन का चित्रण है। 1984 के सिख दंगों पर आधारित 'हवाएँ' और पंजाब के आतंकवाद पर आधारित 'माचिस'।

नागरिक समाज

- हममें से प्रत्येक को अपने धार्मिक समुदाय और राष्ट्रीय हितों के बीच संतुलन बनाना होगा, राष्ट्रवाद के साथ जुड़ना होगा और फिर आगे बढ़ना होगा। किसी धार्मिक समुदाय की शिक्षाएँ महान हो सकती हैं, लेकिन संबंधित समुदाय के अनुयायियों को यह समझना चाहिए कि राष्ट्रवाद उससे भी बड़ा है।
- हमें निर्णय लेते समय विवेकशील होना होगा। प्रत्येक धार्मिक समुदाय की स्थापना कुछ ऐसे मूल्यों के आधार पर हुई है जो देश और काल की परिस्थितियों के लिए सर्वोत्तम और आवश्यक थे। सभी समुदायों के नेताओं को, इसे समझते हुए, सद्भावनापूर्ण वातावरण के लिए आगे आना चाहिए, जिसमें उनका भी कल्याण निहित है। धर्मगुरुओं को धर्म के माध्यम से शांति और सुरक्षा को बढ़ावा देते हुए विवेकपूर्ण और व्यावहारिक बातों को बढ़ावा देना चाहिए।
- तुष्टिकरण, व्यक्तिगत व दलीय स्वार्थ के लिए जनभावनाओं से खिलवाड़, योग्यता को ताक पर रखकर धार्मिक समुदाय या संप्रदाय के आधार पर उम्मीदवारों का चयन जैसी नीतियाँ, निःसंदेह राष्ट्रहित या राष्ट्रवाद के विरुद्ध कार्य करती हैं; निम्न राष्ट्रीय सोच का परिचायक हैं। अतः सरकारी स्तर पर तथा राजनीतिक दलों के स्तर पर भी इस प्रकार के कृत्यों पर रोक लगनी चाहिए।
- युवाओं में बेरोजगारी, अशिक्षा और गरीबी की समस्या को दूर करने की दिशा में ईमानदारी और बिना किसी भेदभाव के काम करने की सख्त ज़रूरत है। इससे कई समस्याओं का समाधान होगा और जागरूकता आएगी। परिणामस्वरूप सांप्रदायिकता पर काफी हद तक लगाम लगेगी। मीडिया, फ़िल्में और अन्य सांस्कृतिक मंच शांति और सद्भाव को बढ़ावा देने में प्रभावशाली हो सकते हैं। हालाँकि भारत में ऐसी सभी प्रथाएँ आम हैं, फिर भी इस दिशा में सुधार की गुंजाइश है।

अन्य उपाय

- सांप्रदायिक आधार पर राजनीतिक दलों के गठन को बढ़ावा नहीं दिया जाना चाहिए। राजनीतिक दलों को या तो चुनाव प्रचार में धर्म का इस्तेमाल न करने के लिए एक आचार संहिता बनानी चाहिए या फिर चुनाव आयोग या संसद को ऐसी आचार संहिता बनाने देनी चाहिए। हमें ऐसी राज्य व्यवस्था की ज़रूरत है जो सांप्रदायिकता और सांप्रदायिक हिंसा को रोकने और समाज के सभी वर्गों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त रूप से कुशल, मज़बूत और निष्पक्ष हो। राजनीतिक, धार्मिक या अन्य मजबूरियों को इसमें आड़े नहीं आने देना चाहिए।
- हमारी संस्कृति की समग्र प्रकृति पर ज़ोर देने और युवा छात्रों में धर्मनिरपेक्ष और वैज्ञानिक सोच विकसित करने के लिए शिक्षा प्रणाली का पुनर्निर्माण आवश्यक है। हमें यह समझना होगा कि सांप्रदायिकता सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन में बाधा डालती है, जो हम सभी के लिए अत्यंत आवश्यक है। देश में सांप्रदायिक दलों पर प्रतिबंध। शिक्षा प्रणाली और पाठ्य पुस्तकों के पुनर्गठन द्वारा धर्मनिरपेक्ष विश्वदृष्टि को बढ़ावा। स्वस्थ जनमत। अंतर्धार्मिक विवाह।

सांप्रदायिक हिंसा: एक वैश्विक तस्वीर

- सांप्रदायिक हिंसा आजकल दुनिया भर में आम है। इन्हें विभिन्न वैकल्पिक नामों से जाना जाता है, जैसे चीन में शिनजियांग प्रांत में सांप्रदायिक हिंसा को जातीय हिंसा कहा जाता है। सांप्रदायिक हिंसा और दंगों को गैर-राज्य संघर्ष, हिंसक नागरिक या अल्पसंख्यक अशांति, सामूहिक नस्लीय हिंसा, सामाजिक या अंतर-सांप्रदायिक हिंसा और जातीय-धार्मिक हिंसा भी कहा जाता है। रखाइन राज्य (पूर्व में अराकान प्रांत) में रहने वाले बौद्धों और रोहिंग्या मुसलमानों के बीच हिंसा, जो म्यांमार के अधिकांश तट से बंगाल की खाड़ी तक फैली हुई है और बांग्लादेश के चटगाँव प्रांत की सीमा से लगती है, 2013 में भड़की थी। म्यांमार, बांग्लादेश और पाकिस्तान जैसे पड़ोसी देशों में ऐसी हिंसा भारत में भी बदले की कार्रवाई का कारण बनती है। यह शरणार्थियों की समस्या को भी बढ़ावा देती है, जैसा कि पाकिस्तानी हिंदुओं के मामले में हुआ। श्रीलंका को जातीय संघर्षों और अल्पसंख्यक तमिलों के खिलाफ सरकार की कार्रवाई को लेकर अंतरराष्ट्रीय और संयुक्त राष्ट्र की आलोचनाओं का भी सामना करना पड़ रहा है, जिसका भारत और श्रीलंका के संबंधों और भारत की आंतरिक सुरक्षा पर सीधा असर पड़ रहा है। संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया आदि पश्चिमी देशों में विश्व के सभी कोनों से जनसंख्या के आगमन के कारण बढ़ती विविधता, उनके संबंधित समाजों में जातीय संघर्ष और हिंसा की चुनौती पेश कर रही है।

धार्मिक कट्टरवाद

- यह धार्मिक पुनरुत्थानवाद का एक चरम रूप है जिसे कभी-कभी हिंसा, विशेष रूप से आतंकवाद से जोड़ा जाता है। यह एक रूढ़िवादी धार्मिक सिद्धांत है जो बौद्धिकता और सांसारिक समायोजन का विरोध करता है और पारंपरिक पारलौकिक धर्म की पुनर्स्थापना के पक्ष में है, जो विज्ञान के बढ़ते प्रभाव और पारंपरिक परिवार के कमजोर होने के रूप में देखा जाता है।

टी.एन.मदान ने इसकी मुख्य विशेषता पर प्रकाश डाला:

- धार्मिक कट्टरपंथी खुद को परंपरा में स्थापित करते हैं
- कट्टरपंथी आंदोलन वर्तमान जीवनशैली की आलोचना करने के लिए अतीत का उपयोग करते हैं
- कट्टरपंथी आंदोलन बाइबल, कुरान आदि जैसे अचूक माने जाने वाले धर्मग्रंथों से अपनी वैधता का दावा करते हैं। वे पवित्र ग्रंथ की शाब्दिक व्याख्या करते हैं।
- आंदोलन अधिनायकवादी है, चरित्र में बलपूर्वक है, असहमति में असहिष्णु है जैसे महिलाओं के खिलाफ तालिबान
- लोग राजनीतिक सत्ता में रुचि रखते हैं, विशेषकर राज्य सत्ता पर कब्जा करने में, जिसके बिना उनका मानना है कि उनका उद्देश्य प्राप्त नहीं हो सकता।

कट्टरवाद और सांप्रदायिकता: एक तुलना

समानता

- दोनों ही राजनीति और राज्य से धर्म को अलग करने की अवधारणा पर हमला करते हैं।
- दोनों ही सभी धर्मों में समान सत्य या विभिन्न धर्मों की एकता या विभिन्न धर्मों की एकता की अवधारणा का विरोध करते हैं।
- दोनों ही प्रमुख धार्मिक समूह द्वारा शिक्षा पर नियंत्रण की वकालत करते हैं।
- दोनों ही अज्ञात की ओर बढ़ने के बजाय अतीत के मूल्यों की पुनर्स्थापना में विश्वास करते हैं, ताकि महानता और प्रगति भविष्य में निहित हो।
- दोनों का यह मानना है कि उनके समाजों ने प्रारंभिक शताब्दियों में लगभग मानवीय पूर्णता प्राप्त कर ली थी।
- दोनों धर्मनिरपेक्षता का विरोध करते हैं।

धारणा में अंतर

- बहुधार्मिक समाज में, कट्टरपंथी सांप्रदायिक होते हैं, जबकि सांप्रदायिकतावादी अक्सर कट्टरपंथी नहीं होते हैं, जैसे आरएसएस सांप्रदायिक है, लेकिन कट्टरपंथी नहीं है।
- कट्टरपंथी प्राचीन अतीत के वास्तविक पुनरुत्थान का गंभीरता से आग्रह करते हैं। साम्प्रदायिकतावादी अतीत को विचारधारा या पुरानी यादों के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं, लेकिन उनकी नज़र स्पष्ट रूप से आधुनिक दुनिया पर टिकी होती है।
- कट्टरपंथी अत्यधिक धार्मिक होते हैं, उनकी पूरी विचारधारा धर्म से जुड़ी होती है और वे राज्य, समाज और व्यक्ति के दैनिक जीवन को धर्म पर आधारित करना चाहते हैं। जबकि सांप्रदायिकों का धर्म से बहुत कम लेना-देना होता है, सिवाय इसके कि वे अपनी राजनीति धार्मिक पहचान पर आधारित करते हैं और इस प्रकार राजनीतिक सत्ता के संघर्ष के लिए धर्म का उपयोग करते हैं। उदाहरण के लिए, जिन्ना एक सांप्रदायिक और अत्यंत धार्मिक व्यक्ति थे, जबकि सावरकर एक कट्टरपंथी और नास्तिक थे। सांप्रदायिक राज्य आवश्यक रूप से एक धर्मशासित राज्य नहीं होता, जैसे पाकिस्तान और बांग्लादेश।
- कट्टरपंथी पूरी दुनिया को कट्टरपंथी बनाना चाहते हैं (ईसाईकरण, इस्लामीकरण या हिंदूकरण)। जबकि सांप्रदायिकतावादी केवल अपने ही समाज को सांप्रदायिक बनाना चाहते हैं।
- कट्टरपंथी उन धर्मावलंबियों को निशाना बनाते हैं जो उनसे सहमत नहीं होते, जबकि सांप्रदायिकतावादी अन्य धार्मिक समुदायों को निशाना बनाते हैं।

निष्कर्ष

- लोकतंत्र, विकास और सामाजिक समरसता के लिए इस चुनौती का एकजुट होकर सामना करना समय की माँग है। जागरूक, शिक्षित और जागरूक नागरिकों को आगे आकर लोगों को शिक्षित करना चाहिए। जो लोग आम लोगों की भावनाओं, उनकी धार्मिक मान्यताओं और अज्ञानता का शोषण कर रहे हैं, उनका पर्दाफ़ाश ज़रूरी है। चूँकि धर्म दूसरों के प्रति सम्मान और सहिष्णुता सिखाता है, इसलिए यह कभी हिंसा नहीं सिखाता। इसलिए, विभिन्न धर्मों का अस्तित्व सांप्रदायिकता को जन्म नहीं देता। कट्टरवाद और सांप्रदायिकता ही इसे विकृत कर रहे हैं।
- यदि राजनीतिक प्रक्रिया को सांप्रदायिकता से मुक्त नहीं किया गया, तो हमारा लोकतंत्र स्वयं ही नष्ट हो जाएगा। लोकतंत्र का विकल्प फासीवाद या तानाशाही है। कई देशों का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि फासीवाद और तानाशाही न तो बहुसंख्यकों के लिए और न ही अल्पसंख्यकों के लिए अच्छी हैं।
- अतः भारत में सांप्रदायिकता की समस्या से मुक्ति पाने के लिए सामूहिक प्रयास आवश्यक हैं। सभी को अपने-अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना होगा। यदि हम ऐसा करेंगे तो निश्चय ही सद्भावना स्थापित होगी। सभी समृद्ध होंगे। यह अवश्य किया जाना चाहिए; यही महात्मा गांधी का स्वतंत्र भारत का स्वप्न था। वैश्वीकरण को एक उपकरण के रूप में अपनाकर सांप्रदायिकता का मुकाबला किया जा सकता है। वैश्वीकृत विश्व में सभी देश एकीकृत और एक-दूसरे पर निर्भर होते जा रहे हैं। लोगों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर आना-जाना बहुत आसान होता जा रहा है। ऐसे में संभावित हिंसा से बचने के लिए सरकारें पहले से ही प्रदर्शनों, कार्यक्रमों, हेरिटेज वॉक, छात्रों और सांसदों द्वारा सांस्कृतिक यात्राओं के माध्यम से सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा दे रही हैं। विचारों के सुगम आदान-प्रदान के लिए एक-दूसरे की स्थानीय भाषा सीखने को बढ़ावा दिया जा रहा है।

क्षेत्रवाद

- क्षेत्रवाद, एक राजनीतिक विचारधारा है जो किसी विशेष क्षेत्र या क्षेत्र समूह के हितों पर केंद्रित होती है। क्षेत्रवाद, लोगों के अपने क्षेत्र, संस्कृति, भाषा आदि के प्रति प्रेम से जुड़े राजनीतिक गुणों को अपनी स्वतंत्र पहचान बनाए रखने के उद्देश्य से तलाशता है।
- इसके अलावा, क्षेत्रवाद एक राजनीतिक आंदोलन है जो विकास के क्षेत्रीय उद्देश्यों को आगे बढ़ाने का प्रयास करता है। एक प्रक्रिया के रूप में, यह राष्ट्र के भीतर और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी भूमिका निभाता है।
- दोनों प्रकार के क्षेत्रवाद के अलग-अलग अर्थ हैं और इनका समाज, राजनीति, कूटनीति, अर्थव्यवस्था, सुरक्षा, संस्कृति, विकास, वार्ता आदि पर सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
- राष्ट्रीय स्तर पर क्षेत्रवाद शब्द का अर्थ एक ऐसी प्रक्रिया से है जिसमें उप-राज्यीय कारक तेजी से शक्तिशाली होते जाते हैं।

- इसके अलावा, क्षेत्रवाद का अर्थ है पूरे देश के विरुद्ध किसी विशेष क्षेत्र या राज्य के प्रति गहरा लगाव। यह भावना या तो किसी विशेष क्षेत्र की निरंतर उपेक्षा के कारण उत्पन्न होती है, या फिर किसी विशेष क्षेत्र के लोगों के राजनीतिक रूप से जागरूक होने और कथित भेदभाव के विरुद्ध लड़ने की इच्छा के कारण।
- फ्लेंस के अनुसार, क्षेत्रवाद किसी क्षेत्र के प्रभाव को बढ़ाता है और विकेंद्रीकरण और हस्तांतरण जैसे शांतिवादी तरीकों के साथ-साथ अलगाववाद या यहाँ तक कि स्वतंत्रता संग्राम जैसे अधिक आक्रामक तरीकों से उसकी राजनीतिक शक्ति को बढ़ाता है। उदाहरण के लिए, तेलंगाना, गोरखा क्षेत्रीय प्रशासन, विदर्भ क्षेत्र, उत्तर प्रदेश में बुंदेलखंड क्षेत्र जैसे अलग राज्य की माँग और यहाँ तक कि भाषाई आधार पर अलग राज्यों की शुरुआती माँग भी।
- इकबाल नारायण ने भारत में क्षेत्रवाद के तीन प्रमुख प्रकारों की पहचान की है।
- **अधिराज्यीय क्षेत्रवाद** : यह साझा हितों के मुद्दों के इर्द-गिर्द निर्मित होता है जिसमें राज्यों का समूह एक साझा राजनीतिक गठबंधन बनाता है, जो अन्य राज्यों या संघ के समान गठबंधन के विरुद्ध निर्देशित होता है। यह मुद्दा-विशिष्ट होता है। दक्षिणी राज्यों में द्रविड़ आंदोलन इसका एक उदाहरण है।
- **अंतर्राज्यीय क्षेत्रवाद:** यह राज्य की सीमाओं के साथ सह-अस्तित्व में है और इसमें एक या एक से अधिक राज्य पहचानों को एक दूसरे या विशिष्ट मुद्दों के विरुद्ध खड़ा करना शामिल है, जो उनके हितों के लिए खतरा पैदा करते हैं। सामान्य रूप से नदी जल और विशेष रूप से सीमा विवाद इसकी अभिव्यक्तियाँ हैं। यह कावेरी जल बंटवारे को लेकर कर्नाटक और तमिलनाडु के बीच संघर्ष, या महाराष्ट्र और कर्नाटक के बीच सीमा विवाद से स्पष्ट है।
- **अंतर-राज्यीय क्षेत्रवाद:** इसमें एक क्षेत्रीय समुदाय उस राज्य के विरुद्ध होता है जिसमें वह स्थित होता है। इसका उद्देश्य आत्म-पहचान और आत्म-विकास सुनिश्चित करना होता है। उदाहरण: खालिस्तान आंदोलन।

ऐतिहासिक विवरण

स्वतंत्रता (1947) के बाद से, यदि उससे पहले नहीं, तो भारतीय राजनीति में क्षेत्रवाद शायद सबसे शक्तिशाली शक्ति रहा है। यह 1960 के दशक के उत्तरार्ध से कई राज्यों पर शासन करने वाले कई क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का मुख्य आधार रहा है।

स्वतंत्रता के बाद के चरणों में राज्य के माध्यम से क्षेत्रीय पहचान को समायोजित करने के तीन स्पष्ट पैटर्न देखे जा सकते हैं।

- 1950 और 1960 के दशक में, तीव्र (जातीय) जन-आंदोलन, जो अक्सर हिंसक रूप धारण कर लेता था, राज्य के दर्जे के लिए एक संस्थागत पैकेज के साथ राज्य की प्रतिक्रिया के पीछे मुख्य शक्ति था। भारत के दक्षिण में आंध्र प्रदेश ने रास्ता दिखाया। 1952 में प्रसिद्ध (तेलुगु) नेता पोट्टी श्रीरामुलु द्वारा मद्रास प्रेसीडेंसी से अलग तेलुगु-भाषियों के लिए एक राज्य की स्थापना के लिए किए गए आमरण अनशन ने, अन्यथा अनिच्छुक, शीर्ष राष्ट्रवादी नेता जवाहरलाल नेहरू को भी हिला दिया और इसके बाद फजल अली के नेतृत्व में राज्य पुनर्गठन आयोग का गठन हुआ जिसने राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 का मार्ग प्रशस्त किया।
- 1970 और 1980 के दशक में, पुनर्गठन का मुख्य केंद्र भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र था। पुनर्गठन का आधार अलगाव और राज्य के दर्जे के लिए आदिवासी विद्रोह था। केंद्र सरकार की मुख्य संस्थागत प्रतिक्रिया पूर्वोत्तर राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1971 थी, जिसके तहत मणिपुर और त्रिपुरा केंद्र शासित प्रदेशों और मेघालय उप-राज्य को पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया, और मिज़ोरम और अरुणाचल प्रदेश (तत्कालीन आदिवासी ज़िले) को केंद्र शासित प्रदेश बनाया गया। ये दोनों 1986 में राज्य बन गए। गोवा (कोंकणी भाषा (8वीं अनुसूची) पर आधारित), जो 1987 में राज्य बना, एकमात्र अपवाद था।
- तीन नए राज्यों (2000 में निर्मित) - मध्य प्रदेश से छत्तीसगढ़, बिहार से झारखंड और उत्तर प्रदेश से उत्तरांचल - के लिए आंदोलन लंबे समय तक चले, लेकिन 1990 के दशक में ये ज़ोरदार हो गए। और सबसे हालिया आंदोलन, हम आंध्र प्रदेश के विभाजन और एक अलग तेलंगाना राज्य के गठन के रूप में देख सकते हैं, जिसकी शुरुआत 1950 के दशक में हुई थी।

क्षेत्रवाद के कारण

ऐतिहासिक और सांस्कृतिक

- इतिहास का कारक सांस्कृतिक विरासत, लोककथाओं, मिथकों और प्रतीकात्मकता के माध्यम से क्षेत्रवाद को मज़बूत करता है। ऐतिहासिक शक्तियाँ अंतर-क्षेत्रीय और अंतःक्षेत्रीय स्तरों पर क्षेत्रीय जागरूकता को बढ़ावा देने में उत्प्रेरक का काम करती हैं, खासकर साझा सामाजिक-सांस्कृतिक अनुभवों और एक ही अतीत की स्मृतियों के कारण।
- किसी विशेष सांस्कृतिक समूह के लोग स्थानीय नायकों के महान कार्यों और गौरवशाली उपलब्धियों से भी प्रेरणा प्राप्त करते हैं।
- रीति-रिवाजों, पारंपरिक तौर-तरीकों, मूल्यों और विभिन्न संस्थागत परिसरों; सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक, के माध्यम से संचालित सांस्कृतिक शक्तियों ने ऐतिहासिक स्मृतियों को सुदृढ़ करने में मदद की है और विभिन्न क्षेत्रीय समूहों के मानसिक स्वरूप और व्यवहार पैटर्न के विशिष्ट रूपों को निर्धारित किया है।

जनसांख्यिकीय

हाल के दिनों में, अवांछित प्रवासन ने क्षेत्र की जनसांख्यिकी में असंतुलन पैदा कर दिया है। इससे मूल निवासियों की बुनियादी आर्थिक गतिविधियाँ और जातीय पहचान प्रभावित हुई है। इसका प्रमाण हाल ही में असम में बांग्लादेश से आए अवैध प्रवासियों के खिलाफ अपनी असमी पहचान का दावा करते हुए हुए विरोध प्रदर्शनों में देखा जा सकता है।

आर्थिक

- किसी देश के क्षेत्रवाद को आकार देने में अर्थशास्त्र की प्रमुख भूमिका होती है। आज़ादी के बाद से दर्ज की गई अनेक उपलब्धियों के बावजूद, भारत आर्थिक रूप से अविकसित है। संसाधन दुर्लभ हैं और माँगें अत्यधिक हैं तथा निरंतर जनसंख्या विस्फोट के कारण लगातार बढ़ रही हैं। तकनीकी ज्ञान की कमी, भ्रष्टाचार और बिगड़ती कानून-व्यवस्था ने देश के राजनीतिक-आर्थिक जीवन में एक निराशाजनक स्थिति पैदा कर दी है।
- आर्थिक दृष्टि से, क्षेत्रवाद आंतरिक उपनिवेशवाद की किसी वास्तविक या कथित भावना का परिणाम है, जो कुविकास या विषम विकास का परिणाम है। क्षेत्रवाद विकासात्मक गतिविधियों के लाभों के असमान बंटवारे की प्रतिक्रिया है।

क्षेत्रीय असमानता के कारण

- **आर्थिक विकास की निम्न दर:** स्वतंत्रता के बाद से भारत की आर्थिक वृद्धि दर में उतार-चढ़ाव रहा है। लेकिन उच्च जनसंख्या वृद्धि के कारण, आर्थिक विकास पूरी गति से विकास को गति देने के लिए पर्याप्त नहीं रहा है।
- **राज्यों का सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक संगठन :** राज्य पर्याप्त भूमि सुधार करने में असमर्थ रहे हैं और सामंती मानसिकता अभी भी कायम है। आज़ादी के बाद भूदान और ग्रामदान आंदोलन उत्साहपूर्वक नहीं चलाए गए और यहाँ तक कि 'भूमि बैंकों' के अंतर्गत भूमि का वितरण भी कुशलतापूर्वक नहीं किया गया। पिछड़े राज्यों में राजनीतिक गतिविधियाँ वोट बैंक की राजनीति तक सीमित रहीं और घोटालों ने इस प्रक्रिया को और भी बिगाड़ दिया।
- **पिछड़े राज्यों में अपर्याप्त बुनियादी ढाँचागत सुविधाएँ :** बिजली वितरण, सिंचाई सुविधाएँ, सड़कें, कृषि उपज के लिए आधुनिक बाज़ार जैसे बुनियादी ढाँचे के विकास का स्तर पिछड़ा रहा है। ये सभी राज्य सूची के विषय हैं।
- **शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वच्छता पर राज्यों द्वारा अपर्याप्त सामाजिक व्यय :** ये विषय मानव संसाधन विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं। जिन राज्यों ने इन विषयों पर भारी निवेश किया है, वे आश्चर्यजनक रूप से विकसित राज्य हैं। उदाहरण के लिए, तमिलनाडु, केरल आदि, जहाँ प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों में स्वास्थ्य सेवाएँ अन्य राज्यों के लिए एक मानक बन गई हैं।
- **राजनीतिक और प्रशासनिक विफलताएँ:** यह तनाव का एक स्रोत है और अलग राज्यों के लिए उप-क्षेत्रीय आंदोलनों को जन्म देती है। झारखंड, छत्तीसगढ़, उत्तराखंड और हाल ही में तेलंगाना इन्हीं विफलताओं का परिणाम हैं। विदर्भ, सौराष्ट्र, दार्जिलिंग और बोडोलैंड जैसी कई माँगें अभी भी विचाराधीन हैं। ये विफलताएँ निजी क्षेत्र के लोगों का विश्वास भी कमज़ोर करती हैं और राज्यों में निवेशकों को आकर्षित नहीं करती हैं।
- **बेहतर राज्यों के विकल्प का दावा:** कभी-कभी बेहतर विकसित क्षेत्र अपने संसाधनों को अविकसित क्षेत्र में स्थानांतरित करने का विरोध करते हैं, उदाहरण के लिए हरित क्रांति से लाभान्वित क्षेत्र द्वारा हरित प्रदेश की मांग

मृदा पुत्र सिद्धांत

- 'भूमिपुत्र' सिद्धांत क्षेत्रवाद के एक रूप की व्याख्या करता है, जो 1950 से चर्चा में है। इसके अनुसार, एक राज्य विशेष रूप से उसमें रहने वाले मुख्य भाषाई समूह का होता है या यह कि राज्य अपने मुख्य भाषा बोलने वालों, जो भूमिपुत्र या स्थानीय निवासी हैं, की अनन्य मातृभूमि का गठन करता है।

कारण

प्रवासी और स्थानीय शिक्षित मध्यम वर्ग के युवाओं के बीच नौकरी के लिए प्रतिस्पर्धा बनी हुई है। यह सिद्धांत ज्यादातर शहरों में काम करता है, क्योंकि यहां बाहरी लोगों को भी शिक्षा, स्वास्थ्य, नौकरी आदि के अवसर मिलते हैं।

ऐसे सिद्धांतों में, लोगों की प्रमुख भागीदारी बढ़ती आकांक्षाओं के कारण बेहतर संसाधन पहुंच, जीवन की गुणवत्ता के कारण होती है।

पर्याप्त रोजगार के अवसर पैदा करने में अर्थव्यवस्था की विफलता भूमिपुत्र सिद्धांतों को रेखांकित करती है और असंतोष को भी बढ़ाती है।

भाषा

- भाषा एक सशक्त सांस्कृतिक शक्ति है जो किसी राष्ट्र की एकता और विविधता को बनाए रखती है और परिभाषित करती है। भाषाई एकरूपता सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही अर्थों में क्षेत्रीयता को मज़बूत करती है, सकारात्मक अर्थों में एकता की मज़बूती के रूप में और नकारात्मक अर्थों में भावनात्मक उन्माद के माध्यम से।

राज्यों का भाषाई पुनर्गठन

- क्षेत्रवाद की प्रारंभिक आवाज भाषा के कारण आई, इसीलिए 1950 के दशक में राज्य पुनर्गठन आयोग ने भाषा के आधार पर राज्यों के गठन की सिफारिश की।
- यह स्वतंत्रता सेनानी और महात्मा गांधी के समर्पित अनुयायी पोट्टी श्रीरामुलु की मांग थी, जिसके कारण आंध्र प्रदेश राज्य का निर्माण हुआ और भारत में राज्यों को भाषाई मान्यता मिली।
- श्रीरामुलु की मृत्यु के बाद जवाहरलाल नेहरू को देश के अन्य हिस्सों से भी ऐसी ही माँगें उठाने के लिए मजबूर होना पड़ा। परिणामस्वरूप, 1954 में फजल अली की अध्यक्षता में एक राज्य पुनर्गठन समिति का गठन किया गया, जिसने भाषा के आधार पर 16 नए राज्यों और 3 केंद्र शासित प्रदेशों के गठन की सिफारिश की।
- हालाँकि, अंतर-राज्यीय क्षेत्रवाद आम भाषा के बंधन को दरकिनार कर देता है, जहाँ उप-क्षेत्र की आर्थिक शिकायतें भाषा से अधिक महत्वपूर्ण हो जाती हैं।

भौगोलिक

- भौगोलिक सीमाओं पर आधारित प्रादेशिक अभिविन्यास किसी विशेष क्षेत्र के निवासियों से संबंधित होता है, जो कम से कम भारतीय संदर्भ में प्रतीकात्मक है। भौगोलिक सीमाओं के साथ भाषाई वितरण के कारण ऐसा और भी अधिक है। स्थलाकृतिक और जलवायु संबंधी विविधताओं के साथ-साथ बसावट के स्वरूप में अंतर लोगों में क्षेत्रवाद की अवधारणा को जन्म देता है।

राज्य के बजाय क्षेत्र: एक सांस्कृतिक इकाई

- इस पहलू को भाषा के एकात्मक पहलू से परे संस्कृति के व्यापक अर्थ में देखा जा सकता है। भाषाई या विकासात्मक आधार पर सीमांकित राज्यों में सीमा पार सांस्कृतिक समानताएँ हो सकती हैं। राज्य राजनीतिक विचारों से निर्मित एक रचना है और यह आवश्यक नहीं कि वह हमेशा एक सांस्कृतिक रचना ही हो।
- पूर्वोत्तर में संघर्ष इसी पहलू की अभिव्यक्ति है। 'ग्रेट नागालिम' की नियमित आवाज़ आस-पास के राज्यों में फैलते सांस्कृतिक जुड़ाव की ज़रूरत को दर्शाती है।
- संस्कृति का अर्थ ही अस्पष्ट है, जिसमें भोजन, रीति-रिवाज, विश्वास, वेशभूषा आदि के अनेक पहलू समाहित होते हैं। इससे राज्य को एक छिद्रपूर्ण स्वरूप प्राप्त होता है, जिसका राजनीतिक लाभ के लिए दोहन किया जा सकता है।

राजनीतिक

- राजनीतिक दल, खासकर क्षेत्रीय राजनीतिक दल और स्थानीय नेता, क्षेत्रीय भावनाओं और क्षेत्रीय अभावों का फायदा उठाकर उन्हें अपने गुटीय समर्थन आधार को मजबूत करने के लिए प्रेरित करते हैं। वे अपने चुनावी घोषणापत्र में क्षेत्रीय समस्याओं को जगह देते हैं और राजनीतिक एवं क्षेत्रीय विकास का वादा करते हैं।
- क्षेत्रवाद को प्रतिबिंबित करने वाले कुछ प्रमुख राजनीतिक आंदोलन और घटनाओं का वर्णन यहां नीचे दिया गया है...

द्रविड़ नाडु की मांग

- भारत में क्षेत्रवाद की यात्रा पर वापस जाएं तो यह ध्यान देने योग्य है कि यह द्रविड़ आंदोलन के साथ उभरा, जो 1925 में तमिलनाडु में शुरू हुआ था। यह आंदोलन, जिसे 'आत्म-सम्मान आंदोलन' के रूप में भी जाना जाता है, शुरू में दलितों, गैर-ब्राह्मणों और गरीब लोगों को सशक्त बनाने पर केंद्रित था।
- बाद में, यह गैर-हिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी को एकमात्र आधिकारिक भाषा के रूप में थोपने के खिलाफ खड़ा हुआ। लेकिन अपने अलग द्रविड़िस्तान या द्रविड़नाडु बनाने की मांग ने इसे एक अलगाववादी आंदोलन बना दिया। 1960 के दशक की शुरुआत में ही द्रमुक ने प्रस्ताव रखा था कि मद्रास, आंध्र प्रदेश, केरल और मैसूर राज्यों को भारतीय संघ से अलग होकर एक स्वतंत्र 'द्रविड़नाडु गणराज्य' बनाना चाहिए।

तेलंगाना आंदोलन

- आंध्र प्रदेश के गठन के बाद के वर्षों में, तेलंगाना के लोगों ने समझौतों और गारंटियों के कार्यान्वयन पर असंतोष व्यक्त किया।
- 1956 के जेंटलमैन समझौते के प्रति असंतोष जनवरी 1969 में तीव्र हो गया, जब जिन गारंटियों पर सहमति बनी थी, वे समाप्त होने वाली थीं।
- सरकारी कर्मचारियों और राज्य विधान सभा के विपक्षी सदस्यों ने आंदोलन का नेतृत्व करने वाले छात्रों के समर्थन में 'सीधी कार्रवाई' की धमकी दी।
- तब से चल रहा यह आंदोलन अंततः 2 जून 2014 को पृथक तेलंगाना राज्य के गठन के साथ समाप्त हुआ।
- यह ध्यान देने योग्य है कि दोनों क्षेत्रों के बीच असमानता की जड़ें औपनिवेशिक शासन में थीं। आंध्र पर सीधे राजशाही का शासन था, जबकि तेलंगाना पर हैदराबाद के निज़ाम का शासन था, जो उतने कुशल शासक नहीं थे। इसलिए समय के साथ आंध्र, तेलंगाना की तुलना में अधिक विकसित हुआ।

कन्नड़ लोगों के खिलाफ शिवसेना

- 1966 में, महाराष्ट्र में शिवसेना ने मराठी गौरव के नाम पर कन्नड़ लोगों के खिलाफ आंदोलन शुरू किया। इस आंदोलन के शुरुआती निशाने पर मुंबई के उडुपी होटलों में काम करने वाले दक्षिण भारतीय थे। इस आंदोलन को सीमावर्ती इलाकों में मराठी भाषी लोगों पर हुए लाठीचार्ज का प्रतिशोध बताया गया। हालाँकि, यह उन्माद बिना किसी अप्रिय संभावित परिणाम के शांत हो गया।

असम में बोडोलैंड की मांग

- बोडो आंदोलन का नेतृत्व असम बोडो छात्र संघ कर रहा है, जो अलग राज्य की मांग कर रहा है और अपनी मांग को पूरा करने के लिए उसने बड़े पैमाने पर हिंसा और कई बंद का सहारा लिया है।

- असम आंदोलन का एक मूल कारण शिक्षा, खासकर उच्च शिक्षा का विस्तार है, लेकिन औद्योगीकरण और अन्य रोज़गार सृजन संस्थानों के अभाव के कारण पिछड़े इलाकों में शिक्षित बेरोज़गार युवाओं की संख्या बढ़ रही है। ये निराश युवा दूसरे देशों और राज्यों से आने वाले लोगों के ख़िलाफ़ चल रहे आंदोलनों के बहकावे में आ रहे हैं, जिन्हें परजीवी के रूप में पेश किया जाता है जो उनकी नौकरियों को निगल रहे हैं।

Khalistan Movement

- 1980 के दशक में ही भारत और पाकिस्तान के पंजाब क्षेत्र में खालिस्तान आंदोलन का उदय हुआ, जिसका उद्देश्य एक सिख मातृभूमि, जिसे अक्सर खालिस्तान कहा जाता है, की स्थापना करना था। दरअसल, इस मांग में सांप्रदायिकता का रंग भी है, क्योंकि यह मांग केवल सिखों के लिए थी।

उल्फा द्वारा बिहारी मजदूरों पर हमले

- 2003 में, उल्फा पर बिहार में एक ट्रेन में कई असमिया लड़कियों के साथ छेड़छाड़ और बलात्कार के जवाब में बिहार के मज़दूरों की हत्या का आरोप लगा था। इस घटना ने असम में बिहार विरोधी भावना को जन्म दिया, जो कुछ महीनों बाद ही शांत हो गई।

मनसे द्वारा उत्तर भारतीयों को निशाना बनाना

- 2008 में महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना (मनसे) के कार्यकर्ताओं ने उत्तर भारतीयों के खिलाफ हिंसक आंदोलन शुरू किया था। भोजपुरी फिल्मों को महाराष्ट्र के सिनेमाघरों में चलने नहीं दिया गया। उनके निशाने पर महाराष्ट्र के विभिन्न इलाकों में उत्तर भारत के विक्रेता और दुकानदार थे।

अंतर-राज्यीय विवाद

- भारत में क्षेत्रवाद का एक और रूप अंतर्राज्यीय विवादों के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। सीमा विवाद हैं, उदाहरण के लिए, कर्नाटक और महाराष्ट्र के बीच बेलगाम को लेकर, जहाँ मराठी भाषी आबादी कन्नड़ भाषी लोगों से घिरी हुई है, केरल और कर्नाटक के बीच कासरगोड को लेकर, और असम और नागालैंड के बीच रेंगमा आरक्षित वनों को लेकर। पंजाब और हरियाणा में चंडीगढ़ को लेकर विवाद है।
- जल संसाधन के उपयोग से संबंधित पहला महत्वपूर्ण विवाद तीन नदियों, मुख्यतः नर्मदा, कृष्णा और कावेरी, के जल के उपयोग को लेकर था, जिसमें मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र राज्य शामिल थे। तमिलनाडु, केरल और कर्नाटक राज्यों के बीच कावेरी जल के उपयोग को लेकर भी विवाद उत्पन्न हुए। रावी नदी के जल के उपयोग को लेकर पंजाब, राजस्थान और हिमाचल प्रदेश के बीच विवाद है। हरियाणा और पंजाब के बीच एसवाईएल-सतलुज यमुना लिंक का मुद्दा मंडरा रहा है।

भारत में क्षेत्रवाद का प्रभाव

सकारात्मक

- ऐसा माना जाता है कि यदि देश की राजनीतिक व्यवस्था द्वारा क्षेत्रों की मांगों को समायोजित किया जाए तो क्षेत्रवाद राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- राज्य का दर्जा या राज्य स्वायत्तता के संदर्भ में क्षेत्रीय मान्यता उस विशेष क्षेत्र के लोगों को आत्मनिर्णय का अधिकार देती है और वे सशक्त और खुश महसूस करते हैं।
- भारत में क्षेत्रीय पहचानों ने हमेशा राष्ट्रीय पहचान के विरोध में या उसकी कीमत पर खुद को परिभाषित नहीं किया है, इस तरह की प्रक्रिया का एक लोकतांत्रिक प्रभाव यह देखा गया है कि भारत का प्रतिनिधि लोकतंत्र उन लोगों के करीब पहुंच गया है जो अधिक शामिल महसूस करते हैं और स्थानीय और क्षेत्रीय शासन की संस्थाओं के लिए अधिक चिंता दिखाते हैं।
- उदाहरण के लिए: 1985 में गठित त्रिपुरा जनजातीय स्वायत्त जिला परिषद (टीटीएडीसी) ने पूर्व अलगाववादियों को राजनीतिक मुख्यधारा में शामिल होने के लिए एक लोकतांत्रिक मंच प्रदान करके राज्य में अन्यथा खतरे में पड़ी

जनजातीय पहचान की रक्षा की है और इस प्रकार राज्य में राजनीतिक उग्रवाद के आधार को काफी हद तक कम किया है।

- सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता को भी उचित सम्मान दिया जाता है और इससे क्षेत्रीय लोगों को अपनी संस्कृति का पालन करने में भी मदद मिलती है।

नकारात्मक

- क्षेत्रवाद को अक्सर राष्ट्र के विकास, प्रगति और एकता के लिए एक गंभीर खतरे के रूप में देखा जाता है। इसके परिणामस्वरूप विद्रोही समूह देश की मुख्यधारा की राजनीतिक-प्रशासनिक व्यवस्था के विरुद्ध क्षेत्रवाद की भावनाओं को फैलाकर आंतरिक सुरक्षा के लिए चुनौतियाँ पैदा करते हैं।
- क्षेत्रवाद निश्चित रूप से राजनीति को प्रभावित करता है क्योंकि गठबंधन सरकारों और गठबंधनों का दौर चल रहा है। क्षेत्रीय माँगें राष्ट्रीय माँगें बन जाती हैं, क्षेत्रीय माँगों को पूरा करने के लिए नीतियाँ बनाई जाती हैं और आमतौर पर उन्हें देश के सभी हिस्सों में लागू किया जाता है, इसलिए राष्ट्रीय नीतियों पर अब क्षेत्रीय माँगें हावी हो जाती हैं। उदाहरण के लिए, गन्ने पर न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) महाराष्ट्र के किसानों के लिए मददगार था, लेकिन इसे सभी राज्यों में लागू कर दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश, पंजाब और हरियाणा के किसान आंदोलन कर रहे हैं। इस बीच, इसने मंत्रियों के बीच दलबदल का बीज बोया और संबंधित मंत्री को निशाना बनाया।
- कुछ क्षेत्रीय नेता भाषा, संस्कृति आदि के आधार पर वोट बैंक की राजनीति करते हैं जो निश्चित रूप से स्वस्थ लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के विरुद्ध है। इससे हमेशा अलग राज्य की मांग उठती है और यह देखा गया है कि छोटे-छोटे राज्य बनाने के बाद केवल कुछ ही राजनीतिक नेता कुशल सरकार चला पाते हैं, अन्यथा गठबंधन सरकारें चलती हैं जिससे अंततः प्रशासनिक तंत्र अप्रभावी हो जाता है।
- विकास योजनाओं को असमान रूप से क्रियान्वित किया जाता है, तथा केवल उन क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है जो प्रभावशाली नेताओं से संबद्ध हैं, तथा लाभान्वित होते हैं, जिससे शेष क्षेत्रों में अशांति उत्पन्न होती है।
- क्षेत्रवाद, अंतर्राष्ट्रीय कूटनीति में भी एक बाधा बन जाता है, जैसा कि 2013 में हमने देखा था कि कैसे तमिलनाडु के क्षेत्रीय दल श्रीलंका में राष्ट्रमंडल देशों की बैठक (CHOGM) में भारत के प्रधानमंत्री के शामिल होने के ख़िलाफ़ थे। इन कार्रवाइयों का सीधा असर भारत के श्रीलंका या अन्य मंचों के देशों के साथ संबंधों पर पड़ता है, या पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा भूमि सीमा समझौते और तीस्ता नदी जल बंटवारे पर सहमति न देने के मामले में, जबकि केंद्रीय स्तर के नेता ऐसा करने के लिए तैयार थे।
- **क्षेत्रवाद के कुछ और निहितार्थ: एक विश्लेषणात्मक परिप्रेक्ष्य**

एकता और क्षेत्रीय अखंडता

- क्षेत्रवाद एक ऐसी प्रथा है जिसमें जनता राष्ट्रीय हितों की तुलना में क्षेत्रीय हितों, क्षेत्रीय संस्कृति और क्षेत्रीय विचारों का समर्थन करती है और उनका विरोध करती है। भारत में क्षेत्रवाद राष्ट्रीय एकीकरण का एक हिस्सा है जो एक सतत प्रक्रिया है क्योंकि भारत एक राष्ट्र के रूप में उभर रहा है। स्वतंत्रता के समय से भारत क्रमशः 14 राज्यों से 29 राज्यों में विभाजित हो गया।
- इनमें से अधिकांश राज्य क्षेत्रीय आकांक्षाओं के आधार पर बने थे। आंध्र प्रदेश, गुजरात, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश जैसे भाषा-आधारित राज्यों ने क्षेत्रीय भाषा के विरोध का नेतृत्व किया। परिणामस्वरूप, आज़ादी के छह दशक बाद भी हमारी कोई राष्ट्रीय भाषा नहीं है। अलगाववादी प्रवृत्तियों ने द्रविड़स्तान जैसे अलग देश और नागालैंड व मिज़ोरम जैसे पूर्वोत्तर राज्यों की स्वतंत्रता की माँग को हवा दी। इसने सशस्त्र विद्रोह, उग्रवाद और विद्रोह को बढ़ावा दिया जो आज भी जारी है। इसके अलावा, क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के उदय ने लोगों की क्षेत्रीय पहचान को बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया और उन्हें क्षेत्रीय आधार पर ध्रुवीकृत किया।

- हालाँकि क्षेत्रवाद के कई दुष्परिणाम हैं, लेकिन यह संघीय राजनीति का एक अभिन्न अंग है जिसे हमने अपनाया है। यह उप-राष्ट्रवाद मात्र है और हमारी राष्ट्रीय एकता के आड़े नहीं आता। क्षेत्रवाद, क्षेत्रीय संस्कृति की विशिष्टता का सम्मान करने और विविधता में एकता बनाए रखने का एक तरीका है। भारतीय संविधान के सभी भागों में एकता और अखंडता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए पर्याप्त प्रावधान हैं। एकल नागरिकता और धर्मनिरपेक्षता नागरिकों में सामूहिकता की भावना को बढ़ावा देने के लिए हैं।

भाषाई राज्य और भारतीय एकता

- 1950 के दशक के शुरुआती दौर में, प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू समेत कई लोगों को डर था कि भाषाई आधार पर राज्यों का गठन भारत के और अधिक विभाजन की ओर ले जाएगा। दरअसल, हुआ कुछ उल्टा ही। भारतीय एकता को कमज़ोर करने के बजाय, भाषाई राज्यों ने उसे मज़बूत करने में मदद की है। एक ही समय में कन्नड़ और भारतीय, बंगाली और भारतीय, तमिल और भारतीय, गुजराती और भारतीय होना पूरी तरह से एकरूप साबित हुआ है। बेशक, भाषाई आधार पर ये राज्य कभी-कभी आपस में झगड़ते भी हैं। हालाँकि ये विवाद अच्छे नहीं हैं, लेकिन वास्तव में ये कहीं ज़्यादा बुरे हो सकते थे।
- अंतर्राष्ट्रीय राजनीति से मिले साक्ष्य जैसे कि उसी वर्ष, 1956 में, जब एसआरसी ने भारत के मानचित्र को भाषाई आधार पर पुनः बनाने का आदेश दिया था, सीलोन (तब श्रीलंका इसी नाम से जाना जाता था) की संसद ने उत्तर के तमिलों के विरोध के बावजूद सिंहली को देश की एकमात्र आधिकारिक भाषा घोषित किया। एक वामपंथी सिंहली सांसद ने कट्टरपंथियों को एक भविष्यसूचक चेतावनी दी। उन्होंने कहा, "एक भाषा, दो राष्ट्र", और आगे कहा: "दो भाषाएँ, एक राष्ट्र"।
- श्रीलंका में 1983 से चल रहा गृहयुद्ध आंशिक रूप से बहुसंख्यक भाषाई समूह द्वारा अल्पसंख्यकों के अधिकारों के हनन पर आधारित है। भारत का एक और पड़ोसी देश, पाकिस्तान, 1971 में विभाजित हो गया क्योंकि उसके पश्चिमी हिस्से के पंजाबी और उर्दू भाषी पूर्वी बंगालियों की भावनाओं का सम्मान नहीं करते थे। भाषाई राज्यों के गठन ने ही भारत को इससे भी बदतर स्थिति से बचाया है। अगर भारतीय भाषाई समुदायों की आकांक्षाओं की अनदेखी की गई होती, तो हमारे पास शायद यही होता- "एक भाषा, चौदह या पंद्रह राष्ट्र।"

क्षेत्रवाद और राष्ट्रवाद

- आधुनिक भारत के इतिहासकारों ने इस बात पर प्रकाश डाला है कि किस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी से ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरुद्ध भारतीय राष्ट्रवाद के विकास ने विभिन्न क्षेत्र-आधारित भाषाई राष्ट्रीयताओं में पहचान और आत्मनिर्णय के लिए तीव्र जागृति को जन्म दिया, जो प्रायः अखिल भारतीय राष्ट्रवाद के विरोध में थी।
- पूरे भारत से लोगों को संगठित करने के लिए, मुख्यधारा के राष्ट्रवाद के नेताओं को स्थानीय नेताओं को पहचानना और संगठित करना पड़ा, उन्हें स्थानीय भाषाओं में लोगों तक पहुँचना पड़ा। जन-आंदोलन तभी संभव था जब लोग अपनी क्षेत्रीय आवश्यकताओं और उनके महत्व के प्रति जागरूक हुए।
- मुख्यधारा का भारतीय राष्ट्रवाद लगातार क्षेत्रीय राष्ट्रवाद से जूझता रहा। भारत के लोगों की क्षेत्रीय पहचान के भारी बोझ तले, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC) शायद ही इससे अछूती रह पाती। धीरे-धीरे, यह वास्तव में, शक्तियों का एक अंतर-क्षेत्रीय गठबंधन बन गया। और इसी कारण से और राष्ट्रवाद की भावना को और मज़बूत करने के लिए, INC भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी वार्षिक बैठकें आयोजित करती थी, और औपनिवेशिक शोषण के विरुद्ध लोगों की चेतना जगाती थी।

राष्ट्रीय राजनीति

- भारतीय राजनीति में क्षेत्रवाद तेज़ी से भारत के विभिन्न राज्यों में फैल रहा है। यह भारतीय राजनीतिक दलीय व्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता बन गया है। क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के उदय ने हमारे लोकतांत्रिक देश की क्षेत्रीय, राज्यीय और यहाँ तक कि राष्ट्रीय राजनीति में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

- एक क्षेत्रीय राजनीतिक दल आमतौर पर अपनी गतिविधियों को किसी राज्य या क्षेत्र की सीमा तक ही सीमित रखता है। यह अक्सर किसी विशेष क्षेत्रीय समूह, भाषाई समूह, जातीय समूह या सांस्कृतिक समूह के हितों का प्रतिनिधित्व करता है। अपनी नीतियाँ बनाते समय ये क्षेत्रीय राजनीतिक दल अक्सर वैचारिक अखंडता का परिचय देते हैं। आमतौर पर इनकी राष्ट्रीय राजनीति में भाग लेने में रुचि नहीं होती। बल्कि कभी-कभी ये राष्ट्रीय राजनीति या केंद्र सरकार के प्रति उग्रवादी रवैया दिखाते हैं। इस उग्रवादी रवैये को दिखाते हुए, ये अक्सर अनैतिक राजनीतिक गतिविधियों में शामिल हो जाते हैं।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था

- 21वीं सदी के प्रारंभ से ही, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं का क्षेत्रीय ब्लॉकों में एकीकरण, इसमें शामिल राज्यों के लिए महान अवसर लेकर आया है, साथ ही राष्ट्रीय और विदेश नीतियों के लिए चुनौतियां भी लेकर आया है।
- क्षेत्रवाद के अंतर्निहित लाभ स्वायत्तता को मजबूत करना, सौदेबाजी की शक्ति में सुधार करना और व्यक्तिगत अर्थव्यवस्थाओं को बढ़ावा देना है - जो क्षेत्रवाद का वास्तविक आकर्षण है।
- हालाँकि, जब यूरोपीय संघ और आसियान जैसे देशों में अर्थव्यवस्थाओं के एकीकरण की माँग बढ़ रही है, तो भारत को भी अपनी असमान अर्थव्यवस्थाओं को एकीकृत करके आर्थिक समझदारी दिखानी होगी। हाल ही में लागू वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी), अखिल भारतीय आर्थिक एकीकरण और कृषि विपणन में ई-नाम (ई-नाम) जैसे नए विकास के साथ-साथ सहकारी संघवाद के लिए विभिन्न पहल भारत के लिए इस क्षेत्र में राजनीतिक और आर्थिक एकजुटता दिखाना अनिवार्य बनाती हैं।
- यद्यपि क्षेत्रवाद की उत्पत्ति और कारण अंतर्निहित हैं, लेकिन तेजी से वैश्वीकृत हो रही विश्व अर्थव्यवस्था पर इसका प्रभाव कम है, क्योंकि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाएं क्षेत्रीय ब्लॉकों के भीतर व्यापार और आवागमन के लिए टैरिफ और गैर-टैरिफ बाधाओं को कम करने पर जोर दे रही हैं।
- इसके अलावा, राष्ट्रीय सरकारों द्वारा अपने साझा राजनीतिक और आर्थिक हितों को आगे बढ़ाने के लिए वैकल्पिक रास्ते के रूप में क्षेत्रीय निकायों का उपयोग करने की प्रवृत्ति, क्षेत्रवाद के प्रभाव के मुद्दे को बढ़ावा देती है।

क्षेत्रीय स्वायत्तता की मांग और राज्यों की राजनीति

- अधिक स्वायत्तता की मांग भारतीय संघवाद के सबसे विवादास्पद मुद्दों में से एक है, हालांकि संघवाद भारतीय लोकतंत्र की संवैधानिक संरचना की एक महत्वपूर्ण विशेषता है - प्रत्येक संघीय प्रणाली में शक्तियों के वितरण की योजना सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक कारकों के संचालन से बहुत अधिक प्रभावित होती है और इस तरह भारत का संविधान ऐसे समूहों की राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए किसी भी कल्पित भूमिका में राज्यों की स्वायत्तता पर कोई जोर नहीं देता है, जो राज्यों के भीतर खुद को पहचान सकते हैं।
- बल्कि, यह भारतीय क्षेत्र में कहीं भी रहने वाले लोगों के लिए समान अधिकारों और दायित्वों के साथ एकल नागरिकता के आधार पर आगे बढ़ता है।
- राष्ट्रीय राजनीति को राज्य की राजनीति से अलग करने की प्रक्रिया संविधान की सातवीं अनुसूची की समवर्ती सूची द्वारा निर्मित संवैधानिक स्थिति के कारण कठिन हो जाती है, जो स्थानीय स्तर पर संचालित होने वाले या लोगों के नागरिक जीवन से संबंधित मामलों में संसद को अधिकार क्षेत्र प्रदान करती है। भारतीय संविधान के अंतर्गत संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का वितरण है (अनुच्छेद 246)।
- भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में संघ और राज्य सरकार की परस्पर निर्भरता, केंद्रीकरण और विकेंद्रीकरण की दोहरी प्रवृत्तियों के लिए जिम्मेदार है - उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय नियोजन की आवश्यकताओं के जवाब में केंद्रीकरण और अपने कार्यक्रमों के प्रशासन के लिए राज्यों पर केंद्र की निर्भरता सहित कई कारकों के परिणामस्वरूप विकेंद्रीकरण।

- क्षेत्रीय स्वायत्तता की मांग हमेशा से देश के कोने-कोने के लोगों की विविध आकांक्षाओं के कारण रही है। विभिन्न आधारों पर क्षेत्रीय एकजुटता दिखाने और राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आधार पर स्वायत्तता की मांग करने के लिए असंतोष रहा है।
- यद्यपि प्रथम राज्य पुनर्गठन आयोग (एसआरसी) ने भाषाई आधार पर मांग पर विचार किया था, लेकिन पुनर्गठन की मांग कई अन्य आधारों पर भी थी, जैसे विकास से वंचित होना, जातीय एकजुटता, उसी राज्य के अन्य भागों से भेदभाव, कुछ सूक्ष्म क्षेत्रों को अवसर की कमी, तथा धार्मिक आधार पर भी।
- वित्तीय संघवाद का विचार नीचे तक नहीं पहुंच रहा है और पिछड़े क्षेत्रों को दिए गए पैकेज, विदर्भ क्षेत्र या बुंदेलखंड क्षेत्र जैसे क्षेत्रों के लोगों की तात्कालिक आकांक्षाओं को पूरा करने में सक्षम नहीं हैं, जहां से पृथक राज्य की मांग उठ रही है।
- जम्मू-कश्मीर का अपना इतिहास है और पाकिस्तान समर्थित अलगाववाद को बढ़ावा देने के साथ-साथ घरेलू अलगाववादी समूहों के संदर्भ में विभिन्न घटनाक्रम हुए हैं, जो भारत से असंतुष्ट हैं, शायद व्यक्तिगत स्वार्थ या संकीर्ण धार्मिक हित के कारण, वे विशेष दर्जे को अलग करने की चिंता जताते रहे हैं और कई अलग प्रावधानों ने भी लोगों को मुख्य भूमि से अलग कर दिया है, साथ ही शासन के उपायों के कार्यान्वयन में विफलता भी हुई है।
- गोरखालैंड के मामले में भी ऐसी ही हिंसक आवाज़ें देखी जा सकती हैं, जहाँ मैदानी असम और बंगाली आबादी में हाशिये पर होने का एहसास लगातार बना रहता है। जीटीसी की स्वायत्त और त्रिपक्षीय व्यवस्था के बावजूद, उनकी जातीय एकजुटता का मुद्दा अभी तक पूरा नहीं हुआ है।
- अतीत में भी तमिलनाडु ने अपनी अलग भूमि के लिए इस प्रकार का आरक्षण दिखाया था, लेकिन रचनात्मक तरीके से राजनीतिक भागीदारी से इस मुद्दे को सुलझाया जा सका और अब यह सबसे विकसित और एकीकृत राज्यों में से एक है।
- इसी प्रकार, खालिस्तान आंदोलन ने भी 1980 के दशक के प्रारंभ में हिंसक रूप धारण कर लिया था, लेकिन बाद में उपयुक्त नीति और आनुपातिक कठोरता के साथ अलगाववादी प्रवृत्ति को हतोत्साहित किया जा सका, जिसने कभी मजबूत उग्रवादी रूप धारण कर लिया था।
- इसलिए, यह मुख्यतः राज्य के साथ-साथ संबंधित क्षेत्र की राजनीतिक शाखा के लिए चिंताओं को दूर करने के लिए सौहार्दपूर्ण राजनीतिक समाधान खोजने का विषय रहा है।

क्षेत्रवाद को संबोधित करने के प्रयास

हमारे संविधान की एकात्मक विशेषताएँ

इसमें एक संविधान, अखिल भारतीय सेवाएं, एकीकृत न्यायपालिका आदि शामिल हैं।

राज्य पुनर्गठन आयोग

- राज्य पुनर्गठन आयोग के अध्यक्ष श्री फजल अली थे और इसके दो अन्य सदस्य पंडित हृदयनाथ कुंजुरु और सरदार के.एम. पणिकर थे।
- राज्य पुनर्गठन आयोग का गठन देश में सुधारों के लिए कार्य करने तथा राज्यों के पुनर्गठन हेतु गठित प्रभागों के लिए बेहतर प्रशासन सुनिश्चित करने के महत्वपूर्ण अधिदेश के साथ किया गया था। इसकी प्रमुख भूमिकाएँ देश में घटक इकाइयों की पहचान करना तथा उन्हें विभिन्न आधारों पर उचित वर्गीकरण प्रदान करना था, जिनमें भाषाई आधार भी सबसे उल्लेखनीय था।

दूसरे राज्य पुनर्गठन आयोग की आवश्यकता

- आंध्र प्रदेश के तेलंगाना और सीमांध्र क्षेत्रों में हिंसक विरोध प्रदर्शनों और दैनिक जीवन में व्यवधानों के साथ-साथ आंध्र प्रदेश पुनर्गठन विधेयक पारित होने से पहले संसद में हुए व्यवधानों के मद्देनजर, केंद्र के लिए नए राज्यों के निर्माण के पूरे मुद्दे पर तर्कसंगत, गैर-तदर्थ और राजनीतिक तरीके से विचार करना उचित होगा।

- एक विशेषज्ञ निकाय, जिसे 'राज्य पुनर्गठन आयोग' (एसआरसी) नाम दिया जा सकता है, छोटे राज्यों के निर्माण की क्षेत्रीय मांगों पर विचार करने में एक तर्कसंगत मध्यस्थ होगा। यह उन पक्षपातपूर्ण विचारधाराओं और राजनीतिक बाध्यताओं से अछूता रहेगा जो केंद्र में सत्तारूढ़ राजनीतिक दल को प्रभावित और यहाँ तक कि बाँधती हैं।
- इसके अलावा, ऐसा आयोग लोगों को यह आश्वासन भी देगा कि उनके दावों पर एक निष्पक्ष आयोग द्वारा विचार किया जा रहा है और इस प्रकार हिंसक विरोध प्रदर्शनों और व्यवधानों को रोका जा सकेगा जो आमतौर पर अलग राज्यों के लिए ऐसे आंदोलनों के साथ होते हैं।
- राज्य पुनर्गठन आयोग को पृथक राज्य की मांग के कारणों की पहचान करनी चाहिए, तथा यह सत्यापित करना चाहिए कि क्या इसके गठन से अपेक्षाएं वास्तव में पूरी होंगी।

संविधान की पाँचवीं और छठी अनुसूची

- संविधान की पाँचवीं और छठी अनुसूची का मूल उद्देश्य जनजातियों की सांस्कृतिक विशिष्टता की रक्षा करना है। यह जनजातियों को उनकी आर्थिक कठिनाइयों के कारण भी सुरक्षा प्रदान करती है ताकि वे बिना किसी दबाव या शोषण के अपनी जनजातीय पहचान बनाए रख सकें।
- पूर्वोत्तर के बाहर अनुसूचित जनजातियों के हितों की रक्षा पाँचवीं अनुसूची द्वारा की जाती है। पाँचवीं अनुसूची भारत के बड़े हिस्से में "अनुसूचित क्षेत्रों" को निर्दिष्ट करती है जहाँ "अनुसूचित जनजातियों" के हितों की रक्षा की जानी है। अनुसूचित क्षेत्रों में 50 प्रतिशत से अधिक आदिवासी आबादी है।
- छठी अनुसूची पूर्वोत्तर के असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिज़ोरम राज्यों के प्रशासन से संबंधित है। इसमें स्वायत्त ज़िलों और ज़िलों के भीतर स्वायत्त क्षेत्रों के गठन का प्रावधान है क्योंकि ज़िलों के भीतर विभिन्न अनुसूचित जनजातियाँ रहती हैं।

पांचवीं अनुसूची के तहत राज्यपाल की शक्तियां

- पाँचवीं अनुसूची के प्रावधानों को लागू करने में राज्यपाल की शक्तियाँ महत्वपूर्ण हैं। उन्हें संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा बनाए गए किसी भी कानून को अनुसूचित क्षेत्रों में संशोधित, निरस्त या सीमित करने की शक्ति प्राप्त है।
- क्षेत्र के सुशासन के लिए, उन्हें नियम बनाने का अधिकार है। वे अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को भूमि आवंटन को नियंत्रित करते हैं। उन्हें पाँचवीं अनुसूची क्षेत्र में धन उधार देने जैसे व्यवसायों को विनियमित करने का भी अधिकार है।

जनजाति सलाहकार परिषद

- पाँचवीं अनुसूची में एक जनजाति सलाहकार परिषद का प्रावधान है। यह अधिकतम बीस सदस्यों वाली एक जनजाति सलाहकार परिषद की स्थापना के प्रावधान से संबंधित है। इसके तीन-चौथाई प्रतिनिधि राज्य विधानसभा के अनुसूचित जनजाति के सदस्य होंगे।
- पांचवीं अनुसूची में उन राज्यों में जनजाति सलाहकार परिषद की स्थापना का भी प्रावधान है, जहां अनुसूचित जनजाति की आबादी तो है, लेकिन अनुसूचित क्षेत्र नहीं हैं, बशर्ते राष्ट्रपति उन क्षेत्रों में जनजाति सलाहकार परिषद के गठन का निर्देश दें।
- जनजाति सलाहकार परिषद राज्य में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण और उन्नति से संबंधित मामलों पर सलाह देती है, जिन्हें राज्यपाल द्वारा परिषद को भेजा जाता है।

संविधान की छठी अनुसूची के प्रावधान

- छठी अनुसूची पाँचवीं अनुसूची से भिन्न है क्योंकि यह असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिज़ोरम के स्वायत्त ज़िलों के शासन के लिए आवश्यक तंत्र और संस्थाओं का विवरण प्रस्तुत करती है। इन स्वायत्त ज़िलों का प्रशासन सीधे

राज्यपाल द्वारा किया जाता है। छठी अनुसूची इन स्वायत्त ज़िलों में ज़िला परिषदों और क्षेत्रीय परिषदों के गठन, शक्तियों और कार्यों से संबंधित है।

- इन परिषदों को विशिष्ट विषयों पर विधायी शक्तियाँ प्राप्त हैं और इन्हें कराधान के कुछ स्रोत भी आवंटित किए गए हैं। इन परिषदों को अपनी न्याय प्रणाली स्थापित करने और उसका प्रशासन करने तथा भूमि, राजस्व, वन, शिक्षा, जन स्वास्थ्य आदि से संबंधित प्रशासनिक एवं कल्याणकारी सेवाएँ बनाए रखने की भी शक्तियाँ प्राप्त हैं।
- भारतीय संविधान अनुच्छेद 275(1) के तहत अनुसूची पांचवीं और अनुसूची छठी दोनों क्षेत्रों को अनुसूचित जनजातियों के कल्याण को बढ़ावा देने या अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन के स्तर को बढ़ाने के उद्देश्य से धन उपलब्ध कराता है।
- स्वायत्त ज़िले आदिवासियों की पारंपरिक विरासत, उनकी पारंपरिक प्रथाओं और रीति-रिवाजों की रक्षा करने और आर्थिक सुरक्षा बनाए रखने का तंत्र हैं। यह उन्हें विकासात्मक और वित्तीय शक्तियों और कार्यों के साथ-साथ कार्यकारी, विधायी और न्यायिक शक्तियाँ प्रदान करके प्राप्त किया जाता है।

राज्यपाल की भूमिका

- संविधान की छठी अनुसूची के प्रावधानों के तहत, राज्यपाल को परिषद के प्रशासन के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों का निर्धारण करने का अधिकार है। उन्हें नए स्वायत्त ज़िले बनाने का अधिकार है। वे किसी भी स्वायत्त ज़िले या ज़िला परिषद के क्षेत्र को बढ़ा या घटा सकते हैं। उन्हें दो या दो से अधिक ज़िलों या उनके भागों को मिलाकर एक स्वायत्त ज़िला बनाने का भी अधिकार है।
- राज्यपाल किसी स्वायत्त ज़िले की सीमाएँ निर्धारित कर सकते हैं या उसका नाम बदल सकते हैं। लेकिन ध्यान रहे कि स्वायत्त ज़िला परिषदों के क्षेत्र की संरचना में राज्यपाल द्वारा ऐसे परिवर्तन केवल उस प्रयोजन के लिए नियुक्त आयोग की रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद ही किए जा सकते हैं।

विशेष राज्य श्रेणी का दर्जा

- संविधान में भारत के किसी भी राज्य को विशेष श्रेणी (एससीएस) राज्य के रूप में वर्गीकृत करने का कोई प्रावधान नहीं है। लेकिन, यह स्वीकार करते हुए कि देश के कुछ क्षेत्र ऐतिहासिक रूप से अन्य क्षेत्रों की तुलना में वंचित रहे हैं, पूर्व योजना आयोग निकाय, राष्ट्रीय विकास परिषद (एनडीसी) द्वारा अतीत में एससीएस राज्यों को केंद्रीय योजना सहायता प्रदान की गई है।
- एनडीसी ने राज्यों की अनेक विशेषताओं के आधार पर यह दर्जा प्रदान किया, जिनमें शामिल हैं: पहाड़ी और दुर्गम भूभाग, कम जनसंख्या घनत्व या बड़ी संख्या में जनजातीय आबादी की उपस्थिति, अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं पर रणनीतिक स्थान, आर्थिक और अवसंरचनात्मक पिछड़ापन और राज्य वित्त की अव्यवहार्य प्रकृति।
- नीति आयोग के गठन (योजना आयोग के विघटन के बाद) और चौदहवें वित्त आयोग (एफएफसी) की सिफारिशों के बाद, एससीएस राज्यों को केंद्रीय योजना सहायता सभी राज्यों को विभाज्य पूल के बढ़ते हस्तांतरण में शामिल कर ली गई है (13वें वित्त आयोग की सिफारिशों में 32% से 42% तक) और अब यह योजना व्यय में शामिल नहीं है।
- एफएफसी ने 'वन क्षेत्र' जैसे चरों को भी हस्तांतरण में शामिल करने की सिफारिश की, जिसके मानदंड में 7.5 का भारांक होगा और जिससे पूर्वोत्तर राज्यों को लाभ हो सकता है, जिन्हें पहले एससीएस सहायता दी जाती थी। इसके अलावा, एससीएस राज्यों के लिए केंद्र प्रायोजित योजनाओं को 90% केंद्रीय अंश और 10% राज्य अंश के साथ सहायता दी गई।

विशिष्ट क्षेत्रों के लिए रोजगार में आरक्षण

1. नौकरी में आरक्षण की अवधारणा जनसंख्या के कुछ विशेष हिस्से के अधिकारों को बढ़ावा देने के लिए श्रम संबंधों के क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप पर निर्भर करती है।

2. आज़ादी के बाद से, भारत सरकार ने रोज़गार के क्षेत्र में कुछ जनसंख्या समूहों के हितों को बढ़ावा देने का भी प्रयास किया है। इसका **एक उदाहरण इस प्रकार है:**

- राज्यपाल ने संविधान के 118वें संशोधन - अनुच्छेद 371 (जे) के तहत चार महत्वपूर्ण अधिसूचनाओं को मंजूरी दे दी है और अन्य बातों के अलावा, इससे हैदराबाद-कर्नाटक क्षेत्र विकास बोर्ड आदेश 2013 का गठन संभव हो सकेगा।
- इसके बाद, राज्यपाल क्षेत्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे। अन्य अधिसूचनाएं हैं कर्नाटक शैक्षणिक संस्थान (हैदराबाद-कर्नाटक क्षेत्र में प्रवेश के नियमन) आदेश 2013, जो हैदराबाद-कर्नाटक क्षेत्र में उपलब्ध सीटों में से 70 प्रतिशत और राज्यव्यापी संस्थानों में 8 प्रतिशत सीटों के आरक्षण का प्रावधान करता है, कर्नाटक लोक रोजगार (हैदराबाद-कर्नाटक क्षेत्र के लिए नियुक्ति में आरक्षण) आदेश 2013, जो हैदराबाद-कर्नाटक क्षेत्र में एक स्थानीय कैडर के निर्माण और आरक्षण का प्रावधान करता है: ग्रुप ए जूनियर स्केल - 75 प्रतिशत, ग्रुप बी- 75 प्रतिशत, ग्रुप सी - 80 प्रतिशत और ग्रुप डी - 85 प्रतिशत, इसके अलावा राज्य स्तरीय कार्यालयों या संस्थानों या शीर्ष संस्थानों में 8 प्रतिशत पदों का आरक्षण।

सहकारी संघवाद

अंतरराज्यीय परिषद

- अंतर्राज्यीय परिषद एक संवैधानिक निकाय है जिसका गठन सरकारिया आयोग की सिफारिशों के अनुसरण में संविधान के अनुच्छेद 263 के तहत किया गया है।
- केंद्र और कुछ राज्यों के बीच संसाधनों के आवंटन और अधिकार क्षेत्र से संबंधित विवादों को लेकर बढ़ते तनाव की पृष्ठभूमि में अंतर्राज्यीय परिषद महत्वपूर्ण हो गई है। अंतर्राज्यीय परिषद सहकारी संघवाद के अनुसरण में इन विवादों को सुलझाने के लिए एक मंच के रूप में कार्य कर सकती है।
- **जीएसटी:** एक राष्ट्र एक कर और एक बाजार के आदर्श वाक्य के साथ वस्तु एवं सेवा कर की शुरुआत की गई, जिसका उद्देश्य भारत को आर्थिक दृष्टि से एकीकृत करना है।
- **वित्त आयोग:** राज्यों को निधि के हस्तांतरण के माध्यम से, यह राजकोषीय संघवाद को बढ़ावा देता है।
- **नीति आयोग:** इसने योजना आयोग का स्थान लिया है, नीचे से ऊपर की ओर दृष्टिकोण अपनाया है तथा योजना के मामले में राज्यों को अधिक अधिकार दिए हैं।
- **संतुलित क्षेत्रीय विकास:** सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के उपयोग और अल्पविकसित क्षेत्रों में निवेश के मामले में रियायतें देकर। आकांक्षा जिला कार्यक्रम जैसी हालिया पहल एक स्वागत योग्य पहल है।

निष्कर्ष

- अब यह अच्छी तरह समझा जा सकता है कि क्षेत्रवाद एक राष्ट्र और राष्ट्रों के समूह, दोनों के लिए कितनी दोधारी तलवार है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 के अंतर्गत, प्रत्येक नागरिक को देश के किसी भी भाग में शांतिपूर्वक घूमने और बसने का मौलिक अधिकार प्राप्त है। और, भारत के नागरिक होने के नाते, सभी को देश में वसुधैव कुटुम्बकम की भावना को बनाए रखते हुए, दूसरों के इस मौलिक अधिकार का सम्मान करना चाहिए।
- समय की माँग है कि स्थानीय सरकारों को शक्तियाँ सौंपकर और निर्णय लेने में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करके भारत के प्रत्येक क्षेत्र का विकास किया जाए। राज्य स्तर पर सरकारों को ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत, स्थानीय लोगों के लिए रोज़गार के स्रोत, शासन, नियोजन और कृषि विकास में प्रौद्योगिकी के उपयोग का पता लगाना होगा। 12वीं पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य "तेज़, टिकाऊ और अधिक समावेशी विकास" हैं, जो संतुलित क्षेत्रीय विकास के लिए महत्वपूर्ण होंगे।
- चूँकि "सलाद बाउल" की भारतीय अवधारणा इसके मूल में है, इसलिए इसे वसुधैव कुटुम्बकम के मूल को बनाए रखने के लिए प्रत्येक अंतर को एकीकृत करने का हर संभव प्रयास करना चाहिए। क्षेत्रवाद केवल भारतीय समाज के समग्र हित के लिए होना चाहिए ताकि वर्तमान युग में, जब पश्चिम एशिया और यूरोप सहित पूरी दुनिया में अपकेंद्री शक्तियाँ अपने चरम पर हैं, इसे वास्तव में स्वागतयोग्य और अद्वितीय बनाया जा सके।

धर्मनिरपेक्षता

- भारत एक विविधतापूर्ण देश है जहाँ अनेक धर्म और संस्कृतियाँ एक साथ विद्यमान हैं। यह देश में संघर्ष और तनाव का कारण भी बन सकता है। इसलिए भारत ने धर्मनिरपेक्ष सिद्धांतों का पालन किया है ताकि प्रत्येक धर्म और समुदाय का सम्मान किया जाए और उन्हें समान अधिकार दिए जाएँ।
- धर्मनिरपेक्षता एक ऐसा सिद्धांत है जो एक धर्मनिरपेक्ष समाज की स्थापना का प्रयास करता है, अर्थात ऐसा समाज जो अंतर-धार्मिक या अंतर-धार्मिक प्रभुत्व से रहित हो। यह अपने धर्म का पालन करने की स्वतंत्रता और धर्मों के बीच तथा धर्मों के भीतर समानता को बढ़ावा देता है।

धर्मनिरपेक्षता को तीन दृष्टिकोणों से परिभाषित किया जा सकता है

- **जन-केंद्रित:** यह धर्म को राजनीति, अर्थव्यवस्था, शिक्षा, सामाजिक जीवन और संस्कृति से अलग करने के विचार पर जोर देता है
- **राज्य-केन्द्रित:** यह राज्य को सभी धर्मों का संरक्षक बनाए रखने की आवश्यकता पर बल देता है।
- **भारत-केंद्रित:** यह सांप्रदायिकता के खिलाफ सभी लोगों की एकता पर ध्यान केंद्रित करता है
- एक धर्मनिरपेक्ष राज्य को ऐसे सिद्धांतों और लक्ष्यों के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए जो कम से कम आंशिक रूप से गैर-धार्मिक स्रोतों से प्राप्त हों। इन उद्देश्यों में शांति, धार्मिक स्वतंत्रता, धार्मिक आधार पर उत्पीड़न, भेदभाव और बहिष्कार से मुक्ति, और साथ ही अंतर-धार्मिक और अंतर-धार्मिक समानता शामिल होनी चाहिए।
- इसका अर्थ है कि राज्य को धर्म के मामले में तटस्थ रुख अपनाना चाहिए। इसका तात्पर्य राज्य और धर्म के पृथक्करण से है। भारत में कोई आधिकारिक धर्म नहीं है, जबकि कुछ देश मुख्यतः धार्मिक सिद्धांतों पर आधारित हैं। धर्मनिरपेक्षता इसके प्रावधानों में व्याप्त है जो सभी लोगों को अपनी पसंद के धर्म को मानने, उसका पालन करने और प्रचार करने का पूरा अवसर देती है। भारतीय संविधान सभी धर्मों के लिए समान व्यवहार का प्रावधान करता है। इसका अर्थ है कि हम न तो एक धर्मतंत्रीय हैं और न ही एक नास्तिक।

संवैधानिक जनादेश

- भारतीय संविधान ने अपनी प्रस्तावना और विशेष रूप से मौलिक अधिकारों एवं नीति निर्देशक सिद्धांतों पर आधारित अध्यायों के माध्यम से समानता और भेदभाव रहित सिद्धांत पर आधारित एक धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना की है। सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र के सिद्धांतों के साथ, धर्मनिरपेक्षता को भारतीय संविधान की 'आधारभूत संरचनाओं' में से एक माना गया है। संविधान में इसे मुख्यतः एक मूल्य के रूप में इस अर्थ में प्रतिबिम्बित किया गया है कि यह हमारे बहुलवादी समाज को समर्थन प्रदान करता है। धर्मनिरपेक्षता का उद्देश्य भारत में रहने वाले विभिन्न समुदायों के बीच सामंजस्य को बढ़ावा देना है।
- अनुच्छेद 14 में समानता की गारंटी; अनुच्छेद 15 और 16 में गैर-भेदभाव का वादा; अनुच्छेद 27 और 28 में राज्य द्वारा वित्तपोषित संस्थानों में धार्मिक करों और धार्मिक शिक्षा से सुरक्षा; अनुच्छेद 29 और 30 में भाषाई और धार्मिक अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद के शैक्षणिक संस्थानों की अनुमति; अनुच्छेद 325 में वर्गीय वरीयता से रहित समान मतदान का वादा - ये सभी एक ऐसे संवैधानिक ढांचे का निर्माण करते हैं जो किसी भी प्रकार की धार्मिक वरीयता से रहित है।
- **अनुच्छेद 15 (नेहरूवादी परिप्रेक्ष्य)**
- **अनुच्छेद 15(1):**
  - राज्य को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर नागरिकों के बीच भेदभाव करने की मनाही है।
- **अनुच्छेद 15(2):**

- दुकानों, सार्वजनिक रेस्तरां, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों तक पहुंच या कुओं, तालाबों, स्नान घाटों, सड़कों और सार्वजनिक रिसॉर्ट के स्थानों के उपयोग के संबंध में राज्य और नागरिकों द्वारा भेदभाव को प्रतिबंधित करता है, जो पूरी तरह या आंशिक रूप से राज्य निधि से बनाए जाते हैं या आम जनता के उपयोग के लिए समर्पित होते हैं।

- **अनुच्छेद 15(3):**
- विशेष सुरक्षा की आवश्यकता को समझते हुए, यह महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष सुरक्षा प्रदान करता है
- **अनुच्छेद 15(4):**
- नागरिकों के सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण प्रदान करता है।

- एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने धर्मनिरपेक्षता को संविधान के मूल ढांचे का एक अभिन्न अंग घोषित किया। न्यायालय ने संविधान के 42वें संशोधन को भी बरकरार रखा, जिसके तहत प्रस्तावना में 'समाजवादी' और 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द जोड़े गए थे, जिससे यह स्पष्ट हो गया कि संविधान में जो निहित था, उसे अब स्पष्ट कर दिया गया है।
- नेहरू के अनुसार, एक कार्यात्मक सरकारी ढाँचे को धार्मिक विविधता को प्रोत्साहित और बनाए रखना चाहिए। भारत एक बहुधर्मी देश है; इसलिए सरकार कभी भी किसी विशिष्ट धर्म के प्रति पक्षपाती नहीं हो सकती। इसलिए, राजनीति में धर्म का कोई स्थान नहीं था। यहाँ नेहरू, गांधी से भिन्न थे, जिनके लिए राजनीति का आध्यात्मिकीकरण राजनीतिक जीवन का एक प्रमुख उद्देश्य था। हालाँकि दोनों ही सभी धर्मों का सम्मान करते थे, नेहरू और गांधी सच्चे धर्मनिरपेक्षतावादी थे, लेकिन राजनीतिक जीवन में धर्म के प्रयोग पर उनके विचार भिन्न थे।
- नेहरू की धर्मनिरपेक्षता जीवन के प्रति उनके तर्कसंगत मानवतावादी दृष्टिकोण पर आधारित थी, और यह जीवन मृत्यु के बाद के जीवन से ज़्यादा महत्वपूर्ण था। उनका ध्यान इस युग में जीवन की बेहतरी पर केंद्रित था, न कि उस युग पर जिसके बारे में हम अज्ञानता में हैं।

अनुच्छेद 25 (गांधीवादी परिप्रेक्ष्य)

- यह गारंटी देता है: (क) अंतःकरण की स्वतंत्रता, (ख) किसी भी धर्म को मानने, आचरण करने और प्रचार करने की स्वतंत्रता। इस स्वतंत्रता पर उचित प्रतिबंध सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के अधीन धार्मिक स्वतंत्रताएँ हैं (अनुच्छेद 25)। इसके अतिरिक्त, सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के अधीन, प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी भी वर्ग को धार्मिक और धर्मार्थ उद्देश्यों के लिए संस्थाएँ स्थापित करने और बनाए रखने के निम्नलिखित अधिकार होने चाहिए:
- धर्म के मामलों में अपने स्वयं के मामलों का प्रबंधन करने के लिए।
- चल और अचल संपत्तियों का स्वामित्व और अधिग्रहण करना।
- ऐसी संपत्तियों का कानून के अनुसार प्रशासन करना।

महात्मा गांधी ने धर्म और राजनीति की अविभाज्यता और धर्म की राजनीति पर श्रेष्ठता पर ज़ोर दिया। गांधीजी के अनुसार, धर्म एक नैतिक व्यवस्था है और विभिन्न धर्म विश्वास प्रणालियों और रीति-रिवाजों का समूह हैं।

अनुच्छेद 29 (अम्बेडकरवादी परिप्रेक्ष्य)

अनुच्छेद 29 इस बात पर ज़ोर देता है कि राज्य को अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा का दायित्व सौंपा गया है। यह अल्पसंख्यकों को शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार भी प्रदान करता है और निम्नलिखित चार विशिष्ट अधिकार प्रदान करता है:

1. नागरिकों के किसी भी वर्ग को अपनी भाषा, लिपि या संस्कृति के संरक्षण का अधिकार
2. किसी भी नागरिक को धर्म, जाति, मूलवंश या भाषा के आधार पर राज्य द्वारा पोषित या राज्य द्वारा सहायता प्राप्त संस्थाओं में प्रवेश से वंचित न किये जाने का अधिकार।

- संविधान सभा की बहसों में, आंबेडकर धर्मनिरपेक्षता की भावना का पालन करने वाले राज्य के बारे में अपने रुख पर स्पष्ट थे, हालाँकि वे नेहरू के साथ मिलकर इसे प्रस्तावना में शामिल करने से बचने पर अड़े रहे। उन्होंने कहा, "राज्य की नीति क्या होनी चाहिए, समाज को उसके सामाजिक और आर्थिक पक्ष में कैसे संगठित किया जाना चाहिए, ये ऐसे मामले हैं जिनका निर्णय समय और परिस्थितियों के अनुसार लोगों को स्वयं करना होगा। इसे संविधान में ही निर्धारित नहीं किया जा सकता क्योंकि इससे लोकतंत्र पूरी तरह नष्ट हो जाएगा।" आंबेडकर संविधान के केवल आर्थिक दर्शन पर चर्चा करने और धर्मनिरपेक्षता व संघवाद के प्रश्नों पर विचार न करने के पक्ष में थे, क्योंकि उनका मानना था कि संविधान में जो पहले से ही निहित है, उसे दोहराने की आवश्यकता नहीं है।
- परिणामस्वरूप, संविधान सभा ने धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से संविधान के अनुच्छेद 25, 26 और 27 को अपनाया। अनुच्छेद 29 धर्मनिरपेक्षता पर उनके विचारों को दर्शाता है, जिसके अनुसार राज्य धर्म और जाति के आधार पर भेदभाव नहीं कर सकता, और अल्पसंख्यकों को अपनी संस्कृति को संरक्षित करने का अधिकार है। हालाँकि औपचारिक रूप से दस्तावेज़ में शामिल नहीं किया गया था, लेकिन धर्मनिरपेक्षता निश्चित रूप से संवैधानिक दर्शन में अंतर्निहित थी।

Sarva Dharma Sambhavah

- सर्वधर्म समभाव का तात्पर्य भारत में समग्र संस्कृति, दूसरों की मान्यताओं के प्रति सम्मान और सांप्रदायिक एकता को दर्शाता है। गांधीजी की भाषा में धर्मनिरपेक्षता का वास्तविक अर्थ सर्व-धर्म-समभाव है, जिसका अर्थ है सभी धर्मों के प्रति समान व्यवहार और सम्मान। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी पसंद के किसी भी धर्म का प्रचार, आचरण और प्रसार करने का अधिकार है। अनुच्छेद 28(1) में कहा गया है कि राज्य निधि से पूर्णतः संचालित किसी भी शैक्षणिक संस्थान में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी।
- हालाँकि, अरुणा रॉय बनाम भारत संघ (2002) के फैसले में, सर्वोच्च न्यायालय ने व्याख्या की कि अनुच्छेद 28(1) गांधीजी के सर्वधर्म समभाव के विचार के कारण, राज्य के शैक्षणिक संस्थानों में, जिनमें पूर्णतः या आंशिक रूप से राज्य द्वारा सहायता प्राप्त संस्थान भी शामिल हैं, धर्मों के अध्ययन को 'प्रतिबंधित' नहीं करता है। भारत की एकता और अखंडता का ज्ञान प्राप्त करने और भारतीय समाज के धर्मनिरपेक्ष ताने-बाने को समझने के लिए धर्मों के अध्ययन को आवश्यक माना गया है।
- जिस प्रकार धर्म-निरपेक्षता राज्य का अपने सभी नागरिकों के प्रति कर्तव्य है, उसी प्रकार सर्वधर्म समभाव उस अधिकार के साथ जुड़ी ज़िम्मेदारी है। न्यूनतम रूप से इसका अर्थ 'दूसरों' के प्रति सहिष्णुता नहीं, बल्कि मतभेदों को परस्पर स्वीकार करना है।

धर्मनिरपेक्षता के मॉडल

पश्चिमी मॉडल

- पश्चिम में धर्मनिरपेक्षता पुनर्जागरण और ज्ञानोदय की उपज है। यह पश्चिमी मनुष्य की चर्च के प्रभुत्व से स्वतंत्र होकर अपना जीवन जीने की इच्छा की अभिव्यक्ति थी। धर्मनिरपेक्षता ने इस संसार में जीवन की वास्तविकता और मूल्य तथा तर्क और विज्ञान की प्रामाणिकता की पुष्टि की। इसे "धार्मिक संरक्षण से आधुनिक मनुष्य की मुक्ति" के रूप में सराहा गया।
- धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया तभी शुरू हुई जब ब्रह्मांड और उसके बाद मानव जीवन के विकास के लिए गैर-आध्यात्मिक तर्कसंगत और वैज्ञानिक व्याख्या संतोषजनक ढंग से प्रस्तुत की गई। पुनर्जागरण के विचारकों ने उन्हें चुनौती दी, उदाहरण के लिए, प्राकृतिक चयन के माध्यम से विकास के डार्विन के सिद्धांत ने ईसाई धर्म के उन सिद्धांतों का सामना किया जिनमें कहा गया था कि पृथ्वी ईश्वर की रचना है और आदम और हव्वा उसके पूर्वज हैं।

- पश्चिम में, सामंती राज्य का धार्मिक संस्थाओं के साथ बहुत घनिष्ठ संबंध था। सम्राट धार्मिक संस्थाओं को राजस्व मुक्त भूमि अनुदान देते थे और बाद में अपने सामंती संरक्षकों को 'ईश्वर की कृपा' प्रदान करते थे। सामंती राज्य के विरुद्ध संघर्ष में बुर्जुआ वर्ग ने धर्म-विरोधी धार के साथ विज्ञान और तर्कशक्ति का सहारा लिया। इसने धर्म में सुधार, जैसे पादरी वर्ग के बीच चुनाव, को गति दी। इसी प्रकार, आनुवंशिकता पर आधारित सामंती विशेषाधिकार, संप्रभु की इच्छा पर आधारित उत्पीड़न और राजाओं के शासन करने के दैवीय अधिकार को तर्कशक्ति के आधार पर चुनौती दी गई।
- धर्मनिरपेक्षता का पश्चिमी मॉडल, जो मुख्यतः अमेरिकी मॉडल से प्रेरित है, धर्म और राज्य को अलग-अलग रखने का प्रावधान करता है। यह धर्म और राज्य के बीच परस्पर बहिष्कार की नीति है: राज्य धर्म के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा और इसी प्रकार, धर्म भी राज्य के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा।
- इसी प्रकार, राज्य धार्मिक समुदायों की गतिविधियों में तब तक बाधा नहीं डाल सकता, जब तक वे देश के कानून द्वारा निर्धारित व्यापक सीमाओं के भीतर हों, जो धर्मनिरपेक्षता के भारतीय मॉडल के विपरीत है। उदाहरण के लिए, यदि कोई धार्मिक संस्था किसी महिला को पुजारी बनने से रोकती है, तो राज्य इस बारे में कुछ नहीं कर सकता। इस दृष्टिकोण से, धर्म एक निजी मामला है, न कि राज्य की नीति या कानून का मामला। ऐसा इसलिए था क्योंकि यहूदियों की उपस्थिति को छोड़कर अधिकांश पश्चिमी समाज धार्मिक रूप से समरूप थे। इसलिए उन्होंने व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समानता पर ध्यान केंद्रित किया और अंतर-धार्मिक मुद्दों की उपेक्षा की।
  इसी तरह, धर्म राज्य के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। हर किसी का अपना अलग क्षेत्र है। कोई भी सार्वजनिक नीति धर्म के आधार पर नहीं बनाई जाएगी।

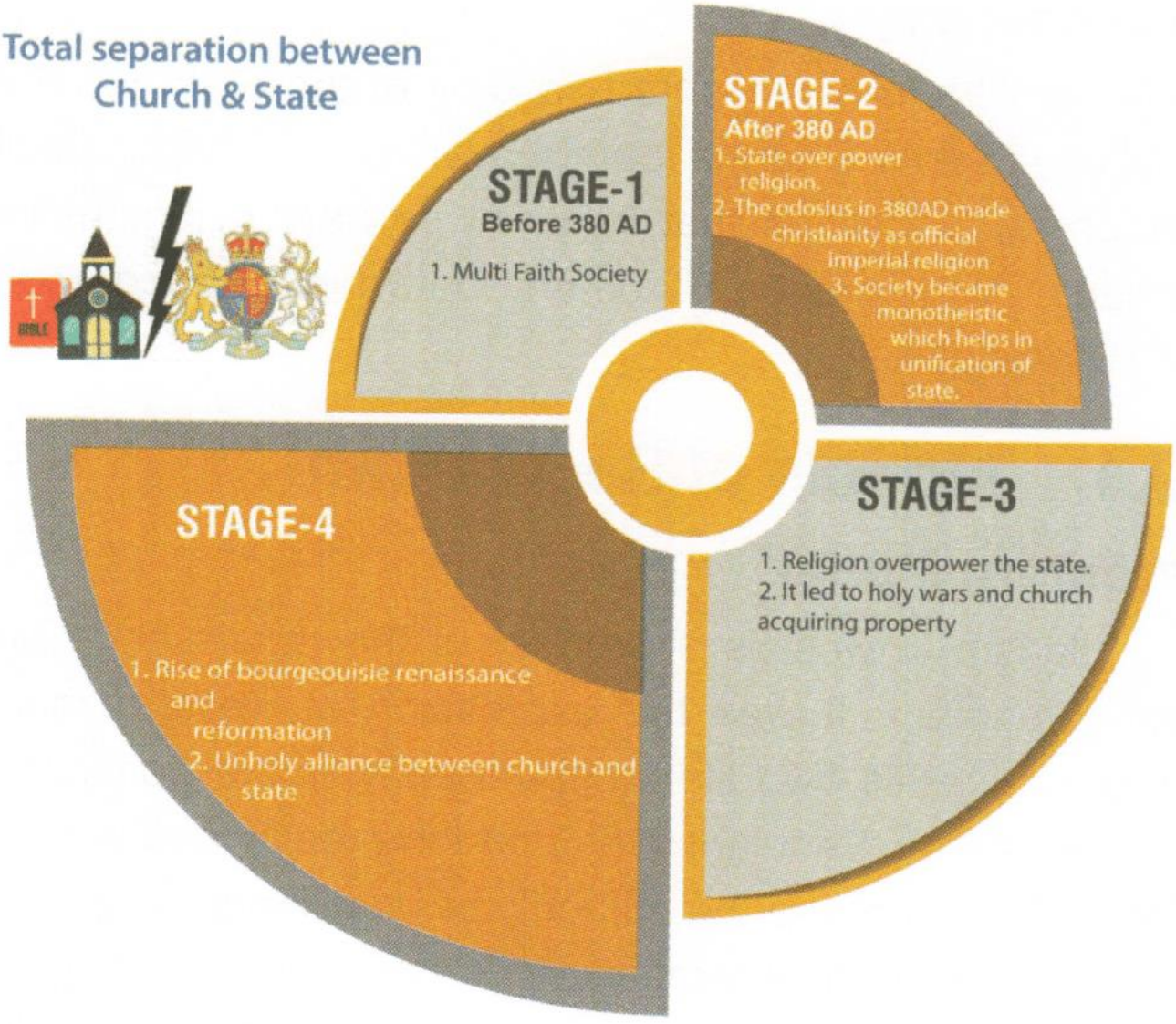

भारतीय मॉडल

राजीव भार्गव के अनुसार, भारतीय मॉडल की निम्नलिखित विशेषताएं हैं :

- अनेक धर्मों की उपस्थिति इसकी नींव का हिस्सा है
- यद्यपि राज्य किसी विशेष धर्म से अपनी पहचान नहीं रखता , फिर भी धार्मिक समुदायों को आधिकारिक मान्यता प्रदान की जाती है।

- बहुमूल्य मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता - जैसे स्वतंत्रता, समानता आदि।
- राज्य और धर्म के बीच अलगाव की दीवार खड़ी न करें, बल्कि छिद्रपूर्ण सीमाएं बनाएं जो राज्य को धर्म में हस्तक्षेप करने की अनुमति दें, जैसे खतरों के लिए सहायता प्रदान करना।
- धर्मनिरपेक्ष विचार - एक वैज्ञानिक सिद्धांत के बजाय एक प्रासंगिक, नैतिक रूप से संवेदनशील, राजनीतिक रूप से बातचीत की व्यवस्था की तरह।
- भारतीय संविधान में व्यक्तिगत/सामुदायिक निर्णय के लिए कोई निश्चित प्रतिबद्धता नहीं है, जो लोकतांत्रिक राजनीति के अंतर्गत या न्यायालय द्वारा लिया जा सकता है।

विकास:

- स्वतंत्रता संग्राम के दौरान विभिन्न समुदायों को औपनिवेशिक शक्तियों के विरुद्ध एकजुट करने के लिए धर्मनिरपेक्ष विचारों को अपनाया गया था। राष्ट्रवाद के विकास के साथ ये विचार परिपक्व हुए और बाद में संविधान में शामिल किए गए। नेहरू के लिए, धर्मनिरपेक्षता का अनिवार्य तत्व सार्वजनिक जीवन में धर्म से विमुखता, प्रगतिशील जीवन और आधुनिक दृष्टिकोण था। इसका प्रभाव विभिन्न क्षेत्रों में देखा जा सकता है, जैसे सार्वजनिक पद और सरकारी सेवा धार्मिक संबद्धता पर निर्भर नहीं होनी चाहिए। साथ ही, नागरिक धर्म और पूजा की स्वतंत्रता के अधिकार का आनंद ले सकते हैं।
- भारतीय राज्य किसी धार्मिक समूह द्वारा शासित नहीं है और न ही यह किसी एक धर्म का समर्थन करता है। भारत में, अदालतों, पुलिस थानों, सरकारी स्कूलों और कार्यालयों जैसे सरकारी स्थानों पर किसी एक धर्म का प्रदर्शन या प्रचार नहीं किया जाना चाहिए।
- धार्मिक विविधता वाले समाज में पहले से मौजूद विविधता और पश्चिम से आए विचारों के बीच अंतर्क्रिया के परिणामस्वरूप भारतीय धर्मनिरपेक्षता ने एक विशिष्ट रूप धारण किया। इसके परिणामस्वरूप अंतर-धार्मिक और अंतर्धार्मिक प्रभुत्व पर समान रूप से ध्यान केंद्रित हुआ।
- भारतीय धर्मनिरपेक्षता न केवल व्यक्तियों की धार्मिक स्वतंत्रता से संबंधित है, बल्कि अल्पसंख्यक समुदायों की धार्मिक स्वतंत्रता से भी संबंधित है। इसके अंतर्गत, किसी व्यक्ति को अपनी पसंद का धर्म मानने का अधिकार है। इसी प्रकार, धार्मिक अल्पसंख्यकों को भी अस्तित्व में रहने, अपनी संस्कृति और शैक्षणिक संस्थानों को बनाए रखने का अधिकार है।
- इस प्रकार, भारतीय धर्मनिरपेक्षता केवल चर्च-राज्य पृथक्करण पर ही केंद्रित नहीं है, बल्कि अंतर-धार्मिक समानता का विचार भारतीय अवधारणा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस प्रकार, भारतीय धर्मनिरपेक्षता पश्चिमी धर्मनिरपेक्षता के समान ही नहीं, बल्कि उससे मौलिक रूप से भिन्न भी है।

पश्चिमी और भारतीय धर्मनिरपेक्षता की तुलना		
DIMENSIONS	**पश्चिमी धर्मनिरपेक्षता**	**भारतीय धर्मनिरपेक्षता**
विकास और सामाजिक संदर्भ.	चूँकि यूरोप एक-धार्मिक समाज था, इसलिए लड़ाई ईसाई बनाम चर्च के बीच थी। इसलिए राज्य	स्वतंत्रता संग्राम के दौरान विभिन्न समुदायों को औपनिवेशिक शक्तियों के विरुद्ध एकजुट करने के लिए धर्मनिरपेक्ष विचारों को अपनाया गया था। भारत में संघर्ष

पश्चिमी और भारतीय धर्मनिरपेक्षता की तुलना		
DIMENSIONS	पश्चिमी धर्मनिरपेक्षता	भारतीय धर्मनिरपेक्षता
	और धर्म के बीच पूर्ण अलगाव था।	एक धार्मिक समुदाय और दूसरे धार्मिक समुदाय के बीच था। इसलिए बहुलवाद पर ज़ोर दिया गया।
धर्म और राज्य के बीच संबंध	धर्म और राज्य का एक दूसरे के मामलों में हस्तक्षेप न करना, राज्य और धर्म का पृथक्करण।	राज्य धार्मिक सुधारों का समर्थन करता है।
विभिन्न धार्मिक समूहों के बीच संबंध	किसी धर्म के विभिन्न संप्रदायों के बीच समानता पर बल दिया जाता है।	विभिन्न धार्मिक समूहों के बीच समानता एक प्रमुख चिंता का विषय है।
अल्पसंख्यक अधिकार बनाम सामुदायिक अधिकार	समुदाय आधारित अधिकारों पर कम ध्यान दिया गया।	अल्पसंख्यक अधिकारों पर ध्यान केंद्रित करें। समुदाय आधारित अधिकार प्रदान किए जाएँ।
स्वतंत्रता बनाम समानता	व्यक्तिगत स्वतंत्रता केंद्र में।	केंद्र में समानता

धर्मनिरपेक्षता में बाधाएँ

- **अस्पष्ट परिभाषा:** राज्य और धर्म के बीच कोई स्पष्ट विभाजन नहीं है, बल्कि सर्वधर्म समभाव है। इससे कई प्रश्न उठते हैं, जैसे क्या एक धर्मनिरपेक्ष राज्य को हज यात्रा के लिए सब्सिडी देनी चाहिए, या तिरुपति-तिरुमाला मंदिर परिसर का प्रबंधन करना चाहिए, या हिमालय के पवित्र स्थानों की तीर्थयात्राओं का समर्थन करना चाहिए? क्या सभी धार्मिक अवकाश समाप्त कर देने चाहिए, उदाहरण के लिए केवल स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस, गांधी जयंती और अंबेडकर जयंती को छोड़कर? क्या एक धर्मनिरपेक्ष राज्य को गोहत्या पर प्रतिबंध लगाना चाहिए क्योंकि गाय किसी विशेष धर्म के लिए पवित्र है? यदि ऐसा है, तो क्या उसे सूअर के वध पर भी प्रतिबंध लगाना चाहिए क्योंकि किसी अन्य धर्म में सूअर का मांस खाने पर प्रतिबंध है? यदि सेना में सिख सैनिकों को लंबे बाल रखने और पगड़ी पहनने की अनुमति है, तो क्या हिंदू सैनिकों को भी अपना सिर मुंडवाने या मुस्लिम सैनिकों को लंबी दाढ़ी रखने की अनुमति होनी चाहिए? इस प्रकार के प्रश्न तीव्र असहमतियों को जन्म देते हैं जिनका निपटारा कठिन होता है।
- **सांस्कृतिक विविधता:** भारत विविध संस्कृतियों, रीति-रिवाजों, परंपराओं, जातियों, भाषाओं और धार्मिक विचारधाराओं का घर है। हालाँकि धर्मनिरपेक्षता धर्म के नकारात्मक पहलुओं में हस्तक्षेप करने का प्रयास करती है, लेकिन यह धार्मिक विश्वासों और पहचान पर अतिक्रमण की भावनाओं को भी बढ़ावा दे सकती है। उदाहरण के लिए, 1948 में भारत की संविधान सभा समान नागरिक संहिता लागू करने पर सहमत नहीं हुई थी, जिसकी शुरुआत विवाह, तलाक और उत्तराधिकार के मामलों में महिलाओं के लिए समान अधिकारों की मांग के आंदोलन से हुई थी। इसके बजाय, इसे राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों (अनुच्छेद 44) में शामिल किया गया। अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक, दोनों समुदायों के प्रतिनिधियों ने तर्क दिया कि इसके प्रावधान उनकी धार्मिक मान्यताओं और इसलिए उनके मौलिक अधिकारों के विरुद्ध होंगे।

- **अल्पसंख्यक तुष्टिकरण की राजनीति:** यह भारतीय राज्य की धर्मनिरपेक्षता के प्रति प्रतिबद्धता और अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के बीच तनाव पैदा करती है। अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें ऐसे संदर्भ में विशेष ध्यान दिया जाए जहाँ राजनीतिक व्यवस्था की सामान्य कार्यप्रणाली उन्हें बहुसंख्यक समुदाय की तुलना में नुकसानदेह स्थिति में डालती है। लेकिन ऐसी सुरक्षा प्रदान करने पर तुरंत ही अल्पसंख्यकों के प्रति पक्षपात या 'तुष्टिकरण' का आरोप लग जाता है। विरोधियों का तर्क है कि इस प्रकार की धर्मनिरपेक्षता अल्पसंख्यकों के वोट या अन्य प्रकार के समर्थन के बदले उन्हें लाभ पहुँचाने का एक बहाना मात्र है।
- तर्क यह है कि अल्पसंख्यक तुष्टिकरण के लिए इस्तेमाल की जाने वाली धर्मनिरपेक्षता वोट बैंक की राजनीति को बढ़ावा देती है। शाहबानो मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के बाद, 1986 में मुस्लिम धर्मगुरुओं ने सरकार को तलाकशुदा महिलाओं के भरण-पोषण से संबंधित कानून (मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986) बनाने के लिए मजबूर किया, जिससे उन्हें इद्दत अवधि के बाद गुजारा भत्ता पाने के अधिकार से वंचित कर दिया गया और सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को पलट दिया गया। इस कानून की आधुनिक धर्मनिरपेक्ष विचारों, महिलाओं के अधिकारों और धर्मनिरपेक्ष विचारधारा वाले मुसलमानों की राय को कमज़ोर करने के लिए कड़ी आलोचना की गई।
- बहुसंख्यकवादी दावा: संख्यात्मक रूप से हिंदुओं को बहुसंख्यक माना जाता है, जिससे कई लोग हिंदुत्ववादी पहचान की राजनीति के लिए प्रेरित होते हैं और दावा करते हैं कि भारत एक हिंदू राज्य है। ये दावे भारत और उसके इतिहास के बारे में एकरूपता लाने वाले मिथकों को जन्म देते हैं।
- इन दावों का विरोध अन्य धार्मिक समूहों द्वारा किया जाता है, जिन्हें ऐसे एकरूपतावादी दावों के तहत अपने धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन के आचरण की स्वायत्तता खोने की संभावना का अनुमान है। इससे विवाद शुरू होते हैं, जिसके परिणामस्वरूप अक्सर सांप्रदायिक दंगे होते हैं। धार्मिक आधार पर पहचान के विभाजन को समझने वाले आम तौर पर स्वीकृत मिथक 'तुष्टिकरण सिद्धांत', 'जबरन धर्मांतरण', बहुसंख्यक समूहों की 'आधिपत्यवादी आकांक्षाओं' और अल्पसंख्यक समूहों को 'सामाजिक-सांस्कृतिक स्थान से वंचित करने' पर केंद्रित हैं।
- ऐतिहासिक दृष्टि से, 19वीं शताब्दी के हिंदू पुनरुत्थानवादी आंदोलन को वह काल माना जाता है जिसने धार्मिक आधार पर दो अलग-अलग संस्कृतियों, हिंदू और मुस्लिम, के बीच विभाजन देखा, जो विभाजन के कारण और गहरा गया। सांप्रदायिक विचारधारा के रूप में संस्थागत हो चुका यह विभाजन भारत के धर्मनिरपेक्ष सामाजिक ताने-बाने और लोकतांत्रिक राजनीति के लिए एक बड़ी चुनौती बन गया है।
- **धार्मिक दबाव समूहों का उदय:** जैसे बजरंग दल, हिंदू सेना आदि। 2014 में केरल के आगरा में घर वापसी जैसी हालिया घटनाओं में लालच देकर धर्मांतरण कराया गया। इसी तरह, गौरक्षकों द्वारा धार्मिक अल्पसंख्यक समूहों पर हमले ने समाज में असहिष्णुता के स्तर को बढ़ा दिया और भारतीय राज्यों पर कलंक लगाया। कुछ लोगों ने इसे धर्मनिरपेक्ष विचारधारा के तहत राज्य द्वारा धर्मनिरपेक्ष क्षेत्र में अनुचित हस्तक्षेप के रूप में देखा।

लैंगिक न्याय को बढ़ावा देने के नाम पर **समान नागरिक संहिता लागू करने की मांग ।**

सरकारी प्रयास

सरकार विभिन्न तरीकों से धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा देती है

- अस्पृश्यता जैसे अनुष्ठानिक असमानता के प्रतीकों को समाप्त करना
- सभी धार्मिक स्थलों और संस्थानों को सभी वर्गों और वर्गों के लोगों के लिए खोलें
- देश के सभी समुदायों के लिए एक समान पर्सनल लॉ विकसित करने के उद्देश्य से हिंदू पर्सनल लॉ में सुधार करना।
- किसी भी एजेंसी जैसे दुकान, होटल पर प्रतिबंध लगाना जो नागरिकों के बीच भेदभाव करती है
- सभी समुदाय के सदस्यों के लिए सभी शैक्षणिक संस्थान खोलना
- पाठ्य पुस्तकों की विषयवस्तु को धर्मनिरपेक्ष बनाना

- सुदृढ़ आर्थिक आधार का विकास करना ताकि गरीबी उन्मूलन हो सके तथा लोगों के बीच धन का समान वितरण सुनिश्चित हो सके।

इसके अलावा अन्य संस्थागत उपाय हैं:

- **राष्ट्रीय एकता परिषद:** 1961 में स्थापित, राष्ट्रीय एकता परिषद का उद्देश्य सांप्रदायिकता, जातिवाद और क्षेत्रवाद के खतरे से निपटने के उपाय खोजना है। इसके सदस्यों में केंद्रीय मंत्री, लोकसभा और राज्यसभा में विपक्ष के नेता, सभी राज्यों और विधानसभा वाले केंद्र शासित प्रदेशों के मुख्यमंत्री शामिल हैं।
- राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग: अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करने और उनके लिए संविधान में दिए गए सुरक्षा उपायों को बनाए रखने के लिए, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम, 1992 के तहत राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग (एनसीएम) की स्थापना की गई है। छह धार्मिक समुदायों, अर्थात मुस्लिम, ईसाई, सिख, बौद्ध और पारसी और जैन को केंद्र सरकार द्वारा अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में अधिसूचित किया गया है।
- **राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग:** राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग एक वैधानिक आयोग है जिसकी स्थापना 1993 में धार्मिक और जातिवादी उत्पीड़न सहित मानवाधिकारों के हनन के मामलों की जाँच के लिए की गई थी। सरकार ने विभिन्न धार्मिक समुदायों को ध्यान में रखते हुए सार्वजनिक अवकाशों की एक सूची तैयार की। प्रत्येक समुदाय के लिए किसी प्रमुख त्यौहार या धार्मिक महत्व के आयोजन के लिए कम से कम एक अवकाश निर्धारित किया गया।
- हस्तक्षेप न करने की रणनीति: सभी धर्मों की भावनाओं का सम्मान करने और आवश्यक धार्मिक प्रथाओं में हस्तक्षेप न करने के लिए राज्य कुछ विशेष धार्मिक समुदायों के लिए कुछ अपवाद बनाता है। उदाहरण के लिए, सिखों को दोपहिया वाहन चलाते समय हेलमेट पहनने से छूट दी गई है, भले ही हेलमेट पहनना कानूनन हो।
  अंतर-धार्मिक और अंतर-धार्मिक संघर्षों को दूर करने के लिए, सरकार समय-समय पर ऐसे कानून लेकर आई जो "सकारात्मक भेदभाव" और सभी के लिए समानता और न्याय का समर्थन करते हैं।
  अल्पसंख्यक समुदायों के कल्याण के लिए हाल ही में शुरू की गई योजनाएं हैं - हमारी धरोहर, जियो पारसी आदि।
  42वें संशोधन अधिनियम, 1976 के माध्यम से संविधान की प्रस्तावना में 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द जोड़ा गया।

निष्कर्ष

- भारत महान विविधताओं और अनंत विविधताओं का देश है। यह कम से कम 18 प्रमुख भाषाओं और 400 से अधिक महत्वपूर्ण बोलियों वाला देश है। यह वह भूमि है जिसने दुनिया के चार प्रमुख धर्मों को जन्म दिया है। यह दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी मुस्लिम आबादी का घर है। यह 4,000 से अधिक जातीय समुदायों, जातियों या अंतर्जातीय समूहों वाला समाज है। इस प्रकार भारत एक अद्वितीय बहु-धार्मिक, बहुभाषी, बहु-जातीय और बहु-क्षेत्रीय सभ्यता है। इसलिए, धर्मनिरपेक्षता ही एकमात्र रास्ता है जहाँ प्रत्येक धर्म और धार्मिक समुदाय को जीवित रहने और एक-दूसरे का सम्मान करने के लिए आवश्यक स्थान मिलेगा।

सामाजिक सशक्तिकरण

- सामाजिक सशक्तिकरण को स्वायत्तता और आत्मविश्वास की भावना विकसित करने, और व्यक्तिगत व सामूहिक रूप से सामाजिक संबंधों, संस्थाओं और उन विमर्शों को बदलने की प्रक्रिया के रूप में समझा जाता है जो गरीब लोगों को वंचित रखते हैं और उन्हें गरीबी में रखते हैं। गरीब लोगों का सशक्तिकरण, और दूसरों को जवाबदेह ठहराने की उनकी क्षमता, उनकी व्यक्तिगत संपत्तियों और सभी प्रकार की क्षमताओं (मानवीय, सामाजिक और आर्थिक) से बहुत प्रभावित होती है। लोगों की सामूहिक संपत्ति और क्षमताएँ, जैसे आवाज़, संगठन, प्रतिनिधित्व और पहचान, भी महत्वपूर्ण हैं। इसके अलावा, सशक्तिकरण के लिए आर्थिक, राजनीतिक और कानूनी, त्रिमूर्ति आयामों के साथ एजेंसी की आवश्यकता होती है। भारतीय समाज में नागरिकों को शक्तिहीन करने वाले कई कारक हैं। हम नीचे इन कारकों का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

सामाजिक भेदभाव और बहिष्कार

सामाजिक असमानता

- प्रत्येक समाज में सामाजिक संसाधनों, जैसे भौतिक संपत्ति, शैक्षिक योग्यता, संपर्कों का नेटवर्क और सामाजिक संघों तक कुछ हद तक असमान पहुँच होती है, जिसे सामाजिक असमानता कहा जाता है। हालाँकि कुछ सामाजिक असमानताएँ व्यक्तियों के बीच प्राकृतिक अंतरों का परिणाम हो सकती हैं, लेकिन कुल मिलाकर, सामाजिक असमानता लोगों के बीच जन्मजात या प्राकृतिक अंतरों का परिणाम नहीं है, बल्कि उस समाज की उपज है जिसमें वे रहते हैं।

सामाजिक संतुष्टि

- लोगों की पहचान और अनुभव, दूसरों के साथ उनके संबंध, साथ ही संसाधनों और अवसरों तक उनकी पहुँच, सामाजिक स्तरीकरण नामक एक प्रणाली द्वारा निर्धारित होती है, जो लोगों को पदानुक्रमित श्रेणियों में वर्गीकृत करती है। यह देखा गया है कि इस तरह की सामाजिक पदानुक्रमित रैंकिंग, विश्वास या विचारधारा के सहारे, पीढ़ियों तक बनी रहती है।
- सामाजिक स्तरीकरण, जब जड़ जमा लेता है, तो पूर्वाग्रहों (एक समूह के सदस्यों द्वारा दूसरे समूह के प्रति पूर्व-निर्धारित राय या दृष्टिकोण) को जन्म देता है। हालाँकि यह शब्द आमतौर पर नकारात्मक पूर्वाग्रहों के लिए प्रयोग किया जाता है, लेकिन यह अनुकूल पूर्वाग्रहों पर भी लागू हो सकता है। ऐसे निर्णयों का पता अक्सर रूढ़िवादिता (लोगों के एक समूह का निश्चित चरित्र-चित्रण) से लगाया जा सकता है।

सामाजिक बहिष्कार

- रूढ़िवादिताएँ पूरे समूह को एकल, समरूप श्रेणियों में बाँध देती हैं; वे व्यक्तियों, संदर्भों या समय के अनुसार होने वाली भिन्नता को स्वीकार नहीं करतीं। वे पूरे समुदाय के साथ ऐसा व्यवहार करती हैं मानो वह एक ही व्यक्ति हो जिसके सभी गुण या विशेषताएँ एक जैसी हों। उपर्युक्त दृष्टिकोण और विचार जब व्यवहार में परिवर्तित होते हैं, तो भेदभाव उत्पन्न होता है, अर्थात् एक समूह के सदस्यों को दूसरों के लिए उपलब्ध अवसरों से वंचित करने की प्रथा।
- समय के साथ, व्यक्तिगत भेदभाव व्यक्ति को व्यापक समाज में पूर्ण भागीदारी से वंचित कर सकता है या सामाजिक बहिष्कार का कारण बन सकता है। सामाजिक बहिष्कार आकस्मिक नहीं, बल्कि व्यवस्थित है, अर्थात यह समाज की संरचनात्मक विशेषताओं का परिणाम है। आमतौर पर जब हम सामाजिक बहिष्कार की बात करते हैं, तो हमारा तात्पर्य समाज के सबसे निचले तबके, यानी समाज के कमजोर वर्ग से होता है, जो सामाजिक संसाधनों तक पहुँच से वंचित है। यह विभिन्न रूपों में प्रकट हो सकता है।

- **राजनीतिक बहिष्कार:** जब लोगों को चुनावों में वोट देने का अधिकार नहीं होता या जब उन्हें राजनीतिक नेतृत्व में शीर्ष पद के लिए प्रतिस्पर्धा करते समय किसी अदृश्य बाधा का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, वर्तमान संसद में केवल 11% महिला प्रतिनिधि हैं। इसी प्रकार, प्रमुख राजनीतिक दलों में से केवल बसपा ही पार्टी के शीर्ष पर दलित नेतृत्व रखती है।
- **आर्थिक बहिष्कार:** जब लोगों को नौकरी बाजार तक पहुंच की अनुमति नहीं दी जाती है, या उन्हें पदोन्नति से वंचित किया जाता है या उन्हें कम वेतन मिलता है जो सांस्कृतिक नस्लवाद के माहौल को दर्शाता है, जिससे अश्वेतों की आर्थिक संभावनाएं कम हो जाती हैं
- **सामाजिक बहिष्कार:** आवास और पड़ोस के संदर्भ में उदाहरण के लिए, दलितों, मुसलमानों और पूर्वोत्तर के लोगों को दिल्ली जैसे महानगरों में अच्छा आवास मिलना मुश्किल होता है।
- **सांस्कृतिक बहिष्कार:** इसमें धार्मिक स्थलों, जैसे सबरीमाला मंदिर, में महिलाओं के प्रवेश पर प्रतिबंध जैसे पहलू शामिल हैं। हालाँकि, एक और प्रकार का सामाजिक बहिष्कार भी है जो समाज के शीर्षस्थ वर्ग, यानी संपन्न वर्ग से रिसता है और उन्हें समाज से जुड़ी आम चिंताओं और मुद्दों से अलग-थलग कर देता है। उदाहरण के लिए, कई अमीर लोग चुनाव के दिन को लोकतंत्र का जश्न मनाने के त्योहार के बजाय अपने घरों में आराम करने के दिन के रूप में देखते हैं। इसी तरह, राउंड ट्रिपिंग के ज़रिए कर चोरी एक और उदाहरण है।

भारत में सामाजिक बहिष्कार

- अधिकांश समाजों की तरह भारत भी सामाजिक भेदभाव और बहिष्कार की तीव्र प्रथाओं से ग्रस्त रहा है। दलित या पूर्व अछूत, आदिवासी या 'जनजाति', महिलाएँ और दिव्यांगजन सदियों से भारत में सामाजिक भेदभाव और बहिष्कार के शिकार रहे हैं। हालाँकि, समय-समय पर, समाज के इन वर्गों ने अपने साथ हुए भेदभाव और बहिष्कार के विरोध में आवाज़ उठाई है, लेकिन समाज में उन्हें उनका उचित स्थान नहीं मिल पाया है। यहाँ तक कि सरकारी कानून और संवैधानिक प्रावधान भी समाज को बदलने या स्थायी सामाजिक परिवर्तन लाने में असमर्थ रहे हैं।

अनुसूचित जाति

- तथाकथित 'अछूतों' को सदियों से सामूहिक रूप से अनेक नामों से संबोधित किया जाता रहा है। महात्मा गांधी ने जातिगत नामों से जुड़े अपमानजनक आरोप का प्रतिकार करने के लिए 1930 के दशक में 'हरिजन' (शाब्दिक अर्थ, ईश्वर की संतान) शब्द को प्रचलित किया था। भारतीय भाषाओं में, दलित शब्द का शाब्दिक अर्थ 'दलित' होता है और यह उत्पीड़ित लोगों का बोध कराता है। हालाँकि यह शब्द न तो डॉ. आंबेडकर द्वारा गढ़ा गया था और न ही उनके द्वारा अक्सर इस्तेमाल किया जाता था, यह शब्द निश्चित रूप से उनके दर्शन और उनके द्वारा चलाए गए सशक्तिकरण आंदोलन से मेल खाता है। 1970 के दशक की शुरुआत में मुंबई में हुए जातीय दंगों के दौरान इसे व्यापक रूप से प्रचलन मिला। उस दौरान पश्चिमी भारत में उभरे एक उग्रवादी समूह, दलित पैंथर्स ने अधिकारों और सम्मान के अपने संघर्ष के हिस्से के रूप में अपनी पहचान स्थापित करने के लिए इस शब्द का इस्तेमाल किया।

दलितों से संबंधित सामाजिक मुद्दे

- **अस्पृश्यता:** 'अस्पृश्यता' जाति व्यवस्था का एक चरम और विशेष रूप से क्रूर पहलू है जो शुद्धता-अस्पृश्यता के पैमाने पर सबसे निचले पायदान पर स्थित जातियों के सदस्यों के विरुद्ध कड़े सामाजिक प्रतिबंधों का प्रावधान करती है। वास्तव में, भारत के कई क्षेत्रों (विशेषकर दक्षिण में) में 'दूरी प्रदूषण' की ऐसी धारणाएँ प्रचलित थीं कि किसी 'अस्पृश्य' व्यक्ति की उपस्थिति या छाया मात्र भी अपवित्र मानी जाती थी। शब्द के सीमित शाब्दिक अर्थ के बावजूद, 'अस्पृश्यता' की संस्था केवल शारीरिक संपर्क से परहेज या निषेध को ही नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिबंधों के एक व्यापक समूह को भी संदर्भित करती है। इस बात पर ज़ोर देना ज़रूरी है कि अस्पृश्यता के तीनों मुख्य आयाम इस परिघटना को परिभाषित करने में समान रूप से महत्वपूर्ण हैं।
- **बहिष्कार:** दलितों को बहिष्कार के ऐसे रूपों का सामना करना पड़ता है जो विशिष्ट हैं और अन्य समूहों के विरुद्ध नहीं होते - उदाहरण के लिए, पेयजल स्रोतों को साझा करने या सामूहिक धार्मिक पूजा, सामाजिक समारोहों और त्योहारों में भाग लेने से प्रतिबंधित किया जाना। साथ ही, अस्पृश्यता में अधीनस्थ भूमिका में जबरन शामिल किया जाना भी शामिल हो सकता है, जैसे किसी धार्मिक आयोजन में ढोल बजाने के लिए मजबूर किया जाना।
- **अपमान-अधीनता:** सार्वजनिक रूप से दिखाई देने वाले (आत्म-) अपमान और अधीनता के कृत्य अस्पृश्यता प्रथा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। इसके सामान्य उदाहरणों में सम्मान के संकेत (जैसे सिर से टोपी उतारना, हाथ में जूते पहनना, सिर झुकाकर खड़े रहना, साफ़ या 'उज्ज्वल' कपड़े न पहनना, इत्यादि) और साथ ही नियमित रूप से गाली-गलौज और अपमान शामिल हैं।
- **शोषण:** इसके अलावा, अस्पृश्यता लगभग हमेशा विभिन्न प्रकार के आर्थिक शोषण से जुड़ी होती है, जो आमतौर पर जबरन, अवैतनिक (या कम वेतन वाले) श्रम के माध्यम से या संपत्ति की जब्ती के माध्यम से होती है।

अनुसूचित जनजातियाँ

भारत में अनुसूचित जनजातियाँ समाज के सबसे कमजोर वर्गों में से एक हैं।

जनजाति से संबंधित मुद्दे

- **विकास और विस्थापन:** राष्ट्रीय विकास, विशेष रूप से नेहरू युग में, बड़े बांधों, कारखानों और खदानों के निर्माण से जुड़ा था। चूँकि आदिवासी क्षेत्र देश के खनिज समृद्ध और वन आच्छादित क्षेत्रों में स्थित थे, इसलिए आदिवासियों

ने शेष भारतीय समाज के विकास के लिए असंगत कीमत चुकाई है। इस प्रकार के विकास ने आदिवासियों की कीमत पर मुख्यधारा को लाभ पहुँचाया है। आदिवासियों को उनकी भूमि से बेदखल करने की प्रक्रिया खनिजों के दोहन और जलविद्युत संयंत्रों की स्थापना के लिए अनुकूल स्थलों के उपयोग के एक आवश्यक उप-उत्पाद के रूप में घटित हुई है, जिनमें से कई आदिवासी क्षेत्रों में थे।

- **वनों पर निर्भरता:** जिन वनों पर अधिकांश आदिवासी समुदाय निर्भर थे, उनका विनाश एक बड़ा झटका रहा है। ब्रिटिश काल में वनों का व्यवस्थित दोहन शुरू हुआ और यह प्रवृत्ति स्वतंत्रता के बाद भी जारी रही। भूमि पर निजी स्वामित्व के आगमन ने भी आदिवासियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है, जिनके समुदाय-आधारित सामूहिक स्वामित्व के स्वरूप नई व्यवस्था में नुकसानदेह स्थिति में रहे। इसका सबसे ताज़ा उदाहरण नर्मदा नदी पर बन रहे बांधों की श्रृंखला है, जहाँ अधिकांश लागत और लाभ असमान रूप से विभिन्न समुदायों और क्षेत्रों को प्राप्त होते प्रतीत होते हैं।
- **जनजातीय क्षेत्रों में गैर-आदिवासियों का प्रवास:** कई जनजातीय बहुल क्षेत्रों और राज्यों में विकास के दबाव के कारण गैर-आदिवासियों के भारी प्रवास की समस्या भी देखी जा रही है। इससे जनजातीय समुदायों और संस्कृतियों के विघटन और उनके दबदबे का खतरा है, साथ ही आदिवासियों के शोषण की प्रक्रिया में भी तेज़ी आ रही है। उदाहरण के लिए, झारखंड के औद्योगिक क्षेत्रों में जनजातीय आबादी का हिस्सा कम हुआ है। लेकिन सबसे ज़्यादा नाटकीय स्थिति शायद पूर्वोत्तर में है। त्रिपुरा जैसे राज्य में एक ही दशक में जनजातीय आबादी का हिस्सा आधा रह गया, जिससे वे अल्पसंख्यक बन गए। अरुणाचल प्रदेश पर भी ऐसा ही दबाव है।
- **जनजातीय पहचान का ह्रास:** जनजातीय समुदायों को मुख्यधारा की प्रक्रियाओं में जबरन शामिल करने का जनजातीय संस्कृति और समाज पर उतना ही प्रभाव पड़ा है जितना कि उनकी अर्थव्यवस्था पर। आज जनजातीय पहचानें जनजातियों की किसी आदिम (मूल, प्राचीन) विशेषता के बजाय इसी अंतःक्रियात्मक प्रक्रिया से निर्मित होती हैं। आज कई जनजातीय पहचानें गैर-जनजातीय दुनिया की प्रबल शक्ति के प्रतिरोध और विरोध के विचारों पर केंद्रित हैं।

बहिष्कार का विरोधाभास

- अन्य अधिकारों को छोड़कर और बहुविध परस्पर-निर्भर एवं अविभाज्य मानवाधिकारों को मान्यता न देकर, सशक्तिकरण को बढ़ावा देने का लक्ष्य विकृत होता है और "विकास के अवरोध" उत्पन्न होते हैं। ऐसी विकृतियाँ और अवरोध एजेंडा निर्धारण की राजनीति से जुड़े होते हैं जहाँ न्याय के एक रूप को दूसरे प्रकार के न्याय के विरुद्ध खड़ा किया जाता है। भारत की वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए यह और भी प्रबल हो जाता है: संसाधनों, प्रतिष्ठा और शक्ति की धुरी पर जाति और लिंग के निर्धारित मानदंडों पर आधारित ऐतिहासिक पिछड़ेपन की स्थिति। ऐसी स्थिति में एक अक्ष पर प्रगति हमेशा दूसरी अक्ष पर प्रगति में परिवर्तित नहीं होती। इसके अलावा, यह एक वियोजन उत्पन्न करता है जिसे भारतीय समाज में आसानी से देखा जा सकता है।

विकासात्मक साइलो की विकृतियाँ

- **सामाजिक सशक्तिकरण:** समानता के संवैधानिक प्रचार के बावजूद, जमीनी स्तर पर एक असमान समाज बना हुआ था। इसका अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि 1955 का सामुदायिक स्तर का विकास कार्यक्रम काफी हद तक अभिजात वर्ग के कब्ज़े की समस्या से प्रभावित था। दरअसल, लगभग सभी कल्याणकारी योजनाएँ इसी बात की गवाह हैं।
- इसके अलावा, संवैधानिक मूल्यों और मौजूदा सामाजिक मानदंडों के बीच द्वंद्व ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि कई मामलों में जातिगत संघर्ष छिड़ गया। उदाहरण के लिए, रणवीर सेना और एमसीसी का संघर्ष इसी द्वंद्व पर आधारित है। जहाँ खेतिहर मज़दूरों ने न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम की माँग की, वहीं बिहार के भूस्वामी वर्ग ने इसका विरोध किया।

- **राजनीतिक सशक्तिकरण:** लोकतांत्रिक भारत की शुरुआत के साथ ही, सार्वभौमिक मताधिकार को अपनाया गया। सभी पात्र नागरिकों को मताधिकार प्रदान किया गया। हालाँकि, मताधिकार प्रदान करने के साथ-साथ आर्थिक या सामाजिक सशक्तिकरण का भी समुचित रूप से पालन नहीं किया गया। इसके परिणामस्वरूप समाज के संपन्न वर्गों द्वारा धन-बल का प्रयोग बढ़ गया, जिससे भारत में वोट फॉर सेल (मतदान के लिए वोट) जैसी विसंगति को बढ़ावा मिला।
- इसके अलावा, पंचायती राज संस्था के रूप में राजनीतिक विकेंद्रीकरण ने राजनीतिक सशक्तिकरण को बढ़ावा दिया। लेकिन सकारात्मक कार्रवाई के प्रावधान के बावजूद, ग्रामीण स्तर पर इस संस्था पर प्रभुत्वशाली जातियों का कब्ज़ा हो गया। एक अध्ययन के अनुसार, समरस (गुजरात की आम सहमति आधारित चुनाव प्रणाली) पर बड़े पैमाने पर प्रभुत्वशाली जातियों का कब्ज़ा है। इससे पता चलता है कि केवल राजनीतिक सशक्तिकरण ही पर्याप्त नहीं है।
- **आर्थिक सशक्तिकरण:** सामाजिक और राजनीतिक सशक्तिकरण में समान वृद्धि के बिना आर्थिक सशक्तिकरण आमतौर पर समाज में हाशिए पर धकेल दिया जाता है। 19वीं सदी के यूरोप में यहूदियों के मामले में यह काफी हद तक देखा गया था। भारत में, अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि लड़की को शिक्षित करने से विवाह-संबंध बनाने में समस्याएँ आ सकती हैं। अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि शिक्षित लड़की आर्थिक रूप से सशक्त हो जाएगी और बड़ों का सम्मान नहीं करेगी।
- महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण से भी सामाजिक परिवेश में उनकी स्थिति में कोई सुधार नहीं आया है। चंदा कोचर ने आरोप लगाया कि उनकी सास उनसे अपने पेशेवर कर्तव्यों के अलावा घर के काम निपटाने की अपेक्षा रखती थीं, जो कि भारतीय समाज में आम तौर पर सच है। यह भारतीय समाज के एक ऐसे लक्षण की ओर इशारा करता है जहाँ महिलाएँ न केवल पितृसत्ता की शिकार हैं, बल्कि उसकी वाहक भी हैं।

उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि, वास्तविक सशक्तिकरण तभी प्राप्त किया जा सकता है जब सशक्तिकरण के सभी घटक एक-दूसरे के साथ सामंजस्य में हों।

अधिकारिता

- इन सामाजिक वास्तविकताओं के बीच, सामाजिक रूप से भेदभाव और बहिष्कृत वर्गों को और अधिक सशक्त और आत्मविश्वासी बनाने की आवश्यकता महसूस की जा रही है, खासकर अपने जीवन को नियंत्रित करने और अपने अधिकारों को प्राप्त करने में, अर्थात वंचित समूहों को सशक्त बनाने की। इस बोध के परिणामस्वरूप, सामाजिक सशक्तिकरण ने स्वायत्तता और आत्मविश्वास की भावना विकसित करने, और व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से सामाजिक संबंधों, संस्थाओं और लोगों को बहिष्कृत करने वाले विमर्शों को बदलने के लिए कार्य करने की प्रक्रिया के रूप में लोकप्रियता हासिल की है।

औजार

- **शिक्षा:** शिक्षा सामाजिक सशक्तिकरण की मूलभूत आवश्यकता और सबसे प्रभावी साधन है। यह लोगों को उनके साथ होने वाले भेदभाव और बहिष्कार की प्रकृति को समझने में मदद करती है। इसके अलावा, शिक्षा के माध्यम से लोग विचारशील व्यक्ति बनते हैं, जिससे वे अपने जीवन पर नियंत्रण रख पाते हैं। वे अपने अधिकारों की माँग भी करने लगते हैं। इसलिए, इसे उच्च प्राथमिकता दी जाती है।
- **हिंसा का उन्मूलन:** घरेलू या सामाजिक स्तर पर होने वाली सभी प्रकार की हिंसा, चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक, का उन्मूलन, जिसमें रीति-रिवाजों, परंपराओं या स्वीकृत प्रथाओं से उत्पन्न होने वाली हिंसा भी शामिल है, स्वयं में आत्मविश्वास को बढ़ाता है और स्वतंत्रता सुनिश्चित करता है जो स्वायत्तता की भावना विकसित करने के लिए आवश्यक है।
- **स्वास्थ्य एवं पोषण:** अधिकांश वंचित और सामाजिक रूप से भेदभाव का शिकार वर्ग गंभीर स्वास्थ्य और पोषण संबंधी कमियों का सामना करता है। मनुष्य के समुचित विकास और व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से कार्य करने और सोचने के लिए एक स्वस्थ शरीर और मन आवश्यक हैं।

योजनाओं

औरत

- महिलाओं और लड़कियों के लिए शिक्षा तक समान पहुंच सुनिश्चित करने, भेदभाव को समाप्त करने, शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने, निरक्षरता को समाप्त करने, लिंग-संवेदनशील शैक्षिक प्रणाली बनाने, लड़कियों के नामांकन और प्रतिधारण दर में वृद्धि करने और जीवन भर सीखने के साथ-साथ महिलाओं द्वारा व्यावसायिक/व्यावसायिक/तकनीकी कौशल के विकास को सुविधाजनक बनाने के लिए शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करने के प्रयास किए जा रहे हैं।
- महिलाओं के स्वास्थ्य के लिए एक समग्र दृष्टिकोण अपनाया जा रहा है, जिसमें पोषण और स्वास्थ्य सेवाएं दोनों शामिल हैं तथा जीवन चक्र के सभी चरणों में महिलाओं और लड़कियों की जरूरतों पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।
- महिलाओं के स्वास्थ्य के लिए एक समग्र दृष्टिकोण अपनाया जा रहा है, जिसमें पोषण और स्वास्थ्य सेवाएं दोनों शामिल हैं तथा जीवन चक्र के सभी चरणों में महिलाओं और लड़कियों की जरूरतों पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।
- महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार की हिंसा, चाहे वह घरेलू स्तर पर हो या सामाजिक स्तर पर, को समाप्त करना, जिसमें रीति-रिवाजों, परंपराओं या स्वीकृत प्रथाओं से उत्पन्न हिंसा भी शामिल है, को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जा रही है।

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति

- प्रारंभिक शिक्षा के संबंध में, शिक्षण शुल्क में छूट, निःशुल्क पुस्तकें, मध्याह्न भोजन और छात्रवृत्ति के रूप में विभिन्न प्रोत्साहन प्रदान किए जाते हैं। कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय, नवोदय विद्यालय और राष्ट्रीय प्रतिभा खोज योजना में अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों पर भी विशेष ध्यान दिया गया है।
- प्रमुख छात्रवृत्ति कार्यक्रम भी हैं। मैट्रिक के बाद उच्च शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए पोस्ट-मैट्रिक छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जाती हैं। मैला ढोने वालों और छोटे-मोटे कामों में लगे लोगों के बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु प्री-मैट्रिक छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जाती हैं। मेरिट योजना के उन्नयन का उद्देश्य उपचारात्मक और विशेष कोचिंग प्रदान करना है। अनुसूचित जाति के छात्रों के लिए राजीव गांधी राष्ट्रीय फैलोशिप उच्च अध्ययन और शोध के लिए विशेष प्रोत्साहन प्रदान करती है।
- विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कर रहे छात्रों को कोचिंग सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। उच्च प्राथमिक स्तर से आगे की शिक्षा प्राप्त करने के लिए लड़कियों और लड़कों दोनों को छात्रावास की सुविधा प्रदान की जाती है।

भारत में सामाजिक आंदोलन

- सामाजिक आंदोलन को समय के साथ निरंतर चलने वाली सामूहिक कार्रवाई के रूप में परिभाषित किया जाता है। ऐसी कार्रवाई अक्सर राज्य के विरुद्ध निर्देशित होती है और राज्य की नीति या व्यवहार में बदलाव की मांग का रूप ले लेती है।
- सामूहिक कार्रवाई में कुछ हद तक संगठन की विशेषता होनी चाहिए। स्वतःस्फूर्त, अव्यवस्थित विरोध को सामाजिक आंदोलन नहीं कहा जा सकता। इस संगठन में एक नेतृत्व और एक संरचना शामिल हो सकती है जो यह निर्धारित करती है कि सदस्य एक-दूसरे से कैसे संबंध बनाते हैं, निर्णय कैसे लेते हैं और उन्हें कैसे लागू करते हैं।
- सामाजिक आंदोलन में भाग लेने वालों के उद्देश्य और विचारधाराएँ समान होती हैं। एक सामाजिक आंदोलन का सामान्य उद्देश्य परिवर्तन लाना (या रोकना) होता है।
- ये परिभाषित विशेषताएँ स्थिर नहीं हैं, और किसी सामाजिक आंदोलन के जीवनकाल में बदल सकती हैं। भारत में कई सामाजिक आंदोलन हुए हैं, जिनकी विशेषताएँ समय के साथ बदलती रही हैं। इस अध्याय में हम भारत में विभिन्न आंदोलनों और उनकी बदलती विशेषताओं को देखेंगे।

भारत में किसान आंदोलन

भारत में किसान आंदोलन को 3 चरणों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

किसान आंदोलन

1. आज़ादी के बाद किसान आंदोलन में दो धाराएँ विकसित हुईं। बड़े और मध्यम किसान सिंचाई, किसान मंडियों और अन्य संस्थागत सहायता जैसे विभिन्न क्षेत्रों में सरकार से समर्थन की अपेक्षा रखते थे।
2. हालाँकि, भूमि सुधारों और सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की विफलता के कारण, किसान और छोटे किसान प्रभावित हुए। भूमि सुधारों की विफलता ने गरीब किसानों और भूमिहीन मजदूरों में काफी असंतोष पैदा किया और कुछ लोगों के अनुसार, किसानों के विशाल बहुमत को कृषि सर्वहारा वर्ग में बदल दिया। वामपंथी दलों ने इसका फायदा उठाकर 1960 और 1970 के दशक में पश्चिम बंगाल, केरल, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और उत्तर प्रदेश (यूपी) में 'भूमि हड़पने' के आंदोलन चलाए। हालाँकि किसानों द्वारा अर्जित भूमि की मात्रा नगण्य थी, लेकिन इसने उनके बीच राजनीतिक चेतना पैदा की और सरकार पर दबाव डाला, जिससे सीलिंग अधिनियम 1974 जैसे कानून बनाने में मदद मिली। इसके अलावा, इसने भारत में वामपंथी उग्रवाद की समस्या को भी जन्म दिया।
3. हालाँकि, 1970 के दशक के अंत तक, कृषि क्षेत्र में पूंजीवादी विकास के कारण भूमि वितरण और समानता के मुद्दे दब गए।

धनी किसानों का आंदोलन

1. 1960 के दशक में, हरित क्रांति के नाम से प्रसिद्ध एक नई कृषि नीति की शुरुआत के बाद, धनी किसान/पूंजीपति वर्ग के नेतृत्व में आंदोलनों का उदय हुआ। इस नीति ने संस्थागत आधारित मॉडल (भूमि सुधार, सिंचाई) से प्रौद्योगिकी आधारित मॉडल (जैव-रासायनिक और यांत्रिक आधारित नवाचार) की ओर, एक अत्यंत चयनात्मक दृष्टिकोण के साथ, बदलाव को चिह्नित किया। इसके परिणामस्वरूप किसानों के बीच वर्ग विभेदीकरण हुआ। एक ओर अधिशेष उत्पादन करने वाले किसान थे, जिन्हें "बैलगाड़ी पूंजीवादी" भी कहा जाता था, और दूसरी ओर छोटे किसान थे जो लगातार गरीबी की ओर बढ़ रहे थे और बेहतर आजीविका की तलाश में शहरों की ओर पलायन करने लगे थे।
2. बढ़ते वर्ग विभेद ने बड़े भूस्वामियों को अपने हितों के प्रति जागरूक किया, जिसके परिणामस्वरूप 1970 के दशक में धनी किसान आंदोलन हुए। इनका नेतृत्व पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पंजाब और हरियाणा में भारतीय किसान संघ

(बीकेयू), कर्नाटक में कर्नाटक राज्य रैयत संघ (केआरआरएस) और महाराष्ट्र में शेतकारी संगठन (एसएस) जैसे धनी किसान संगठनों ने किया।

3. पहले के आंदोलनों के विपरीत, ये आंदोलन राज्य के विरुद्ध थे, न कि ज़मींदार के विरुद्ध। जैसे-जैसे बड़े किसान बाज़ार के लिए उत्पादन करने लगे, माँगों का स्वरूप बदल गया: कृषि उपज के लिए ऊँची कीमतें और बीज, उर्वरक, बिजली और पानी के शुल्क जैसे तकनीकी आदानों के लिए कम कीमतें, और ऋणों की आसान शर्तें। इसलिए, ये आंदोलन विचारधारा-आधारित नहीं, बल्कि मुद्दा-आधारित थे, जिनका उद्देश्य किसानों के हितों की रक्षा और संवर्धन करना था।
4. इन किसान संगठनों ने गैर-राजनीतिक बने रहना पसंद किया और इन्हें 'ग्रामीण संघवाद' का एक रूप बताया गया, जिसने स्थानीय राजनीति को ग्रामीण इलाकों में पहुँचाया। इस दशक के दौरान, आम तौर पर किसानों का विमर्श 'शहरी बनाम ग्रामीण', 'भारत बनाम इंडिया', लाभकारी मूल्य, ऋणों की माफ़ी, कृषि पिछड़ापन, उद्योग-उन्मुख नीतियों आदि के मुद्दों पर केंद्रित रहा। 1980 के दशक के दौरान ही इन आंदोलनों ने अपनी वैचारिक एकजुटता को काफी हद तक बनाए रखा।
5. मोटे तौर पर, 1980 के दशक के किसान आंदोलन का मानना था कि भारत का मौजूदा संरचनात्मक पिछड़ापन मुख्यतः बाहरी संबंधों, यानी पश्चिमी पूंजीवाद के आगे भारत के समर्पण के कारण था। यह भारत सहित तीसरी दुनिया के देशों की अधीनता को बनाए रखने की एक सोची-समझी चाल और व्यापक रणनीति थी। इसी संदर्भ में, तीसरी दुनिया के देश पश्चिमी दुनिया से खुद को अलग करने या उससे मुक्त होने में सक्षम नहीं रहे हैं।
6. यहीं पर भारत और इंडिया–देश के मूल और पारंपरिक नामकरण–के बीच संघर्ष का विमर्श देखा जा सकता है। उनके लिए, 'इंडिया उस काल्पनिक इकाई का प्रतिनिधित्व करता है जिसे अंग्रेजों से आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक शोषण का आवरण विरासत में मिला है, जबकि भारत वह काल्पनिक इकाई है जो बाहरी औपनिवेशिक शासन की समाप्ति के बाद से दूसरी बार शोषण का शिकार हो रही है।'
7. इन आंदोलनों ने अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न प्रकार के तरीकों का प्रयोग किया, मेरठ कमिश्नरी में गांधीवादी सत्याग्रह से लेकर दिल्ली घेराव जैसे हिंसक तरीकों तक।

वैश्वीकरण और किसान आंदोलन

1. वैश्वीकरण की शुरुआत के साथ ही किसान आंदोलन में एक ऊर्ध्वाधर विखंडन देखने को मिला। इस विभाजन ने आंदोलन को वैश्वीकरण से उत्पन्न समस्याओं के समाधान हेतु अपने औजारों और रणनीतियों को नए सिरे से गढ़ने पर मजबूर किया; इसने किसान आंदोलन को विपरीत वैचारिक धाराओं का भी समर्थन करने पर मजबूर किया–एक ओर उदारवाद/पूंजीवाद और दूसरी ओर गांधीवाद; इसने किसान आंदोलन को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बड़े समूह बनाने में मदद की और इस तरह उन्हें समस्याओं के समाधान में मदद की; इसने उन्हें पहचान, विकास के प्रतिमान, सांस्कृतिक प्रथाओं आदि के बारे में नए विमर्श/बहस रचने में मदद की।
2. हालाँकि, इसका एक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा: इसने अखिल भारतीय स्तर पर किसान आंदोलन की उग्रता को कमज़ोर कर दिया। जहाँ कुछ किसान संगठनों ने वैश्वीकरण का समर्थन किया (आरएसएस-शरद जोशी), वहीं कर्नाटक और उत्तर प्रदेश के किसान संगठनों ने इसका विरोध किया। तीन बहुराष्ट्रीय कंपनियों– केंटकी फ्राइड चिकन (केएफसी), कारगिल इंडिया और मोनसेंटो (मोनसेंटो का अंतिम संस्कार)–पर कर्नाटक में हमला किया गया, क्योंकि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ वैश्वीकरण के व्यापक स्वरूप का प्रतीक हैं।
3. इसके अलावा, भारत में किसान आंदोलन के बाद के दौर (80 और 90 के दशक में) में राजनीतिक निष्ठाओं के साथ अभिसरण दिखा, जिससे किसान आंदोलन व्यवस्थित तरीके से कमजोर हो गया।

2000 के बाद के युग में किसान आंदोलन

1. ग्रामीण-कृषि पहचान की तलाश: उदारीकरण के बाद हुए सामाजिक-आर्थिक बदलावों ने किसानों के बीच दोहरी पहचान का संकट पैदा कर दिया है, जो बड़े पैमाने पर विरोध प्रदर्शनों के रूप में सामने आया है। मौजूदा विरोध प्रदर्शन नई पहचान की बढ़ती चाहत की राजनीतिक अभिव्यक्ति हैं।
2. यह पहचान एक व्यक्ति (अस्तित्व और गरिमा) के साथ-साथ सामूहिक जुड़ाव की भावना का मिश्रण है। यह शहरीकरण की प्रक्रिया से मोहभंग की भावना से भी उपजती है, लेकिन व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए अधिक स्थान के साथ ग्रामीण जीवन को नए तरीकों से पुनर्परिभाषित करने की इच्छा से भी।
3. संकट के बहुआयामी आयाम: हालाँकि हालिया विरोध प्रदर्शन 1980 के दशक के किसान आंदोलनों से काफ़ी मिलते-जुलते प्रतीत होते हैं, लेकिन राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में कृषि के महत्व के संदर्भ में ये काफ़ी अलग हैं। अर्थव्यवस्था के शहरी और गैर-कृषि क्षेत्र में न केवल समान विस्तार हुआ है, बल्कि कृषि अर्थव्यवस्था की तुलना में कहीं अधिक तेज़ी से विकास भी हुआ है, जिससे सापेक्षिक अभाव की भावना पैदा हुई है। इसके लिए कल्याणकारी राज्य के समर्थन की आवश्यकता थी, जो वैश्वीकरण के साथ समाप्त हो गया।
4. भारतीय कृषि में संरचनात्मक परिवर्तन: कृषि के पूँजीवादी परिवर्तन के साथ, उत्पादक ज़मींदार पर निर्भर न रहकर बाज़ार पर निर्भर हो गया। हालाँकि इस नई व्यवस्था में अधिकांश उत्पादक निर्वाह कृषक थे, फिर भी वे स्वयं को अल्पसंख्यकों के साथ गठबंधन में पाते थे, जो ज़मीन के बड़े हिस्से पर नियंत्रण रखते थे और मुख्यतः बाज़ार के लिए खेती करते थे।
5. राज्य एक उद्यम पूंजीपति के रूप में: भूमि सुधार से भूमि अधिग्रहण की ओर नीतियों में आमूल-चूल परिवर्तन के साथ, कल्याणकारी राज्य एक उद्यम पूंजीपति के रूप में उभरा। इस बदलाव ने दोनों ओर आंदोलन को जन्म दिया: एक ओर भूमिहीन मजदूर भूमि की मांग कर रहे थे (जन आंदोलन), तो दूसरी ओर मध्यम और धनी किसान भूमि अधिग्रहण का विरोध कर रहे थे (पश्चिम बंगाल, पंजाब)।

महिला आंदोलन

- भारत में महिला आंदोलन सौ साल से भी ज़्यादा पुराना है, लेकिन इसकी संरचना, इसका एजेंडा, इसका स्वरूप और शैली, इसकी पहुँच और इसकी समावेशिता पिछले कुछ वर्षों में बदलती रही है। भारत में महिला आंदोलन को तीन चरणों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

स्वतंत्रता पूर्व

1. महिला आंदोलन की उत्पत्ति उन्नीसवीं सदी में सामाजिक सुधार के मुद्दों पर महिलाओं द्वारा किए गए संगठित संघर्षों से जुड़ी है। महिलाओं के आत्मनिर्णय (स्त्री-स्वाधीनता) से जुड़ी बहसों और संगठनात्मक गतिविधियों की प्रकृति और विषयवस्तु काफी हद तक औपनिवेशिक परिस्थितियों से निर्धारित होती थी, यहाँ तक कि उस समय भी जब औपनिवेशिक सरकार वैधता के बढ़ते संकट से जूझ रही थी।
2. शिक्षा में सुधार और बाल-विवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा या एकांतवास जैसी प्रथाओं के उन्मूलन तथा विधवा पुनर्विवाह के प्रतिरोध के माध्यम से स्त्री-स्वाधीनता और समानता की नींव रखी गई। हालाँकि, ये सुधार उस पितृसत्तात्मक विचारधारा की सीमाओं के भीतर ही रहे, जहाँ महिलाओं को सुधार के उपायों का निष्क्रिय प्राप्तकर्ता माना जाता था। इस काल का नेतृत्व राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद विद्यासागर कर्वे आदि जैसे पुरुषों ने किया। हालाँकि बेथ्यून और सावित्री फुले जैसी महिलाएँ मौजूद थीं, लेकिन उनकी पहल का दायरा और विस्तार सीमित था।
3. सामाजिक सुधारों के दौर के बाद राष्ट्रवादी दौर आया, जिसे आम तौर पर एक ऐसे दौर के रूप में देखा जाता है जिसमें 'कार्यकर्ता' महिला ने गांधी की सत्याग्रही के रूप में विभिन्न रूपों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। हालाँकि, इस दौर में सार्वजनिक क्षेत्र में महिलाओं की उपस्थिति 'सच्ची नारीत्व' और 'महिलाओं के उचित स्थान' के विमर्श से घिरी हुई थी, जिसने महिलाओं की भागीदारी को वैध और सुगम बनाने के क्रम में, उन्हें स्त्रीत्व की एक अनिवार्य संरचना के भीतर सीमित कर दिया। इस प्रकार, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि बीसवीं सदी के

आरंभ में महिलाओं की भागीदारी बड़े पैमाने पर देखी गई, लेकिन यह भागीदारी घरेलू जीवन और सार्वजनिक क्षेत्र के आख्यानों तक सीमित थी।

4. इस प्रकार, जबकि राष्ट्रवादी विमर्श ने महिलाओं की सार्वजनिक भागीदारी के दायरे को व्यापक बनाया, सामाजिक सुधारों के दौर के विपरीत, इसने महिलाओं के मुद्दों पर सार्वजनिक चुप्पी बनाए रखी।
5. महिलाओं के प्रश्न पर राष्ट्रवादी चुप्पी महिलाओं द्वारा समान राजनीतिक अधिकारों, मतदान और विधानमंडलों में बैठने, तथा व्यक्तिगत कानूनों में सुधार के लिए संगठित संघर्ष से टूट गई। महिला कार्यकर्ताओं ने प्रांतीय विधायकों, औपनिवेशिक अधिकारियों और औपनिवेशिक सरकार द्वारा राजनीतिक सुधारों के मामलों पर विचार-विमर्श करने के लिए समय-समय पर गठित समितियों से अनुरोध किया।
6. महिला आंदोलन में महिलाओं के प्रश्न को पहली बार 1926 में भारतीय राष्ट्रीय महिला परिषद (एनसीडब्ल्यूआई) की स्थापना के साथ संबोधित किया गया, जो मुख्यतः महिलाओं द्वारा संचालित और संचालित एक संगठन था। एनसीडब्ल्यूआई का उद्देश्य सामाजिक सुधारों और महिला एवं बाल कल्याण के माध्यम से महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करना था। अखिल भारतीय महिला सम्मेलन (एआईडब्ल्यूसी) की स्थापना 1927 में पूना में हुई, जिसने महिला शिक्षा के प्रश्न को उठाया और इसकी पहल पर ही
7. 1932 में दिल्ली में महिलाओं के लिए लेडी इरविन कॉलेज की स्थापना की गई। इस अवधि में महिला समूहों, विशेष रूप से AIWC के लिए एक महत्वपूर्ण चिंता बाल विवाह के खिलाफ अभियान था। इन संघर्षों के परिणामस्वरूप 1929 में शारदा अधिनियम पारित किया गया, जिसमें लड़कियों के लिए विवाह की आयु चौदह वर्ष और लड़कों के लिए अठारह वर्ष निर्धारित की गई। 1930 के दशक में, AIWC ने अपनी ऊर्जा महिलाओं के उत्तराधिकार और विवाह में समान अधिकारों के लिए लड़ने और विभिन्न समुदायों के व्यक्तिगत कानूनों में सुधारों की ओर निर्देशित की। इस बिंदु पर यह विचार प्रस्तावित किया गया था कि पूरे भारत के लिए एक समान नागरिक संहिता (UCC) होनी चाहिए। हालाँकि, ये पहल सांप्रदायिकता की बढ़ती आवाज़ों, स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रवादी संघर्ष और रूढ़िवादी वर्ग के तीव्र विरोध में खो गई।

स्वतंत्रता के बाद

1. आज़ादी के बाद महिलाओं के सवाल को सरकार की विकास नीतियों के प्रति व्यापक असंतोष के संदर्भ में नए सिरे से परिभाषित किया गया। आज़ादी के बाद के वर्षों में भारत में विकास योजनाओं में महिलाओं के उत्पादक कार्यों के प्रति उपेक्षा का भाव बना रहा, और आधुनिकता के अशांत प्रवाह के बीच महिलाओं को सामंजस्य और निरंतरता के प्रतीक के रूप में भूमिकाएँ दी गईं। महिलाओं के लिए परिकल्पित 'कल्याणकारी' उपायों में निहित लैंगिक अंतर ने सार्वजनिक संस्थाओं और समाज के भीतर संरचनात्मक असमानताओं और लैंगिक पदानुक्रमों को समाप्त नहीं किया।
2. भारत में भारतीय महिलाओं के राष्ट्रीय महासंघ (एनएफआईडब्ल्यू) की स्थापना और उसकी रिपोर्ट "टुवर्ड्स इक्वालिटी" के प्रकाशन ने तीन दशकों के नियोजित विकास के बाद महिलाओं की पदानुक्रमित और असमान स्थिति की ओर ध्यान आकर्षित किया, जिससे महिलाओं के प्रश्न के राष्ट्रवादी समाधान के साथ आई आत्मसंतुष्टि टूट गई। परिणामस्वरूप, छठी पंचवर्षीय योजना में महिलाओं की अनिवार्य विकास आवश्यकताओं के लिए स्पष्ट प्रावधानों की मांग बढ़ी, जिससे नए महिला आंदोलन को आवाज़ मिली।
3. 1970 और 1980 के दशक में महिलाओं की सक्रियता उस दौर के कई लोकतांत्रिक अधिकार संघर्षों में से एक थी, जिनमें से सभी ने विकास को नए सिरे से परिभाषित करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। 1972 में स्व-रोज़गार महिला संघ (सेवा) के उदय को अक्सर उस दशक की एक महत्वपूर्ण घटना के रूप में उद्धृत किया जाता है। महिलाओं ने बिहार के किसान संघर्षों और चिपको आंदोलन में भी सक्रिय रूप से भाग लिया, जिसने विकास नीतियों को चुनौती दी। फिर भी, स्वायत्तता और एजेंसी का प्रश्न इन घटनाओं से गायब था।

4. हालाँकि, 1980 के दशक के साथ, जन-आधारित और संबद्ध महिला संगठनों के साथ-साथ स्वायत्त महिला समूहों ने भी महिला अधिकारों के संघर्ष को और तेज़ कर दिया। मानुषी (1979), सहेली (1981), जागोरी (1984), और नारीवादी प्रेस - काली फॉर वीमेन (1984) जैसे कई महिला समूह पूरे देश में स्थापित किए गए।
5. शहरी, मध्यम वर्ग, शिक्षित और पेशेवर महिलाओं को अपने सदस्यों में शामिल करते हुए, इन समूहों ने दस्तावेज़ीकरण और संसाधन केंद्र स्थापित किए, और महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के विशिष्ट मुद्दों के विरुद्ध आंदोलन सहित गतिविधियों का आयोजन और एकीकरण किया, और कानूनी और मानवीय सहायता प्रदान की। इन समूहों ने गरीबी उन्मूलन, साक्षरता को बढ़ावा देने और नौकरियों की उपलब्धता को महिलाओं की प्राथमिक आवश्यकताओं के रूप में प्राथमिकता दी। स्वायत्त समूहों ने महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के सभी रूपों के मुद्दों को उठाया - बलात्कार (हिरासत में बलात्कार सहित), दहेज हत्या, प्रजनन संबंधी विकल्प, श्रम का लैंगिक विभाजन और पितृसत्ता, जैसा कि यह कई रूपों में प्रकट होता है, विशेष रूप से परिवार में, शक्ति संबंध जो इसे प्रभावित करते हैं, और कानूनी और संस्थागत प्रथाएँ जो महिलाओं की अधीनस्थ पारिवारिक भूमिकाओं को बनाए रखती हैं।
6. इनसे मथुरा बलात्कार कांड, विशाखा दिशा-निर्देश, हिंदू अविभाजित परिवारों में सुधार आदि आंदोलनों को बनाए रखने में मदद मिली।

उदारीकरण के बाद का युग

1. अर्थव्यवस्था के उदारीकरण और राज्य द्वारा गैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ) को 'सामाजिक' जिम्मेदारियों का त्याग करने के संदर्भ में, स्वायत्त संगठनों का प्रसार हुआ है।
2. परिणामस्वरूप, कई नेटवर्क सक्रिय हो जाते हैं, एकजुट होते हैं, विशिष्ट मुद्दों पर प्रतिक्रिया देते हैं, और बाद में निष्क्रियता में चले जाते हैं, जब तक कि कोई अन्य मुद्दा उन्हें कार्रवाई के लिए प्रेरित नहीं करता, जिससे संपूर्ण महिला आंदोलन मुद्दा आधारित हो जाता है, जैसा कि हाल ही में शनि मंदिर और सबरीमाला मामले में देखा गया है।
3. इस एनजीओ द्वारा संचालित सक्रियता ने दावा किया है कि राजनीतिक स्थान के कारण महिलाओं के मुद्दे सार्वजनिक क्षेत्र से हटकर बातचीत और कल्याण के एक गैर-राजनीतिक और घरेलू क्षेत्र में आ गए हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी और महिला आंदोलन

1. पहचानें लोगों को एक साथ लाने, एकजुटता बनाने और उन्हें कार्रवाई के लिए प्रेरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इंटरनेट और सोशल मीडिया ने आंदोलन में राजनीतिक पहचान को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इंटरनेट द्वारा महिलाओं को संवाद का माध्यम प्रदान करने से महिला आंदोलनों की प्रकृति और पहचान बदल गई है। अब, नारीवादी आंदोलन केवल महिलाओं को सशक्त बनाने तक ही सीमित नहीं है; इसका प्राथमिक लक्ष्य "पुरुष" पहचान को बदलना और उसे उसकी मानक स्थिति, आधिपत्य और शक्ति से मुक्त करना है।
2. ऑनलाइन मीडिया की अपेक्षाकृत स्वतंत्रता और सुलभता को देखते हुए, कई अभियानों ने ऑनलाइन माध्यमों में व्यापक लोकप्रियता हासिल की है। संगठित अभियानों के अलावा, नारीवादियों ने एकजुटता बनाने के लिए ऑनलाइन नेटवर्क का उपयोग करना शुरू कर दिया है। ऐसे दो अभियान उदाहरण के लिए हैं - दिल्ली के विश्वविद्यालय के छात्रों द्वारा चलाया गया पिंजरा तोड़ और भारत भर के स्वायत्त महिला संगठनों द्वारा चलाया गया चलो नागपुर। ऐसे अभियान उस डिजिटल द्वैतवाद को उजागर करते हैं जो पहले ऑनलाइन और ऑफलाइन सक्रियता को एक सूत्र में पिरो देता था।
3. राजनीतिक संगठनों के भीतर या उनसे स्वतंत्र रूप से महिलाओं की सक्रियता के बावजूद, राजनीतिक दल महिलाओं की चिंताओं को प्राथमिकता देने, बढ़ावा देने या महत्व देने में लापरवाह रहे हैं। यह राजनीतिक दलों के संगठनात्मक ढाँचे में महिलाओं की नगण्य उपस्थिति, चुनावों में पार्टी उम्मीदवारों की नगण्य संख्या और संसद में उनके अत्यंत अल्प प्रतिनिधित्व से सबसे अधिक स्पष्ट है।

4. समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार तभी संभव है जब शक्ति असंतुलन समाप्त हो। इसके लिए राजनीतिक प्रतिनिधित्व उतना ही ज़रूरी है जितना कि आर्थिक सशक्तिकरण। महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक कार्रवाई समाज में शक्ति असंतुलन की विसंगति को समाप्त कर सकती है और स्त्री को वास्तव में स्वाधीन बना सकती है।

दलित आंदोलन

पूर्व स्वतंत्रता

- भारतीय समाज से अस्पृश्यता की प्रथा को समाप्त करने के लिए लंबे समय से प्रयास किए जा रहे थे। बुद्ध, रामानुज, रामानंद, चैतन्य, कबीर, नानक, तुकाराम आदि जैसे कई सुधारकों ने इस प्रथा को समाप्त करने के प्रयास किए, लेकिन यह सदियों तक बिना किसी विशेष परिवर्तन के जारी रही। हालाँकि, दलित आंदोलनों की शुरुआत उन्नीसवीं सदी के मध्य और उसके बाद मानी जा सकती है, जब विभिन्न कारकों के कारण जाति व्यवस्था में दरार पड़ने लगी, जैसे:
- **आर्थिक:** कृषि का व्यावसायीकरण, गांवों के बाहर रोजगार के नए अवसरों का उदय, संविदात्मक संबंधों का उदय, सरकारी नौकरियों में अवसर विशेष रूप से सेना में, जैसे परिवर्तनों ने अछूतों की स्थिति में बदलाव लाने में योगदान दिया।
- **सामाजिक सुधार:** केरल में श्री नारायण गुरु और महाराष्ट्र में ज्योतिराव फुले जैसे आंदोलनों ने जातिगत असमानता और जाति व्यवस्था की प्रभावकारिता पर सवाल उठाना शुरू कर दिया।
- **पश्चिमी शिक्षा,** जिसने भारतीयों को समानता, न्याय और स्वतंत्रता के आधुनिक विचारों से परिचित कराया, दलित समुदाय के लोगों तक भी पहुँची। उन्होंने आधुनिक मूल्यों का उपयोग समग्र रूप से जाति व्यवस्था और विशेष रूप से अस्पृश्यता की आलोचना करने के लिए करना शुरू कर दिया।

आदि हिंदू आंदोलन

1. बीसवीं सदी में, भक्ति एक जाति-आधारित धार्मिक अभिव्यक्ति के रूप में फिर से उभरी, जो केवल अछूतों के लिए थी। भक्ति की यह नई अभिव्यक्ति एक समतावादी धर्म थी जो केवल अछूतों के लिए थी, जो 1920 के दशक के आरंभ में एक धार्मिक आंदोलन के रूप में विकसित हुई और तर्क दिया गया कि 'भक्ति' भारत के मूल निवासियों और शासकों, आदि-हिंदुओं का धर्म है, जिनके वंशज होने का दावा अछूतों ने किया था।
2. आंदोलन का नेतृत्व करने वाले शिक्षित अछूतों की नई पीढ़ी का तर्क था कि जातिगत स्थिति पर आधारित सामाजिक श्रम विभाजन, आर्य विजेताओं द्वारा भारतीय समाज पर थोपा गया एक थोपा हुआ सिद्धांत था, जिन्होंने आदि हिंदू शासकों को अपने अधीन कर लिया था और उन्हें दास मजदूर बना दिया था। यह कहा जा सकता है कि यह नई विचारधारा अछूतों पर थोपी गई सामाजिक बाधाओं का प्रत्यक्ष जवाब थी, जो उनकी सामाजिक-आर्थिक उन्नति में बाधक थीं।
3. आदि हिन्दू विचारधारा ने अछूतों के बड़े समूह को आकर्षित किया और उन्होंने इसे अपनाया, क्योंकि इसने अछूतों की गरीबी और वंचना के लिए एक ऐतिहासिक व्याख्या प्रस्तुत की और उनकी अतीत की शक्ति और अधिकारों का एक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, तथा ऐसे खोए हुए अधिकारों को पुनः प्राप्त करने की आशा भी व्यक्त की।
4. उत्तर प्रदेश में दलित स्वयं को आदि-हिन्दू, आंध्र में आदि-आंध्र और पंजाब में आदि-धर्मी कहने लगे।

गांधी और दलित आंदोलन

1. 1920 में, महात्मा गांधी ने पहली बार "अस्पृश्यता" की प्रथा को राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल किया और कांग्रेस के नागपुर प्रस्ताव में हिंदू धर्म से "अस्पृश्यता" के अभिशाप को मिटाने की अपील शामिल करके इसे सार्वजनिक चिंता का विषय बना दिया। उन्होंने "अछूतों" के कल्याण के लिए एक अभियान भी चलाया, जिसे उच्च जाति के हिंदुओं का ज़्यादा समर्थन नहीं मिला।
2. बाद में उन्होंने अछूतों के लिए "हरिजन" शब्द का प्रयोग किया, जिसका अर्थ है हरि या ईश्वर के लोग। वे वैकोम (1924-1925) और गुरुवायुर सत्याग्रह (1931-32) का हिस्सा बने, जिसने अस्पृश्यता की प्रथा को चुनौती दी। उन्होंने

सवर्ण हिंदुओं को अस्पृश्यता के माध्यम से दलितों के साथ किए जा रहे अन्याय की गंभीरता का एहसास दिलाने के लिए निरंतर प्रयास किए।

3. उन्होंने 1932 के सांप्रदायिक निर्णय में प्रावधानित पृथक निर्वाचिका के विचार का भी विरोध किया, क्योंकि उनका मानना था कि एक बार दलित वर्ग को शेष हिंदुओं से अलग कर दिया गया तो उनके प्रति हिंदू समाज का रवैया बदलने का कोई आधार नहीं रहेगा।

अम्बेडकर और दलित आंदोलन

1. महार समुदाय से आने वाले एक शिक्षित दलित, बी.आर. आंबेडकर, 1920 के दशक के अंत में दलितों के एक प्रमुख नेता के रूप में उभरे। उन्होंने अस्पृश्यता की प्रथा को चुनौती देने वाले विभिन्न आंदोलन चलाए। 1927 में, उन्होंने हिंदू कानून की पुस्तक, मनुस्मृति, जिसमें अस्पृश्यता को मान्यता दी गई थी, की एक प्रति सार्वजनिक रूप से जलाई। उन्होंने हिंदू समाज और धर्मशास्त्र में आमूल-चूल परिवर्तन की मांग की; दलितों को हिंदू धर्म के भीतर समाधान खोजने के बजाय शिक्षा और राजनीति पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता थी।
2. अस्पृश्यता की समस्या के अपने राजनीतिक समाधान के अनुरूप, उन्होंने द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में दलितों के लिए पृथक निर्वाचिका की मांग की, जिसके कारण उनके और गांधी के बीच एक बड़ा टकराव हुआ। हालाँकि सांप्रदायिक पंचाट (1932) में अंबेडकर की मांग को स्वीकार कर लिया गया था, लेकिन बाद में उन्होंने गांधी के साथ दलितों के लिए पृथक निर्वाचिका की अपनी मांग वापस लेने पर सहमति जताई।
3. उन्होंने अछूतों को संगठित करने के लिए अखिल भारतीय अनुसूचित जाति महासंघ और स्वतंत्र मजदूर पार्टी का गठन किया। अखिल भारतीय अनुसूचित जाति महासंघ के संविधान में दलितों को हिंदुओं से अलग और पृथक बताया गया था। वे कांग्रेस और उसके नेताओं के दृष्टिकोण और जाति को राजनीतिक समस्या मानने से इनकार करने के आलोचक थे।

पोस्ट-आजादी

1. भारत सदियों से सामाजिक अन्याय झेलता रहा है। पारंपरिक हिंदू कानूनों के तहत, अछूतों (अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों) को सार्वजनिक स्थानों और सार्वजनिक सुविधाओं जैसे तालाबों, पोखरों, पार्कों, कुओं आदि का उपयोग करने की अनुमति नहीं थी, इसके अलावा उनके साथ कई अन्य प्रकार के भेदभाव भी किए जाते थे।
2. अनेक सुधारकों के सच्चे प्रयासों के बावजूद, भारत में अस्पृश्यता की प्रथा प्रचलित रही है। दलित जातियों के हितों की रक्षा के लिए, भारतीय संविधान ने उनकी सामाजिक अक्षमताओं को दूर करने और विकास की प्रक्रिया में उन्हें शेष भारतीय लोगों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने में सक्षम बनाने हेतु विशेष प्रावधान किए।

संवैधानिक प्रावधान

1. भारत का संविधान अपने सभी नागरिकों को कानून के समक्ष समानता और कानून के समान संरक्षण की गारंटी देता है। समानता का यह मानदंड किसी व्यक्ति की जातिगत विशेषताओं के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव की अनुमति नहीं देता है।
2. हालाँकि, यह गारंटी केवल राज्य की कार्रवाई पर प्रतिबंध नहीं है। यह राज्य पर एक सकारात्मक दायित्व भी डालती है कि वह एक ऐसे समाज का निर्माण करे जो उन सभी प्रथाओं, रीति-रिवाजों, कानूनों, नीतियों और शर्तों से मुक्त हो जो समाज के विभिन्न वर्गों पर उनकी जातिगत विशेषताओं के आधार पर निर्योग्यताएँ थोपते हैं या थोपने का प्रभाव डालते हैं। राज्य का कर्तव्य है कि वह सभी के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय सुनिश्चित करे और सभी के विकास के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करे।

अम्बेडकर और दलित बौद्ध आंदोलन

1. अम्बेडकर ने सिख धर्म अपनाने पर विचार किया था और उन्होंने अनुसूचित जातियों के अन्य नेताओं से भी अपील की थी, लेकिन सिख समुदाय के नेताओं के साथ बैठक के बाद उन्होंने इस विचार को अस्वीकार कर दिया,

क्योंकि वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि धर्म परिवर्तन के कारण सिखों के बीच उन्हें "दूसरे दर्जे का दर्जा" मिल सकता है।

2. 1956 में, दलितों की स्थिति सुधारने के लिए एकमात्र संभव विकल्प के रूप में, उन्होंने पुनः धर्मांतरण का रास्ता अपनाया। पहले उन्होंने, उनकी पत्नी और उनके कुछ अनुयायियों ने बौद्ध धर्म अपनाया और फिर उन्होंने स्वयं लगभग पाँच लाख लोगों, जिनमें अधिकांश महार थे, को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया। इस धर्मांतरण ने दलित बौद्ध आंदोलन को जन्म दिया, जिसके तहत आंबेडकर ने बौद्ध धर्म की मौलिक रूप से पुनर्व्याख्या की और नवयान नामक बौद्ध धर्म का एक नया संप्रदाय बनाया।
3. डॉ. आंबेडकर के धर्म परिवर्तन के कुछ समय बाद ही उनकी मृत्यु हो जाने से बौद्ध आंदोलन कुछ हद तक बाधित हुआ। इसे अछूत जनता से वह तत्काल व्यापक समर्थन नहीं मिला जिसकी आंबेडकर को उम्मीद थी। आंबेडकरवादी आंदोलन के नेताओं के बीच विभाजन और दिशाहीनता एक अतिरिक्त बाधा रही है।
4. बाद में 1980 में, कानपुर में दलित बौद्ध आंदोलन को एक चमार भिक्षु, दीपांकर के आगमन से बल मिला। दीपांकर एक बौद्ध मिशन पर कानपुर आए थे और उनका पहला सार्वजनिक प्रदर्शन 1981 में एक सामूहिक धर्मांतरण अभियान में हुआ था।

दलित पैंथर्स

1. 1970 के दशक के आरंभ में, वर्ग-आधारित दलित राजनीति स्थापित करने की परियोजना के साथ, दलित पैंथर्स नामक एक संगठन का गठन किया गया। नामदेव ढसाल द्वारा अप्रैल 1972 में मुंबई में स्थापित एक सामाजिक संगठन, दलित पैंथर, देशव्यापी क्रांतिकारी राजनीति की लहर का एक हिस्सा था, जिसकी झलक दलितों की दुर्दशा को उजागर करने के लिए रचनात्मक साहित्य के उपयोग में दिखाई देती थी। हालाँकि इस आंदोलन का जन्म मुंबई की मलिन बस्तियों में हुआ था, लेकिन यह विद्रोह का बिगुल बजाते हुए पूरे देश के शहरों और गाँवों में फैल गया।
2. पैंथर्स ने अंबेडकर के आंदोलन के तहत दलित राजनेताओं की एकता का आह्वान किया और उन्होंने गांवों में अछूतों के खिलाफ हिंसा का मुकाबला करने का प्रयास किया।
3. उन्होंने उभरते दलित साहित्य, यानी उत्पीड़ितों के साहित्य के माध्यम से भी जनता का ध्यान आकर्षित किया। दलित पैंथर्स तेज़ी से लोकप्रिय हुए और उन्होंने दलित युवाओं और छात्रों को संगठित किया और इस बात पर ज़ोर दिया कि वे आत्म-वर्णन के लिए किसी भी अन्य उपलब्ध शब्द के बजाय दलित शब्द का ही प्रयोग करें। आगे चलकर, दलित पैंथर्स एक महत्वपूर्ण राजनीतिक शक्ति बन गए, खासकर शहरों में।
4. आपातकाल के बाद संगठन में इस बात को लेकर गंभीर मतभेद उभरने लगे कि गैर-दलित गरीबों और गैर-बौद्ध दलितों को इसमें शामिल किया जाए या नहीं।

Bahujan Samaj Party

1. उत्तर भारत में 1980 के दशक में कांशीराम (और बाद में मायावती, जो आगे चलकर उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री बनीं) के नेतृत्व में बहुजन समाज पार्टी (बसपा) नामक एक नई राजनीतिक पार्टी का उदय हुआ। बसपा ने चुनावी ताकत को अपनी मूल रणनीति और लक्ष्य घोषित किया, जो उसके राजनीतिक इतिहास में देखा जा सकता है, जहाँ बसपा (ज्यादातर दलित-आधारित पार्टी) अपनी राजनीतिक ताकत बढ़ाने के लिए किसी भी मुख्यधारा की राजनीतिक पार्टी के साथ गठबंधन करने को तैयार रहती है।
2. बसपा उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और पंजाब जैसे उत्तरी राज्यों में पर्याप्त राजनीतिक आधार हासिल करने में सफल रही, जिससे गठबंधन राजनीति में उसका महत्व बढ़ गया।
3. 2007 में मायावती उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनावों में स्पष्ट बहुमत हासिल करने में सफल रहीं और बिना किसी बाहरी समर्थन के ऐसा करने वाली पहली दलित पार्टी बन गईं।

दलित पूंजीवाद

1. 2002 में भोपाल में हुए एक सम्मेलन में, दलित बुद्धिजीवियों ने तर्क दिया कि वैश्वीकरण के दौर में राज्य के पीछे हटने से, अगर वे केवल आरक्षण पर निर्भर रहे, तो उन्हें कम लाभ होगा। तब से, दलित बुद्धिजीवियों ने यह माना है कि आधुनिक अर्थव्यवस्था में जाति व्यवस्था को तोड़ने का सबसे अच्छा तरीका पूंजी है। इस तर्क को इस तथ्य से बल मिलता है कि गैर-कृषि उद्यमों पर लगातार जनगणना रिपोर्टें दर्शाती हैं कि दलितों के पास कुल भारतीय जनसंख्या में उनके हिस्से के अनुपात में, जितना होना चाहिए, उससे कहीं कम व्यवसाय हैं।
2. उत्पादन के साधनों पर दलितों का नियंत्रण, जिसे व्यापक रूप से दलित पूंजीवाद कहा जाता है, को भारत में व्याप्त सामाजिक भेदभाव के चंगुल से दलितों की मुक्ति के साधन के रूप में भी प्रस्तावित किया गया है, जबकि देश में अनुसूचित जातियों (दलितों) को समानता और न्याय की गारंटी देने वाले विभिन्न महान संवैधानिक प्रावधान छह दशकों से मौजूद हैं।
3. हाल के वर्षों में दलितों के बीच उद्यमी बनने की यह कोशिश ज़ोर पकड़ रही है। सरकार ने भी कई योजनाएँ शुरू की हैं, जैसे मुद्रा योजना, जिसके तहत छोटे व्यवसायों को 10 लाख रुपये तक का ऋण दिया जाएगा, और स्टैंड-अप इंडिया, जिसके तहत अनुसूचित जातियों, जनजातियों और प्रत्येक शाखा में कम से कम एक महिला को 10 लाख रुपये से 1 करोड़ रुपये तक का ऋण दिया जाएगा।

Saarthi

THE COACH

1 : 1 MENTORSHIP BEYOND THE CLASSES

- **Diagnosis** of candidates based on background, level of preparation and task completed.
- **Customized solution** based on Diagnosis.
- One to One **Mentorship.**
- Personalized schedule **planning.**
- Regular **Progress tracking.**
- **One to One classes** for Needed subjects along with online access of all the subjects.
- Topic wise **Notes Making sessions**.
- One Pager **(1 Topic 1 page)** Notes session.
- **PYQ** (Previous year questions) Drafting session.
- **Thematic charts** Making session.
- **Answer-writing** Guidance Program.
- **MOCK Test** with comprehensive & swift assessment & feedback.

Ashutosh Srivastava
(B.E., MBA, Gold Medalist)
Mentored 250+ Successful Aspirants over a period of 12+ years for Civil Services & Judicial Services Exams at both the Centre and state levels.

Manish Shukla
Mentored 100+ Successful Aspirants over a period of 9+ years for Civil Services Exams at both the Centre and state levels.

WALL OF FAME

UTKARSHA NISHAD
UPSC RANK - 18

SURABHI DWIVEDI
UPSC RANK - 55

SATEESH PATEL
UPSC RANK - 163

SATWIK SRIVASTAVA
SDM RANK-3

DEEPAK SINGH
SDM RANK-20

ALOK MISHRA
DEPUTY JAILOR RANK-11

SHIPRA SAXENA
GIC PRINCIPAL (PCS-2021)

SALTANAT PARWEEN
SDM (PCS-2022)

KM. NEHA
SUB REGISTRAR (PCS-2021)

SUNIL KUMAR
MAGISTRATE (PCS-2021)

ROSHANI SINGH
DIET (PCS-2020)

AVISHANK S. CHAUHAN
ASST. COMMISSIONER
SUGARCANE (PCS-2018)

SANDEEP K. SATYARTHI
CTO (PCS-2018)

MANISH KUMAR
DIET (PCS-2018)

AFTAB ALAM
PCS OFFICER

ASHUTOSH TIWARI
SDM (PCS-2022)

CHANDAN SHARMA
Magistrate
Roll no. 301349

YOU CAN BE THE NEXT....

8009803231 / 8354021661

D 22&23, PURNIYA CHAURAHA, NEAR MAHALAXMI SWEET HOUSE, SECTOR H, SECTOR E, ALIGANJ, LUCKNOW, UTTAR PRADESH 226024

MRP:- ₹300